परिशिष्टांक

अर्थात्

हिन्दी-महाभारत में आये हुए

मुख्य-मुख्य व्यक्तिवाचक नामों तथा महत्त्व-पूर्ण विषयों की

अनुक्रमणिका

और

महाभारत के प्रमुख पात्र

सम्पादक

लल्लीप्रसाद पाण्डेय

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

१९३६

मूल्य दो रुपये

Published by K K Mittra
at The Indian Press, Ltd , Allahabad

and

Printed by A Bose
at The Indian Press, Ltd , Benares Branch.

निवेदन

महाभारत बहुत बड़ा ग्रन्थ है। उसमें इतने अधिक व्यक्तियों के कार्यों तथा भिन्न-भिन्न विषयों का उल्लेख है कि एकाधिक बार उसका अध्ययन करनेवाले को भी इस बात का एकाएक पता नहीं चल सकता कि कौन सा नाम किस जगह आया है, किस व्यक्ति का किन-किन घटनाओं के साथ सम्बन्ध है, किस विषय का वर्णन कहाँ पर है तथा कौन सा आख्यान किस स्थान पर है। इसी कठिनाई को दूर करने के लिए यह लगभग साढ़े छः हज़ार शब्दों की अनुक्रमणिका प्रस्तुत की गई है। इसमें उन सब व्यक्तियों के नामों और उन सब विषयों का, वर्णानुक्रम से, संग्रह किया गया है जिनका उल्लेख महाभारत में है। प्रत्येक व्यक्ति के नाम के साथ उसका परिचय है। उसने जो-जो मुख्य कार्य किये हैं उन सबका उल्लेख करके प्रत्येक के साथ उसकी पृष्ठ-संख्या दे दी गई है। इसी प्रकार, महाभारत में जिन-जिन मुख्य विषयों का वर्णन है उनका भी वर्णानुक्रम से—पृष्ठ-संख्या देते हुए—उल्लेख है। व्यक्ति-वाचक नामों के अतिरिक्त नगरों, पर्वतों, नदियों, देशों आदि के नाम भी दिये गये हैं। एक ही नाम के दो या अधिक व्यक्तियों के नाम के साथ क्रम-संख्या लगा दी गई है। व्यक्ति-वाचक नामों का परिचय अधिकतर महाभारत के आधार पर है। जहाँ यह बताने की चेष्टा की गई है कि महाभारतोक्त किसी स्थान की भौगोलिक स्थिति कहाँ है और आजकल वह किस नाम से प्रसिद्ध है वहाँ पुरातत्त्व-विषयक ग्रन्थों और लेखों आदि से सहायता ली गई है। ऐसी बाह्य पुस्तकों के आधार पर लिखित परिचय अवतरण-चिह्नों (' ') के बीच में है। व्यक्ति-वाचक नामों से पार्थक्य दिखाने के लिए, विषय-निर्देशक शब्दों से पहले, यह * चिह्न लगाया गया है।

नामों और विषयों की अनुक्रमणिका के पश्चात् अर्जुन के दस नाम तथा कौरवों (धृतराष्ट्र के पुत्रों) के नाम हैं। तदनन्तर परिशिष्ट मे, महाभारत मे उल्लिखित (१) पशु-पक्षियों, (२) वृक्ष-लता आदि, (३) वर्ण-सङ्कर जाति, (४) बाजे और आभूषण, (५) यज्ञ, (६) रथ के अङ्ग, (७) व्यूह और (८) अस्त्र-शस्त्र आदि के नामों की तथा अन्तर्कथाओं (उपाख्यानों) की भी अनुक्रमणिका दी गई है। नं० १, २, ४, ५, ६ और ७ में, आवश्यकता पड़ने पर, संस्कृत के वाचस्पत्याभिधान नाम के बृहत् कोश से सहायता मिली है। नं० (३) का परिचय महाभारत के अनुशासनपर्व (अ० ४८) के अनुसार है। वहाँ इन विविध जातियों की उत्पत्ति का विवेचन है। इनके अतिरिक्त परिचय लिखने में निम्नलिखित पुस्तकों से सहायता ली गई है—(१) कुंभघोणस्थ मध्वविलास पुस्तकालय के अध्यक्ष टी० आर० कृष्णाचार्य द्वारा संपादित "श्रीमन्महाभारतस्य वर्णानुक्रमणी", (२) भारतभूमि और उसके निवासी, (३) मार्कण्डेयपुराण (श्री पार्जीटर द्वारा सम्पादित), (४) ओझा-अभिनन्दन-ग्रंथ, (५) ज्याग्राफिकल डिक्शनरी (श्री नन्दलाल दे-कृत, अधिकांश भौगोलिक परिचय इसी से दिया गया है;), (६) हिन्दू राज्य-तन्त्र, (७) हिंदी-शब्दसागर, (८) विश्वकोष, (९) महाभारत-

मीमांसा, (१०) मानस-सरोवर और कैलास, (११) वेपन्स, आर्मी आर्गेनाइज़ेशन ऐंड पोलिटिकल मैक्सिम्स आव् दि एंशेंट हिन्दूज़ और (१२) दि आर्ट आव् वार इन एंशेंट इंडिया आदि।

इस अनुक्रमणिका के लिए शब्दों का संग्रह कर देने की कृपा अध्यापक रामदासजी गौड़, एम० ए०, सम्पादक 'विज्ञान' और पण्डित रामप्रसाद दुबे विशारद ने की है। शब्दों को क्रमानुसार स्थापित करने और परिचय लिखने आदि में भी द्वितीय सज्जन ने सहायता दी है। इनके अतिरिक्त महामहोपाध्याय पण्डित गोपीनाथजी कविराज, एम० ए०, अध्यक्ष गवर्नमेंट संस्कृत कालेज बनारस ने अनेक पुस्तकों और सूचनाओं द्वारा सहायता प्रदान की है। नागरीप्रचारिणी सभा, काशी और श्रीविश्वनाथ पुस्तकालय से, परिचय लिखने के लिए, पुस्तकें प्राप्त हुई थीं। महाभारतकालीन अस्त्र-शस्त्रों का परिचय लिखने में काशी विश्वविद्यालय के अध्यापक डाक्टर पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल एम० ए०, एल्-एल० बी०, डी० लिट्० ने भी विशेष परिश्रम किया है। इसके लिए आप सभी महानुभाव धन्यवाद के पात्र हैं।

विशिष्ट शब्दों का परिचय लिखने के लिए एक-आध प्रसिद्ध विद्वान् को पत्र लिखा तो उन्होंने चुप्पी साध ली, फिर उनके मित्र द्वारा पत्र लिखवाया तो थोड़ी-बहुत सहायता देना स्वीकार कर लिया; किन्तु अन्त में उनसे मिला कुछ नहीं। यह अनुक्रमणिका सभी के उपयोग में आवेगी [संस्कृतवालों के भी; बम्बई के श्री ज्येष्ठाराम मुकुन्दजी के संस्कृत-संस्करण से हमारे महाभारत के अध्यायों और श्लोकों का क्रम मिलता-जुलता है। फलतः दोनों ग्रन्थों के अध्याय के अन्तिम श्लोकाङ्कों से अध्याय का निश्चय कर लेने पर अभीष्ट स्थल ढूँढ़ लिया जा सकेगा।] अतएव इसे अधिक से अधिक सम्पूर्ण बनाने के लिए किये गये यत्न से यथासम्भव सभी को सहायता करने का पुण्यार्जन करने के लिए प्रस्तुत होना चाहिए था; किन्तु हमारे यहाँ की दशा ही कुछ और है। इस दशा में जहाँ तक बन पड़ा, इसे ठीक बनाने की चेष्टा की गई है।

श्रीकाशीधाम,
अधिक भाद्रपद कृष्ण नवमी
संवत् १९९३ विक्रमी

सम्पादक

अनुक्रमणिका

१६६६,—का देवत्व—१६१६, १६६६, ४२३२-३३,—का द्रौपदी-विषयक नियम-भङ्ग—४६६,—का धनुष—१४३३-३४,—का निवातकवच दानवों से युद्ध—१०३६-४३,—का पञ्चनद के डाकुओं से परास्त होना—४४५७-५६,—का पराक्रम—१६१६,—का, पाण्डव-सेना के प्रधान अधिनायक के निर्वाचन पर, मत—१७८६-८७,—का पुनर्जीवन—१३५४,—का भगदत्त से कर-ग्रहण—५७१, का महाप्रस्थान—४४६२,—का, यक्ष की अवज्ञा करने से, प्राण-त्याग—१३४५,—का युद्ध—२२०३, २३५१-५३,—का युद्ध-कौशल—१४५२-५३, १४६६, १५२८-२६,—का युधिष्ठिर-कृत तिरस्कार—२६०३,—का युधिष्ठिर को युद्ध के लिए प्रोत्साहन—१७६३,—का युधिष्ठिर को समझाना—३२८५-८६, ३२६५-६७, ३३०१-०३,—का, रङ्ग-भूमि में, अस्त्र-कौशल—३०६,—का रण-निमन्त्रण के लिए द्वारका-गमन—१४६६-६७,—का रथ—१६२६-३०, १६०६-०७,—का लक्ष्य-वेध—४१६,—का वन-गमन—४६६,—का विषाद—१६१४,—का शरीर-पात—४४६४,—का संशप्तकगण से युद्ध—२८६०-६३,—का सब कौरव-महारथियों से युद्ध—१४६६-६७, १४७१-७२,—का सर्वोपरि सेनापति चुना जाना—१७६८,—का सिन्धु देश के राजाओं से युद्ध—४३७२-७३,—का सूर्यवर्मा को हराना—४३६६,—का स्वर्ग से लौट आना—१०३०,—की, उत्तरा के नृत्य-संगीत-शिक्षक पद पर, नियुक्ति—१३७६,—की, कर्णपुत्र-वध की, प्रतिज्ञा—२५२२,—की कर्ण-वध की प्रतिज्ञा—२६१७, २६२६-२८,—की जितेन्द्रियता—१४८४,—की तपस्या—७७४,—की दिग्विजय-यात्रा—५७०,—की दुर्धर्षता—१४४३-४५, १६२२-२३,—की पिंडलिया—४३८७,—की, भीष्म-वध के पाप से, मुक्ति—४३८०,—की रानियाँ—२१२,—की विरक्ति—४४५६,—की विशेषता—१६८२,—की शंखध्वनि से कौरवों को त्रास—१४३६-४०,—की शपथ—२३१६-२०,—की श्रेष्ठता—१६२५,—की संगीत-शिक्षा—७८७,—की सुभद्रा पर आसक्ति—४७८,—कृत धर्मराज का तिरस्कार और आत्मप्रशंसा—२६११-१४,—कृत, बभ्रुवाहन की भर्त्सना—४३७५,—के अस्त्र-शिक्षक—१४३८, १४६५, १८०१,—के गुण—१३६१-६२,—के जन्म पर आकाशवाणी—२७२, १७६१,—के जन्म पर देवोत्सव—२७२-७३,—के दस नाम और उनकी निरुक्ति—१४३५,—के पुत्र—२१२,—के बाण—१४३४,—के रथ की ध्वजा—१७७०,—के रथ की पताका—१४३८, १६२६-३०,—के रथ के घोड़े—१६३०,—के सम्मोहनास्त्र से कौरवों का अचेत होना—१४७२,—के साथ यदुवंश की स्त्रियों आदि का इन्द्रप्रस्थ के लिए प्रयाण—४४५७,—को इन्द्र से अस्त्र-प्राप्ति—७८७,—को उर्वशी का शाप—७६१,—को उलूपी से वर-लाभ—४७१,—को कपि-ध्वज रथ की प्राप्ति—४६३,—को गाण्डीव धनुष की प्राप्ति—४६३,—को चाक्षुषी विद्या की प्राप्ति—३८३, ४१०,—को दुर्गादेवी से वर-लाभ—१६१२,—को देवदत्त शंख की प्राप्ति—५१६,—को दो अक्षय तरकसों की प्राप्ति—४६३,—को द्रोणाचार्य से ब्रह्मशिर अस्त्र की प्राप्ति—३०२,—को द्रौपदी द्वारा वरमाल्य-समर्पण—४२०,—को धराशायी देखकर चित्राङ्गदा का पश्चात्ताप—४३७६-७७,—को पाशुपत अस्त्र की प्राप्ति—७७८, ७८०, १०३४, २३३७,—को प्रतिस्मृति विद्या की प्राप्ति—७७०,—को प्रस्वापनास्त्र की प्राप्ति—७८३,—को यमदण्ड की प्राप्ति—७८२,—को लोकपालों से अस्त्र-प्राप्ति—१०३५,—को वारुण पाश की प्राप्ति—७८२,—को श्रीकृष्ण का प्रोत्साहन—२००७,—को संगीत-कला की प्राप्ति—१०३७,—गुडाकेश (नामान्तर)-१६१५,—द्वारा कर्ण के भाई का वध—१४५१,—द्वारा कर्ण-वध की प्रतिज्ञा—६७६,—द्वारा गजसेना का विनाश—२७४६,—द्वारा दुर्योधन के सन्देश का उत्तर—१८१३-१४,—द्वारा द्रोण की, ग्राह से, रक्षा—३०२,—द्वारा विष्वगश्व की पराजय—५७२,—पर दुःशासन का आक्रमण—१४६५,—पर दुःसह का आक्रमण—१४६५,—पर बलदेव का क्रोध—४८०-८१,—पर विकर्ण का आक्रमण—१४६५,—पर विविंशति का आक्रमण—१४६५,—शब्द की निरुक्ति—१४३५,—से कर्ण का, हारकर, भागना—१४५२,—से देवताओं का युद्ध—४६७,—से सब कौरव-महारथियों का हारना—१४६७-६८,—स्वर्ग के मार्ग में—७८४-८५।

अर्जुन (२)—हैहयवंशी राजा कृतवीर्य का पुत्र; भगवान् दत्तात्रेय के वरदान के फल-स्वरूप इसके एक हजार हाथ थे; इसने रावण को क़ैद किया था; परशुराम

आ

ई

उ

ऊ

ऋ

(१) करवा नाम का पात्र ।

कलिङ्ग (१)—एक देश; 'उड़ीसा के दक्षिण और द्रविड़ के उत्तर का समुद्र-तटवर्ती प्रदेश; उत्तरी सरकार'—१४१, २०८, २३६, ४१६, ४७२, ५८०, १८६०,—के राजकुमारों का वध—२५४० ।

कलिङ्ग (२)—एक राजकुमार, बलि की स्त्री सुदेष्णा में दीर्घतमा ऋषि द्वारा उत्पन्न—२३६ ।

कलिङ्ग (३)—युधिष्ठिर की सभा का एक राजा—५१८ ।

कलियुग—चौथा युग—१६, ६६८,—और इन्द्र का संवाद—८१२,—का अन्त—१०८४, १०६४,—का धर्म—३८६५,—का परिमाण—१०८२,—का सर्वश्रेष्ठ तीर्थ—८८६,—की, दमयन्ती के शाप से, मुक्ति—८४८,—में संसार की परिस्थिति—१०८२-८४, १०६०-६३ ।

*कलोत्पत्ति—३६४२ ।

*कल्की अवतार—१०६४ ।

कल्पवृक्ष—समुद्र-मन्थन से निकला सातवाँ रत्न, 'स्वर्ग का एक वृक्ष, जिससे सारी कामनाएँ सिद्ध होती हैं'—६०, १७१७ ।

कल्माष (१)—एक साँप—८४ ।

कल्माष (२)—एक प्रकार का घोड़ा, जो अर्जुन को गन्धर्वों से कर-स्वरूप मिला था—५७३ ।

कल्माषपाद—इक्ष्वाकुवंशी एक राजा; स्त्री मदयन्ती; पुत्र अश्मक (वशिष्ठ से उत्पन्न)—२६८, ३७४, ३६५,—का शक्ति (वशिष्ठ-पुत्र) को और वशिष्ठ के अन्यान्य पुत्रों को खा जाना—३६७-६८,—की रानी में, वशिष्ठ द्वारा, पुत्रोत्पत्ति—४०१, ४१०,—की, शाप से, मुक्ति—४००,—को तपस्वी का शाप—३६७,—को ब्राह्मणी का शाप—४०६,—को शक्ति (वशिष्ठ-पुत्र) का शाप—३६६ ।

कल्माषी—यमुना नदी—६७८ ।

*कल्याण—का मार्ग—३५८३-८४, ३७६१-६२,—के साधन—३७८५-८८ ।

कवची—राजा धृतराष्ट्र का एक पुत्र—१४२,—का वध—२६५६ ।

कवष—पश्चिम दिशा में रहनेवाले एक महात्मा—३६३६ ।

कवि (१)—एक अग्नि; नामान्तर ऊर्ध्वभाक्, बृहस्पति के पाँचवें पुत्र—११६०, ४११५,—की शपथ, अगस्त्य के मृणाल न चुराने के सम्बन्ध में—४१३६ ।

कवि (२)—शुक्राचार्य के पुत्र—४११५ ।

कवि (३)—एक विश्वेदेवा—४१२४ ।

कशेरक—कुबेर की सभा का एक यक्ष—५३२ ।

कश्यप—एक ऋषि, दक्ष प्रजापति के जामाता, कद्रू और विनता के पति, नागों और गरुड़ तथा अरुण के पिता; मरीचि ऋषि के पुत्र, प्राणिमात्र के जनक; नामान्तर अरिष्टनेमि; उत्तर दिशा के निवासी—५७, १३५, १७१३, १७१६, १७२४, ३१३२, ३६३८, ४२३६,—का पृथ्वी में प्रवेश—४२४४,—की शपथ, अगस्त्य के मृणाल न चुराने के सम्बन्ध में—४१३५,—की शपथ, सप्तर्षियों के मृणाल न चुराने के सम्बन्ध में—४१३३,—के पुत्र—४२३८,—को विषघ्नी विद्या की प्राप्ति—६४,—द्वारा संन्यासी और उसके कुत्ते की स्थूलता का कारण-निर्देश—४१२६,—शब्द की निरुक्ति—४१३१ ।

कसेरुमान्—एक राजा; श्रीकृष्ण द्वारा विनष्ट—७१६ ।

कहोड—एक ऋषि, अष्टावक्र के पिता; महर्षि उद्दालक के शिष्य तथा जामाता, स्त्री सुजाता—६६३ ।

काक—दक्षिण दिशा का एक जनपद—१८६० ।

*काक और हंस का उपाख्यान—२८१७-२१ ।

काकी (१)—कश्यप की कन्या; माता ताम्रा; सन्तान उल्लू पक्षी—१३६ ।

काकी (२)—एक मातृका, स्कन्द की माता—११७४ ।

काक्षीवान् (१)—राजा बलि की रानी सुदेष्णा की दासी का, दीर्घतमा ऋषि द्वारा उत्पन्न, पुत्र १५, २३५, २६५, ५१७, ५२८, ५४६,—की उत्पत्ति—५५७ ।

कागासुर—एक असुर—१७४७ ।

काञ्चनाक्षी—सरस्वती नदी की एक शाखा—३११५ ।

काञ्चन—पर्वतराज सुमेरु-दत्त कुमार कार्त्तिकेय का अनुचर—३१३३ ।

काञ्ची—'काञ्जीवरम्; मद्रास से ३७ मील दक्षिण-पश्चिम एक नगर जो प्राचीन समय में चोल राजाओं की राजधानी था'—१८१० ।

कान्तारक-गण—वेणा नदी के तटवर्ती राजा लोग—५७७ ।

कान्तिकोशल—एक देश—१८८६ ।

*कीर्ति का महत्त्व—१३२६ ।
कीर्तिधर्मा—पाण्डव-पक्ष का एक राजा—२५५७ ।
कीर्तिमान् (१)—विरजा के पुत्र, प्रजापति कर्दम के पिता—३३७८ ।
कीर्तिमान् (२)—एक विश्वेदेवा—४१२४ ।
कुकुण—एक नाग—१७०६ ।
कुकुर (१)—एक नाग—१७०६ ।
कुकुर (२)—यादवों का वंश-विशेष—४४५२ ।
कुकुर (३)—एक देश; 'आजकल का बालमेर (राजपूताना के अन्तर्गत)'—१६८५ ।
*कुक्कुट-दान का फल—४१०६ ।
कुक्कुर (१)—एक ऋषि—५१७ ।
कुक्कुर (२)—दे० "कुकुर" (२)—६२३, १५३८ ।
कुक्कुर (३)—दे० "कुकुर" (३)—१८८६, १८६०
कुक्षि (१)—एक दानव—१४१ ।
कुक्षि (२)—एक दिक्पति; रैभ्य के पुत्र—३६११ ।
*कुछ ऋषि, देवता, याज्ञिक और राजा—११२-१३ ।
कुञ्जर (१)—एक साँप—८४, ४४५३ ।
कुञ्जर (२)—सौवीर देश का राजकुमार—१२४६ ।
कुठर—एक साँप—८४ ।
कुठार—जनमेजय के सर्पयज्ञ में जला एक साँप—११६ ।
कुणि—गर्ग-वंशोत्पन्न एक तपस्वी, इनकी पुत्री वृद्धकन्या से गालव ने विवाह किया था—३१५२ ।
कुण्ड—एक ऋषि; जनमेजय के सर्पयज्ञ के सदस्य १०६ ।
कुण्डज—राजा धृतराष्ट्र का एक पुत्र—१४२ ।
कुण्डजठर—एक ऋषि—८६० ।
कुण्डधार (१)—राजा धृतराष्ट्र का एक पुत्र—२५६ का वध—२०७४ ।
कुण्डधार (२)—एक साँप—५३१ ।
कुण्डधार (३)—एक मेघ—३७४७,—की कथा—३७४७-५० ।
कुण्डभेदी—राजा धृतराष्ट्र का एक पुत्र—१४२,—का, कौरवों के साथ, अभिमन्यु पर बाण बरसाना—२२५८,—का वध—२०६४, २४५६ ।
कुण्डल (१)—जनमेजय के सर्पयज्ञ में जला एक साँप—११६ ।
कुण्डल (२)—दक्षिण का एक जनपद—१८६० ।
*कुण्डलाहरणपर्व—१३२५ ।
कुण्डली (१)—एक गरुड़—१७०४ ।
कुण्डली (२)—एक नदी—१८८६ ।
कुण्डिक—चन्द्रवंशी जनमेजय-पुत्र धृतराष्ट्र (३) का पुत्र—२०७ ।
कुण्डिन—चन्द्रवंशी जनमेजय-पुत्र धृतराष्ट्र (३) का पुत्र—२०७ ।
कुण्डिन नगर—विदर्भ देश की राजधानी; 'हैदराबाद राज्य में बीदर से कुछ दूर, गोदावरी-तट से ५ मील पर, कुण्डिलवती नाम की एक नगरी'—१८०० ।
कुण्डीविष—एक देश—११८४ ।
कुण्डीवृष—एक देश—२००० ।
कुण्डोद—एक पर्वत—८६२ ।
कुण्डोदर (१)—एक साँप—८४ ।
कुण्डोदर (२)—राजा धृतराष्ट्र का एक पुत्र—१४२ ।
कुण्डोदर (३)—चन्द्रवंशी राजा जनमेजय (धृतराष्ट्र (३) के पिता) का पुत्र—२०७ ।
कुन्तल (१)—एक देश; 'दक्षिण महाराष्ट्र में कोंकण के पास का भाग'—१७६७, १८६० ।
कुन्तल (२)—एक देश; 'दक्षिण कोशल के समीप गोंडवाने में स्थित'—१८६०, १८६५ ।
कुन्ति (१)—एक राजवंश—५४३ ।
कुन्ति (२)—एक देश; 'इसे 'भोज' भी कहा जाता है; मालवा का एक प्राचीन नगर जो अश्व नदी या अश्वरथा नदी (चंबल की सहायक) के तट पर था'—५४३, १८८६, २३०६ ।
कुन्ति (३)—एक महारथी यादव—५४४ ।
कुन्तिभोज—शूर नामक यादव राजा (वसुदेव के पिता) के फुफेरे भाई; कुन्ति देश के राजा; कुन्ती के पोषक पिता; पाण्डव-पक्ष के योद्धा—१८२८,—और विन्द का युद्ध—१६६७,—के दस पुत्रों का वध—२५५१,—द्वारा दुर्वासा का आतिथ्य—१३२६-३२,—और अनुविन्द का युद्ध—१६६७ ।
कुन्तिराष्ट्र—दे० "कुन्ति" (२)—१३६० ।
कुन्ती—शूर नामक यादव राजा (वसुदेव के पिता) की पुत्री, कुन्तिभोज की पोष्यपुत्री, श्रीकृष्ण की बुआ; पाण्डु की पत्नी; युधिष्ठिर आदि पाण्डवों की माता; "सिद्धि" देवी का अंशावतार; नामान्तर पृथा—१३१,

(१) युद्ध-कला में अभ्यस्त व्यक्ति । (२) स्कन्द की माताएँ ।

ख

ग

घ

छ

ज

झ

ट

ड

त

द

—१४६८,—को कृपाचार्य का राजनीति-विषयक उपदेश —१४१४-१५,—को गान्धारी का उपदेश—१७४३-४५,—को दानवों का उपदेश—१२२०-२२,—को दुःशासन का उपदेश—१२१७,—को द्रोणाचार्य का आश्वासन—६८३-८४,—को द्रोणाचार्य का उपदेश—१७३६-३८,—को द्रोणाचार्य का सन्धि के लिए उपदेश—१७६५-६६,—को धृतराष्ट्र का उपदेश—६२६, १६३३, १६३७, १७३७,—को धृतराष्ट्र का सन्धि-विषयक उपदेश—१६४५, १६४८,—को नारद का उपदेश—१७११, १७३२,—को, पाण्डवों के वैभव से, खेद—६११-१२,—को भीमसेन की ललकार—३१०३,—को भीष्म का उपदेश—४४८-४६, १२२३, १७३६, १७३७-३८,—को मैत्रेय का शाप—७०६,—को मैत्रेय के उपदेश—७०८-०६,—को विदुर का उपदेश—१७३७,—को शकुनि का उपदेश—१२१६,—को शल्य का आश्वासन—२६६५,—को श्रीकृष्ण से नारायणी सेना की प्राप्ति—१४६७,—को श्रीकृष्ण द्वारा सन्धि का उपदेश—१७३२-३६,—द्वारा कण्व के कथन की उपेक्षा—१७१०,—द्वारा कलिंग-नरेश चित्राङ्गद की कन्या का हरण—३२८०-८१,—द्वारा देवताओं की प्रकृति का विवेचन—१६३८,—द्वारा श्रीकृष्ण की अभ्यर्थना—१६८६,—से कर्ण की मैत्री—३१२।

दुर्योधन (२)—इक्ष्वाकुवंशी सुदुर्जय के पुत्र; पत्नी नर्मदा; पुत्री सुदर्शना; जामाता अग्नि—३६४०।

*दुर्वचन सहना—३४७३-७४।

दुर्वासा—एक अत्यन्त क्रोधी ऋषि—७, १४३, ४६०, १७७५,—का आकार—४२५४,—का कुन्तिभोज द्वारा आतिथ्य—१३२६-३२,—का कुन्ती की सेवा से सन्तुष्ट होना—१३३२,—का दुर्योधन-कृत सत्कार—१२४०-४१,—का पाण्डवों के पास गमन—१२४२,—का माहात्म्य—४२५४-५६,—का रुक्मिणी को वरदान—४२५५,—का श्रीकृष्ण को वरदान—४२५५,—की तृप्ति—१२४३,—से कुन्ती को मन्त्र-प्राप्ति—२४६-४७, १३३३।

दुर्विगाह—राजा धृतराष्ट्र का एक पुत्र—२५६।

दुर्विभाग—एक देश—६२३।

दुर्विमोचन—राजा धृतराष्ट्र का एक पुत्र—२५६,—का वध—२४५६, ३०७७।

दुर्विरोचन—राजा धृतराष्ट्र का एक पुत्र—१४२।

दुर्विषह—राजा धृतराष्ट्र का एक पुत्र—३०७६,—का वध—३०७७।

दुलिदुह—एक राजा—१६।

दुष्कर्ण—राजा धृतराष्ट्र का एक पुत्र—१४२, २५६,—और शतानीक का युद्ध—२०५४,—का वध—२५४१।

*दुष्कर्म—के त्याग की श्रेष्ठता—३६६२,—के साक्षी—४०३५।

*दुष्टों से धनापहरण—३५०२-०३।

दुष्पराजय—राजा धृतराष्ट्र का एक पुत्र—२५६।

दुष्प्रधर्ष—राजा धृतराष्ट्र का एक पुत्र—३०७६,—का वध—३०७७।

दुष्प्रधर्षण—राजा धृतराष्ट्र का एक पुत्र—१४२, २५६।

दुष्प्रहर्ष—राजा धृतराष्ट्र का एक पुत्र—१४२।

दुष्यन्त (१)—चन्द्रवंशी राजा ईलिन का पुत्र; माता रथन्तरी; पुत्र भरत; स्त्री शकुन्तला—१८६, १७२४, ४१८१,—और शकुन्तला का गान्धर्व विवाह—१६५-६६,—का कण्व के आश्रम में जाना—१६०-६१,—का पुत्र सहित शकुन्तला को ग्रहण करना—२०३-०४,—द्वारा शकुन्तला का प्रत्याख्यान—१६८-२०३।

दुष्यन्त (२)—चन्द्रवंशी राजा अजमीढ़ का, नीली से उत्पन्न, पुत्र—२०५।

* दूत का कर्तव्य—१६५१।

दूषण—जनस्थान में खर के साथ, रामचन्द्रजी द्वारा, मारा जानेवाला एक राक्षस—१२७१,—का वध—१२७१।

दृढ़—राजा धृतराष्ट्र का एक पुत्र—२४८१,—का वध—२५५३।

दृढ़क्षत्र—राजा धृतराष्ट्र का एक पुत्र—१४२, २५६।

दृढ़धन्वा—एक राजा—४१५।

दृढ़रथ (१)—राजा धृतराष्ट्र का एक पुत्र—१४२, २५६,—का वध—२५५३।

दृढ़रथ (२)—एक स्मरणीय राजा—४२६५।

दृढ़वर्मा—राजा धृतराष्ट्र का एक पुत्र—१४२।

दृढ़व्य—दक्षिण दिशा के निवासी एक ऋषि—४२३६।

दृढ़सन्ध—राजा धृतराष्ट्र का एक पुत्र—१४२, २५६।

दृढ़सेन—पाण्डव पक्ष का एक योद्धा—२२१७,—का वध—२२१७।

दृढ़स्यु—अगस्त्य के पुत्र महाकवि; नामान्तर इध्मवाह; माता लोपामुद्रा—६०८।

ब्राह्मणों के—१६०१-०३, ४२१५-१६, —महात्मा वीरों का —१७५७,—में निष्ठावान् पुरुषों के लिए निषिद्ध आहार—४२२१,—वानप्रस्थियों के—१८०, ४२१८-१६, ४३३१,—विविध-३७६६-३८०२, ३६२७, ४३३५-३६,—वैश्यों का—४२१६,—शूद्र का-४२१६, —श्रेष्ठ –४०००,—संन्यासियों के –१८०, ४२१७, ४३३२-३३,—सकाम और निष्काम –४२६३,—सज्जनों के—४२६०-६१, ४२६३,—सनातन –३७२६, ४३६८,–सब धर्मों के मूल-स्वरूप-४२१५,—सर्वश्रेष्ठ—४२३३,—सस्त्रीक तपस्वियों के—४२१६,—साधारण—३३८०, ३७६२-६३,—सुखदायक—३१-७०,—से द्वेष या अनुराग का फल—४२६०,—से वैराग्य—३७४६,—स्त्री-रहित तपस्वियों के—४२१६।

धर्मतीर्थ (१)—कुरुक्षेत्र के पास का एक तीर्थ —८७६ ।

धर्मतीर्थ (२) -एक तीर्थ —८८३ ।

धर्मतीर्थ (३)—एक तीर्थ—८८५ ।

*धर्मनीति—५२४-२५, ६६१, १०००, ११३५-३६, १५३४-३५ ।

धर्मनेत्र—धृतराष्ट्र (३) के पौत्र – २०७ ।

धर्मप्रस्थ –एक पवित्र स्थान—८८३ ।

*धर्मयुद्ध—३४४०,—की प्रशंसा—३४४२-४३ ।

*धर्मयोनि—३८०४ ।

*धर्म-रहस्य—अङ्गिरा-कथित—४१६६,—अरुन्धती-कथित —४२०१, —गार्ग्य-कथित—४१६६,—चित्रगुप्त-कथित —४२०१-०२, —जमदग्नि-कथित—४१६६,—धौम्य-कथित—४१६६,—लोमश-कथित—४२००-०१,–वायु-कथित—४२००, —श्री-कथित —४१६६,—सूर्य-कथित —४२०२ ।

धर्मव्याध—मिथिलापुरी का निवासी एक धर्मज्ञानी मातृ-पितृ-भक्त व्याध, जिसने कौशिक नाम के एक तपस्वी ब्राह्मण को धर्म का उपदेश दिया था—११३२,—का पुरावृत्त—११५४-५५,—की जीवन-चर्या—११३४-३५, —की मातृ-पितृ-सेवा—११५१-५२ ।

*धर्मशास्त्र-श्रवण का फल—४१६३ ।

*धर्माचरण—१०६५, ११४३-४४, १२३३-३४, १५७०, —की महत्ता—७५२-५४,—की राजनीतिक समीक्षा—७५६-६२, ७६६-६७,—में शीघ्रता—३७५७-५८,—या शील—३४८८ ।

*धर्मात्मा के लक्षण—३५५५ ।

*धर्मात्मा दस्यु—३५०४-०५ ।

*धर्मात्मा राजा को आश्रम-फल-प्राप्ति –३३८६-६० ।

*धर्माधर्म-विवेक—११३६, १५३६, ३७२७-२८ ।

धर्मारण्य (१)—अत्रिवंशी एक धर्म-जिज्ञासु ब्राह्मण—३६२६,—और पद्मनाभ का संवाद—३६३१-३४,—का चरित—३६२६-३४ ।

धर्मारण्य (२)—एक पवित्र स्थान, 'बुद्ध-गया से प्रायः चार मील की दूरी पर स्थित'—४००७ ।

धर्मेयु—पूरुवंशी एक राजा, रौद्राश्व का पौत्र—१८६ ।

*धर्मोपदेश—३७६४-६५, ३८०३-०५ ।

धाता (१)—कश्यप के, दक्षकन्या अदिति से उत्पन्न, पुत्र; बारह आदित्यों में से एक—१३५, ३६३८, ४२३८ ।

धाता (२)—ब्रह्मा के पुत्र; भाई विधाता; बहन लक्ष्मी —१३६ ।

*धातुओं की उत्पत्ति—११६४ ।

धात्रेयिका—द्रौपदी की दासी—१२५२,—और इन्द्रसेन का संवाद—१२५२-५३ ।

धारण (१)—चन्द्रवत्स-वंशी एक कुलघातक राजा—१६५६ ।

धारण (२)—एक नाग—१७०६ ।

*धारणा—३६६१ ।

धारा तीर्थ—हरद्वार के पास का एक तीर्थ—८८० ।

धीमान्—चन्द्रवंशी राजा पुरूरवा के पुत्र; माता उर्वशी अप्सरा; भाई आयु, अमावसु, दृढ़ायु, वनायु और शतायु—१४६ ।

धीरोष्णी—एक विश्वेदेवा –४१२४ ।

धुन्धु (१)—मधु-कैटभ का पुत्र—११२५,—का दुर्जयत्व—११२५,—का वध—११२८,—को ब्रह्मा का वरदान—११२७ ।

धुन्धु (२)—कार्तिक मास में मास-भक्षण का त्याग करनेवाले एक राजा—४१८१ ।

धुन्धुमार—सूर्यवंशी महाराज बृहदश्व के पुत्र कुवलाश्व; धुन्धु असुर का वध करने से इनका यह नाम पड़ा—११२४, ३६५०,—की शपथ (अगस्त्य के मृणाल न

(१) जलाया जानेवाला एक प्रकार का गन्धद्रव्य ।

(१) श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थों में इस राक्षस का बलराम द्वारा मारा जाना वर्णित है।

न

नन्दा (३)—'गढ़वाल में मन्दाकिनी नाम की एक छोटी नदी जो अलकनन्दा मे मिलती है, नन्दप्रयाग इन्ही दोनो नदियो के सङ्गम पर है'—६२६ ।

नन्दाश्रम—एक पवित्र स्थान—१८५६ ।

नन्दि—एक गन्धर्व—२७२ ।

नन्दिकुण्ड—एक तीर्थ; 'श्रीनगर (काश्मीर) से २३ मील दक्षिण, हरमुख पर्वत के समीप, नन्दिसर नाम की झील'—४००७ ।

नन्दिग्राम—'अयोध्या का नन्दगाँव' जो भरत-कुण्ड के समीप और फैज़ाबाद से ८ या ६ मील दक्षिण है'—१२७१ ।

नन्दिनी—दक्षकन्या सुरभि की पुत्री, वशिष्ठ की कामधेनु—२१८, ३६३,—का द्यौ वसु द्वारा हरण—२१६,—का विश्वामित्र द्वारा हरण—३६३,—का शरीर-संगठन—३६४,—की उत्पत्ति—२१८,—से म्लेच्छ जातियों की उत्पत्ति—३६४ ।

नन्दिसेन—कुमार कार्त्तिकेय का एक पार्षद—३१३३ ।

नन्दीश्वर—शिव के द्वार-रक्षक और वाहन—४००७, ४२३८ ।

नप्ता—एक विश्वेदेवा—४१२४ ।

नभकानन—दक्षिण का एक जनपद—१८६० ।

नभोद—एक विश्वेदेवा—४१२४ ।

नमुचि—दक्षकन्या दनु का पुत्र; मयासुर का भाई—१३५, ५०१, ७४१, १०३०, १०३८, ३४४५, ३५६१,—और इन्द्र का संवाद—३६७१-७२ ।

नर (१)—नारायण के भाई; पुरातन देव एक ऋषि; धर्म के पुत्र—६२-६३, १६१५, ३६०७,—और दम्भोद्भव का सवाद—१६६८,—और नारायण का आश्रम—६८७,—और नारायण का उपासना-स्थल—५१५,—और नारायण का कर्त्तव्य—१६१६,—और नारायण का क्रमोत्कर्ष—१६६६,—और नारायण का तपश्चरण—१६६७,—और नारायण का माहात्म्य—१६१५-१६,—और नारायण का रुद्र से युद्ध—३६०७-०८,—और नारायण की तपस्या—३६१०,—का, दम्भोद्भव से, इषीकास्त्र द्वारा युद्ध—१६६८—का देवताओं को परास्त करना—१६१६,—की तपस्या—३६१३,—कृत असुर-संहार—१६१५,—से दम्भोद्भव की हार—१६६८ ।

नर (२)—गन्धर्वजाति-विशेष—५३२ ।

नरक (नरकासुर) (१)—एक असुर; दक्षकन्या दनु का पुत्र—१३५ ।

नरक (नरकासुर) (२)—एक असुर, प्राग्ज्योतिषपुर का अधिपति; इसका सेनापति मुरु नामक एक दानव था—७१६,—का वध—६८२ ।

नरक (३)—एक असुर, जिसे इन्द्र ने मारा था—१०३८ ।

*नरक—का अधिकारी—१११५,—के द्वार—१५५६, १६४६ ।

नरराष्ट्र—दक्षिण दिशा का एक देश, 'सम्भवतः मालवा के निकट'—५७६ ।

नरवर—दक्षिण देश की एक जाति—३६३७ ।

नरिष्यन्त—वैवस्वत मनु के पुत्र—१४५ ।

नर्मदा—दक्षिण भारत की एक प्रसिद्ध नदी; इक्ष्वाकुवशी राजा दुर्योधन की पत्नी, पुत्री सुदर्शना—५३१, ५७७, ८६७, १८८६, ४००७ ।

नल (१)—निषध-नरेश वीरसेन के पुत्र, स्त्री दमयन्ती, पुत्र इन्द्रसेन; पुत्री इन्द्रसेना, श्वशुर विदर्भ-नरेश भीम—१५, १६, ७२१, १७२४, ४१८१,—और कर्कोटक का संवाद,—८३४-३५,—और दमयन्ती का मिलन—८५७,—और पुष्कर की द्यूत-क्रीड़ा—८१३-१४,—का कलियुग से छुटकारा—८४८,—का दमयन्ती द्वारा वरण—८१०,—का देशत्याग—८१६-१७,—का दौत्य—८०६-०७—का रथ-सञ्चालन-कौशल ८४६,—का राज्य-लाभ—८६०,—की खोज—८४१-४४—की जाँच—८५१-५४,—की जूए में जीत—८६०,—की सेवा-वृत्ति—८३६,—की हार—८१६,—के अलौकिक कार्य—८५३,—के उपाख्यान का माहात्म्य—८६१-६२,—को अश्व-विद्या की प्राप्ति—८४७, ८५६,—को कर्कोटक से वस्त्र और वर की प्राप्ति—८३५,—को गणना-विद्या की प्राप्ति—८४७,—को द्यूत-क्रीड़ा से रोकने की चेष्टा—८१५,—को लोकपालों का वरदान—८११,—द्वारा दमयन्ती का त्याग—८१६-२०,—द्वारा विदर्भ नगर का मार्ग-निर्देश—८१७ ।

नल (२)—राम की सेना का एक वानर-यूथपति; विश्वकर्मा का पुत्र—१२८८,—और तुण्ड का युद्ध—१२६२,—का समुद्र मे पुल बाँधना—१२८६ ।

निरमित्र (२)—त्रिगर्त-नरेश का पुत्र, कौरव-पक्ष का योद्धा—२३६६,—का वध—२३६६ ।
*निरर्थक कौन है—३४१२ ।
निरविन्द—एक पवित्र पर्वत—४००६ ।
निरामय—एक राजा—१६ ।
निरामया—एक नदी—१८८६ ।
निरामर्द—एक राजा—१६ ।
निरुद्ध—एक राजा - ४१५ ।
निऋति (१)—ग्यारह रुद्रों में से एक; स्थाणु के पुत्र; ब्रह्मा के पौत्र—१३६ ।
निऋति (२)—अधर्म की स्त्री, नैऋत नामक राक्षस तथा भय, महाभय और मृत्यु की माता—१३६ ।
*निर्गुण पुरुष—३८३७ ।
*निधनता के दोष—१६५२-५३, १७६० ।
निर्मन्थ्य—एक अग्नि—५२८ ।
निर्मोचन नगर—एक नगर जहाँ श्रीकृष्ण ने छः हज़ार राक्षसों का संहार किया था—१६१२, १७४७ ।
निर्वीर तीर्थ—८८४ ।
निवात-कवच—ब्रह्मा के पैरों से उत्पन्न हिरण्यपुर-निवासी दानवगण; अर्जुन ने इनका वध किया था—१७०३, १७६४, १८०१, १८२६,—दानवों का दुर्जयत्व—१७०३,—दानवों का माया-युद्ध—१०४१-४२,—दानवों का वध—१०४३ ।
निशठ (१)—एक यादव; बलभद्र के पुत्र—४७८, १४८५,—की मरणोत्तर-गति—४४७३ ।
निशठ (२)—यम की सभा का एक राजा—५२६ ।
निशा—भानु (अग्नि) की कन्या, माता बृहद्भासा; भाई बलद, मन्युमान्, धृतिमान्, अङ्गिरा, आग्रयण, अग्रह, स्तुभ, अग्नीषोम—११६२ ।
निशाकर—एक गरुड़—१७०४ ।
निश्च्यवन—एक अग्नि, पिता बृहस्पति; पुत्र 'सत्य'; माता चान्द्रमसी—११५६ ।
निषङ्गी—राजा धृतराष्ट्र का एक पुत्र—१४२, २५६,—का वध—२६५६ ।
निषध (१)—जनमेजय (२) के पुत्र—२०७, ५२६ ।
निषध (२)—एक देश; 'विन्ध्य पर्वत-श्रेणी के दक्षिण, ७४°-७५° पूर्व देशान्तर का मध्यवर्ती भू-भाग जो उत्तर-पूर्व में अवन्ती तक और दक्षिण-पूर्व में विदर्भ तक विस्तृत था'—८०१, १०८६, १८८३, १८६० ।
निषध (३)—गन्धमादन के पश्चिम और काबुल नदी के उत्तर का एक पर्वत; 'आधुनिक हिन्दूकुश'—१८८६ ।
निषाद (१)—निषादों का राष्ट्र; 'जो मालवा और मध्य भारत के पठार में स्थित था'—१८६० ।
निषाद (२)—एक पहाड़ी म्लेच्छ जाति—३३७८,—की उत्पत्ति—३३७८ ।
निषादभूमि—दे० "निषाद" (१)—५७६ ।
*निषिद्ध बाण—२६५० ।
निष्कुट—एक उत्तर दिशा का पहाडी प्रदेश, अर्जुन द्वारा विजित—५७२ ।
निष्कृति—एक अग्नि; बृहस्पति के दूसरे पुत्र; निश्च्यवन के बेटे, नामान्तर सत्य, स्वन के पिता—११५६ ।
निष्ठानक—एक साँप—८४ ।
निष्ठुरक—एक नाग—१७०६ ।
निसुन्द—एक असुर; श्रीकृष्ण द्वारा निहत—७१६ ।
*नीच को आश्रय न दे—३४७५-७७ ।
*नीति—अधम—१७५३, —उत्तम—१७५३,—त्रिविध १५५६,—नीच—१७५३ —मध्यम—१७५३,—शम्बर-कथित—१६५२, १७५६,—श्रेयस्कर—१७४१-४२ ।
*नीतिज्ञ गीदड़ की कथा—३२१-२२ ।
*नीति-निरूपण—अश्मा द्वारा जनक को—३३१६-१७,—आत्रेय द्वारा साध्यगण को—१५७१-७२,—कणिक द्वारा धृतराष्ट्र को—३१६-२५,—कुबेर द्वारा युधिष्ठिर को—१०२५,—नकुल द्वारा श्रीकृष्ण को—१६६५,—प्रह्लाद द्वारा बलि को—७४५-४७,—भीष्म द्वारा युधिष्ठिर को—३५६२-६३,—भीमसेन द्वारा युधिष्ठिर को—५४६,—युधिष्ठिर द्वारा भीमसेन को—१२०७,—वक (मुनि) द्वारा इन्द्र को—११०४,—विदुर द्वारा दुर्योधन को—६४६,—विदुर द्वारा धृतराष्ट्र को—१५५३-६५, १५६८-७०, १५७२-७५, १५७६-८६, १६४२-४३,—व्यास द्वारा युधिष्ठिर को—३३१७-१८,—व्यास द्वारा शुकदेव को—३८५४,—श्रीकृष्ण द्वारा कुन्ती को—१६८५-८६,—श्रीकृष्ण द्वारा दुर्योधन को—१७३३-३५,—श्रीकृष्ण द्वारा युधिष्ठिर को—५४८,—

प

(१) किन्तु कनिंघम साहब के मतानुसार यह नदी आजकल की पार्वती नदी है, जो भूपाल से निकलकर चम्बल नदी में मिल जाती है। श्रीयुत नन्दलाल दे, एम० ए०, बी० एल० ने भी इसे पार्वती माना है। यथा--"मालवा की पार्वती नदी, जो नरवर के उत्तर में वक्राकार बहती हुई, विजयनगर के समीप सिन्ध (यमुना की सहायक) में गिरती है। यह तो हुई पूर्वी पार्वती। पश्चिमी पार्वती चम्बल की सहायक नदी है।"

---

(१) श्रीयुत नन्दलाल दे, एम० ए०, बी० एल० ने ट्रावनकोर की पाम्बई नदी को पुष्पवती माना है। पर प्रसङ्ग के अनुसार वह इससे भिन्न मालूम होती है।

(२) पोई नामक शाक।

फ

ब

भ

भद्रकर्णेश्वर—गया-तट पर सरस्वती-गंगा के संगम के निकट एक तीर्थ—८८० ।
भद्रकार—एक वंश—५४३ ।
भद्रतुङ्ग—एक तीर्थ—८६६ ।
भद्रमना—कश्यप की कन्या, माता क्रोधा—१३६ ।
भद्रवट—कैलास पर्वत पर स्थित एक वटवृक्ष जहाँ महादेवजी का आसन था—११८३ ।
भद्रशाख—कार्त्तिकेय—११७४ ।
भद्रशाल—उत्तर-कुरु खण्ड का एक वन—१८८६ ।
भद्रा (१)—कात्तीवान् की कन्या; व्युषिताश्व की रानी—२६५,—के पुत्रोत्पत्ति—२६६ ।
भद्रा (२)—एक देवी—५३५ ।
भद्रा (३)—विशाला के राजा की कन्या जिसका विवाह करूष देश के राजा के साथ होने को था; करूष-नरेश की पोशाक पहनकर शिशुपाल उसे धोखे से उड़ा ले गया—६०४ ।
भद्रा (४)—वसुदेव की एक स्त्री—४४५६,—का सती होना—४४५६ ।
भद्राश्व—भरतखण्ड का एक खण्ड—१८८३, १८८५,—के वृक्ष, नदी और निवासी आदि—१८८६ ।
भय—अधर्म का पुत्र—१३६ ।
भयङ्कर (१)—सौवीर देश का एक राजकुमार—१२४६ ।
भयङ्कर—(२) एक विश्वेदेवा—४१२४ ।
भरत (१)—महाराज दुष्यन्त के पुत्र; माता शकुन्तला; नामान्तर सर्वदमन—१५, २०३, ४४८, ५४६, २३०५, ४१८१,—की उत्पत्ति—१८६,—के अश्वमेध यज्ञ—६५६ ।
भरत (२)—अयोध्यानरेश दशरथ के पुत्र, माता कैकेयी—१२६५,—और शत्रुघ्न का, रामलक्ष्मण के साथ, सम्मिलन—१३०४,—का जन्म—१२६५,—का राम को वन से लौटाने का प्रयत्न—१२७०-७१,—का विवाह १२६६,—का शोक-सन्ताप—१२७०,—की शिक्षा—१२६६ ।
भरत (३)—अद्भुत अग्नि के पुत्र—५२८, ११६३ ।
भरत (४)—शंयु (अग्नि) के पुत्र—११५६ ।
भरतखण्ड—भारतवर्ष—१८८४,—का वृत्तान्त—१८८८-९१ ।
भरद्वाज (१)—एक ऋषि; द्रोणाचार्य के पिता—५०, १३१, २६०, ३६३६, ४०१६,—और शत्रुञ्जय का संवाद—३५२३-२६,—की शपथ (अगस्त्य के मृणाल न चुराने के सम्बन्ध में)—४१३६,—की शपथ (सप्तर्षियों के मृणाल न चुराने के सम्बन्ध में)—४१३३,—द्वारा संन्यासी और उसके कुत्ते की स्थूलता का कारण-निर्देश—४१२६,—शब्द की निरुक्ति—४१३१ ।
भरद्वाज (२)—एक ऋषि; यवक्रीत के पिता—९७०,—का पुनर्जीवन—९७७,—का प्राण-त्याग—९७६,—का विलाप—९७५ ।
भरद्वाज (३)—एक अग्नि; शयु (अग्नि) के पुत्र—११५९ ।
भरद्वाज (४)—एक जनपद—१८९० ।
भर्ग—एक जनपद—१८९० ।
भर्तृस्थान—एक तीर्थ—८८२, ८८८ ।
भल्लाट—शुक्तिमान् पर्वत के निकट का एक देश—५७५ ।
भव (१)—एक प्राचीन राजा—१६ ।
भव (२)—एक विश्वेदेवा—४१२४ ।
*भवाटवी में संसार-कूप—३२३६-३७ ।
*भविष्य और हरिवंश पर्व की अध्याय-श्लोक-संख्या—३० ।
भागीरथी—प्रसिद्ध गङ्गा नदी—४००५, ४००६ ।
*भाग्य और उद्योग की तुलना—३९४९-५० ।
भाङ्गासुरि—यम की सभा का एक राजा—५२९ ।
भाण्डायनि—इन्द्र की सभा के एक ऋषि—५२८ ।
भानु (१)—एक देवता (दिव के पुत्र)—३ ।
भानु (२)—दक्षकन्या प्राधा का पुत्र—१३६ ।
भानु (३)—श्रीकृष्ण का एक पुत्र—५१४,—की मरणोत्तर गति—४४७३ ।
भानु (४)—पाञ्चजन्य का एक पुत्र जिससे आङ्गिरस च्यवन का वंश चला—११६१ ।
भानु (५)—अङ्गिरा से उत्पन्न एक अग्नि—११६२ ।
भानु (६) एक स्वर्गवासी राजा—१४५५ ।
भानुदत्त—शकुनि का भाई; कौरव-पक्ष का योद्धा—२५५३,—का वध—२५५३ ।
भानुमती (१)—कृतवीर्य की कन्या, अहंयाति की रानी; सार्वभौम की माता—२०८ ।
भानुमती (२)—अङ्गिरा ऋषि की कन्या; माता शुभा; भाई बृहत्कीर्ति, बृहज्ज्योति, बृहद्ब्रह्मा, बृहन्मना,

मानवी—एक नदी—१८८६ ।

मानस (१)—जनमेजय के सर्पयज्ञ में जला एक साँप —११५, ११६ ।

मानस (२)—एक पर्वत—११६५ ।

मानस (३)—'पश्चिमी तिब्बत में कैलास पर्वत से दक्षिण एक झील; ब्रह्मपुत्र नदी इसी से निकलती है; यह समुद्र-तल से १५०६८ फुट की ऊँचाई पर स्थित है तथा इसकी गहराई २६८ फुट तक है; इसका प्राकृतिक सौन्दर्य अत्यन्त मनोमोहक है'—४२५१ ।

मानसद्वार—एक पर्वत—६६० ।

मानस सरोवर—दे० "मानस (२)"—५७३ ।

मानुष तीर्थ—८७३ ।

मान्धाता—सूर्यवंशी राजा युवनाश्व के पुत्र—५४६,—और इन्द्र का संवाद—३३८६-८८,—और उतथ्य का संवाद—३४३२-३६,—और वसुहोम का संवाद—३४८५-८६,—की कथा—६५३-५५, २२६६-२३००,—यम की सभा में—५२६ ।

*माया, त्रिगुणात्मक—११४७-४८ ।

मारिषा—एक नदी—१८८६ ।

मारीच—एक राक्षस; रावण का मन्त्री—६६५, १२७२,—का जीते जी स्वयं अपना और्ध्वदैहिक कर्म करना—१२७३,—का वध—१२७३ ।

मारुत पाण्डव-पक्ष का एक योद्धा—१६८४ ।

मारुतन्तव्य विश्वामित्र का एक पुत्र—३६४७ ।

मारुतस्कन्ध—एक प्रकार का व्यूह—११=४ ।

मारुध—एक राजा—५७७ ।

मार्कण्डेय-एक अद्वितीय तपस्वी; ये मृत्युञ्जय हैं; महर्षि मृकण्ड के पुत्र; स्त्री धूमोर्णा; पुत्र वेदशिरा—५१७, ५३४,—और बालमुकुन्द का संवाद—१०८७-६०,—और युधिष्ठिर की बातचीत—१०६६-७१,—का काम्यक वन में पाण्डवों के पास आना—१०६८,—का द्वैतवन में पाण्डवों के पास आना—७४१,—का महत्त्व—१०८१,—का युधिष्ठिर को उपदेश—७४१, १०६५-६६, १३०४-०५,—का युधिष्ठिर को रामचन्द्र का चरित सुनाना—१२६४,—की पितृ-कार्य-विषयक अभिज्ञता—४१६४,—कृत चतुर्युग-वर्णन १०८२-८४ ।

मार्कण्डेय तीर्थ—'बनारस से प्रायः १६ मील उत्तर-पूर्व, गङ्गा और गोमती के सगम के पास, प्रसिद्ध तीर्थ'—८८२ ।

*मार्कण्डेयसमास्यापर्व—१०६४ ।

मार्गणप्रिया—दक्षकन्या प्राधा की पुत्री—१३६ ।

मार्गमर्षि—विश्वामित्र का एक पुत्र—३६४७ ।

मार्तिकावत (१)—मार्तिकावत देश का प्रधान नगर; 'अजमेर से ३६ मील उत्तर-पश्चिम मेड़ता नामक स्थान'—७३१, ४४५८ ।

मार्तिकावत (२)—एक देश, 'आधुनिक जयपुर, जोधपुर और अलवर राज्य का सम्मिलित भू-भाग'—२३०६ ।

मार्त्तिकावतक—दे० "मार्तिकावत (२)"—६३८ ।

मार्त्तिकावतक भोज—दे० "भोज (४)"—२२७५ ।

माल—'विदेह के पूर्व और मगध के उत्तर-पश्चिम की ओर, गङ्गा के उत्तर, स्थित एक जनपद; छपरा ज़िला इसके अन्तर्गत था'—१८८६ ।

मालय—एक गरुड़—१७०४ ।

मालव (१)—'मालव या मल्ल जाति का राज्य, जो पञ्जाब में था तथा जिसकी राजधानी मुल्तान थी'—५८१, १२२६, २०७१ ।

मालव (२)—दक्षिण का एक जनपद—१८६० ।

मालव (३)—मद्र-नरेश अश्वपति के, मालवी नाम की रानी से उत्पन्न, १०० पुत्र—१३१८ ।

मालव (४)—'पञ्जाब की एक युद्ध-प्रिय जाति; सिकन्दर के समय में भी इस जाति का प्रजातन्त्र राज्य वर्तमान था'—१६३१, १६८४ ।

मालवा—एक नदी—४२६५ ।

मालवी—मद्र-नरेश अश्वपति की बड़ी रानी; सावित्री की माता—१३०६ ।

माला—एक नदी; श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीमसेन इसे तय करके—चम्बल को लाँघने के अनन्तर—मगध राज्य में पहुँचे थे—५५७ ।

मालिनी (१)—'सहारनपुर और अवध की चूका नदी जिसके तट पर कण्व ऋषि का आश्रम[२] था'—१६०, १६५ ।

मालिनी (२)—कुमार कार्त्तिकेय की माता—११७४ ।

---

(१) सम्भवतः पञ्जाब के इतिहास-प्रसिद्ध मालवों के मूल-पुरुष । (२) इस पर विद्वानों में मतभेद है ।

मालिनी (३)—एक राक्षसी जो कुबेर के पिता विश्रवा की सेवा मे थी, उससे विभीषण की उत्पत्ति हुई —१२६६ ।

मालिनी (४)—एक अप्सरा—१३७६ ।

माल्य-पिण्डक—एक नाग—१७०६ ।

माल्यवान् (१)—एक पर्वत, 'कराकोरम पर्वत जो निषध पर्वत के उत्तर और नील पर्वत के दक्षिण है'—१०१४, १८८३, १८८७ ।

माल्यवान् (२)—एक पर्वत; 'पूर्वीघाट का उत्तरी भाग, जो तुङ्गभद्रा नदी के तट पर अनगण्डी पर्वत-शृंखला के नाम से विख्यात है'—१२७८ ।

मावेल्ल (१)—राजा उपरिचर के पुत्र—१२७ ।

मावेल्ल (२)—युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ का एक राजा —५८५ ।

मावेल्लक—'सम्भवत: मालव और त्रिगर्त देश के बीच का एक जनपद'—२२०६ ।

माहिक—एक जनपद—१८६० ।

माहिषक (१)—दक्षिण का एक जनपद; 'आधुनिक मैसूर'—१८६० ।

माहिषक (२)—वाह्लीक देश की एक जाति—२८३० ।

माहिष्मती (पुरी) (१)—'इन्दौर से चालीस मील दक्षिण, नर्मदा के दाहिने तट पर स्थित, महेश्वर नामक स्थान'—५७७, १८२०, ३६४० ।

माहिष्मती (२)—अङ्गिरा ऋषि की छठी कन्या—११५६ ।

माहेय—'माही और नर्मदा के बीच का एक जनपद'—१८६० ।

माहेश्वरपद—एक तीर्थ—८८३ ।

माहेश्वरपुर—एक पवित्र स्थान—८८४ ।

माहेश्वरी (१)—एक पवित्र नदी—८८३ ।

माहेश्वरी (२)—एक मातृका—११७६ ।

मित्र—एक आदित्य; कश्यप के, दक्षकन्या अदिति से उत्पन्न, पुत्र—१३५, ५२८, ३१३२, ३६३८, ४२३८ ।

***मित्र—और अमित्र के लक्षण—३४१४-१६,—के लक्षण —३५७१-७२,—शब्द की व्युत्पत्ति—२८२५ ।**

मित्रघ्न—यज्ञ में विघ्न डालनेवाला एक देवरूप असुर, जो पाञ्चजन्य द्वारा उत्पन्न हुआ था—११६१ ।

***मित्रता कैसी होती है**—४०५२ ।

मित्रदेव—त्रिगर्तराज सुशर्मा का भाई; कौरव-पक्ष का योद्धा २७७३,—**का अर्जुन द्वारा वध—२७७४ ।**

मित्रधर्मा—पाञ्चजन्य द्वारा उत्पन्न, यज्ञ मे विघ्न डालनेवाला, एक देवरूप असुर—११६१ ।

मित्रवर्द्धन—पाञ्चजन्य द्वारा उत्पन्न, यज्ञ मे विघ्न डालनेवाला, एक देवरूप असुर—११६१ ।

मित्रवान्—पाञ्चजन्य द्वारा उत्पन्न, यज्ञ में विघ्न डालनेवाला, एक देवरूप असुर—११६१ ।

मित्रविन्द—एक अग्नि—११६१ ।

मित्रसह—दे० "कल्माषपाद"—४२०८ ।

मित्रसा—पार्वती की अनुगामिनी एक देवी—११८३ ।

मित्रावरुण—एक ऋषि—१७१४, ३६३६ ।

मिथिला—'निमि-पुत्र मिथि द्वारा स्थापित राज्य, इसकी राजधानी जनकपुर थी जो मिथिला राज्य और राजधानी दोनो के लिये व्यवहृत थी।'—२५०, ५५७, १२२५, ३८५८ ।

मिध्य—एक अग्नि; वीर (रथप्रभु, रथध्वान और कुम्भरेता) के पुत्र; माता सरयू; नामान्तर सिद्धि ११५६ ।

***मिथ्या—निर्णय करने का पाप—१५६७,—भाषण के पाप—१५६७-६८,—साक्ष्य देने का पाप—१५६७ ।**

मिथ्या वासुदेव—वङ्ग-पुण्ड्र-किरात देशों का राजा, जो जरासन्ध का अनुगत था—५४२ ।

मिश्रक तीर्थ—'अवध के सीतापुर जिले में मिसरिख नाम का प्रसिद्ध तीर्थ'—८७४ ।

मिश्रकेशी—दक्षकन्या प्राधा से उत्पन्न एक अप्सरा; पुरुपुत्र रौद्राश्व की पत्नी, अन्वग्भानु की माता—१३६, १८६, २७३, ३६६२ ।

मिश्री—एक नाग—४४५३ ।

***मुक्ति का साधन**—११४४ ।

मुखमण्डिका—बालको के मास से संतुष्ट होनेवाली दैत्य-माता दिति; एक बालग्रह—११७६ ।

मुखर—एक नाग—१७०६ ।

मुखसेचक—जनमेजय के सर्पयज्ञ में जला एक साँप—११६ ।

मुचुकुन्द—एक राजर्षि; मान्धाता के पुत्र—५२६, ६०१, १८८८, ४१८१,—**और भार्गव का संवाद—३५३५-४०,—का आत्म-गौरव—१७५१ ।**

य

युधामन्यु—पाञ्चाल देश का पाण्डव-पक्ष का एक योद्धा —१६३२, १७६८, १८२७,—का वध—३२०६।

युधिष्ठिर—पाण्डु के पहले पुत्र, माता कुन्ती, भाई भीमसेन और अर्जुन; रानियाँ द्रौपदी और देविका, पुत्र प्रतिविन्ध्य और यौधेय—२१२,—आदि का धृतराष्ट्र के तपोवन को जाना—४४२६-२७—आदि का भीष्म के पास धर्मोपदेश सुनने जाना—३३६६,—आदि की इन्द्र से भेंट—१०३२,—आदि की युद्ध-यात्रा—१६११,—और अर्जुन का संवाद—४२५,—और किर्मीर का संवाद —७१२-१३,—और कुन्ती का वक वध-विषयक संवाद —३६६, ३६७, ३६८,—और कुबेर का संवाद— १०२४-२५,—और चित्रसेन का संवाद—१२१२,— और जटासुर का संवाद—१००९-१०—और त्रिगर्त-नरेश का युद्ध—१२५६,—और दुर्योधन का युद्ध —२७७५,—और द्रुपद का संवाद—४३२,— और द्रोणाचार्य का युद्ध—२३६६-६८,—और द्रौपदी का संवाद—७४३-५८,—और धर्म का संवाद—१३४८-५३,—और नारद का संवाद— ८६४-६५,—और भीमसेन का संवाद—७५८-६८, ७६६-८००, ६७६,—और भीष्म का संवाद—५६५-६६,—और मार्कण्डेय का संवाद—१०६६-७१,—और लोमश का संवाद—८६६-६८, ६००-०१,—और विराट की अक्ष-क्रीड़ा—१४७७,—और व्यास का संवाद—३५७, ६०८-०६, १२३३-३६,—और शकुनि का द्यूत-विषयक संवाद—६३३-३५,—और शल्य का युद्ध—१६६५, २११४, ३०४६-५४,—और शल्य की भेंट—१५००,—और शौनक का संवाद—६६१-६४,—और श्रीकृष्ण का संवाद—१०६६-६८,—और श्रीकृष्ण-सात्यकि का संवाद—६४४-४५,—और सहदेव का संवाद—१०१०,—और सुशर्मा का युद्ध—१४२०, —का अज्ञातवास-विषयक मन्तव्य—१३६०-६१,—का अर्थ-सङ्कट—४२७४,—का अश्वमेध यज्ञ—४३८८,— का उद्वेग—४२७३,—का कर्ण के लिए शोक—३२७६-७७,—का कृत्रिम नाम और गोत्र—१३७३,—का कृपाचार्य से युद्ध की अनुमति माँगना—१६५६,—का चरित्र—१६८२,—का छद्मवेष से विराट की सभा मे गमन—१३७२,—का जन्म—२१०, २७०,—का जयद्रथ को उपदेश—१२६०,—की द्यूत-क्रीड़ा मे हार—६३६-३७, ६४३-४५,—का धनुष—१४३४,—का धर्म की प्रामाण्यता पर आक्षेप—३७२१-२२,—का, धृतराष्ट्र आदि की मृत्यु का समाचार सुनकर, खेद— ४४४५,—का धृष्टद्युम्न को कौरव-संहार के लिए उत्तेजन—१६८३,—का नगर-प्रवेश—३३४३,—का पछतावा—३२८२-८४,—का परास्त होना २८४८, २८६७,—का प्रजा-पालन—५३८-३६, ५८१,—का प्रण —४४६५,—का बन्धु-वात्सल्य—४४६६-६६,—का ब्राह्मणों को धन-दान—४३६०,—का, भाइयों से, युद्ध-विषयक परामर्श—१७८६,—का भागना—२५७६,— का, भीष्म के प्रथम दिन के युद्ध से, चिन्ता-ग्रस्त होना— १६८३,—का भीष्म के लिए शोक—४२७१,—का मन्दाकिनी-स्नान और दिव्य-स्वरूप-ग्रहण—४४७२,—का महाप्रस्थान—४४६२,—का मिथ्या-भाषण—२६५७, —का मुञ्जवान् पर्वत पर जाकर सुवर्ण प्राप्त करना— ४३५६-६०,—का युद्ध-वर्णन—२०६४,—का, युद्ध-सम्भावना से, चिन्तित होना—१७६३,—का राजसूय यज्ञ—५८७,—का, राजसूय यज्ञ के लिए, मन्त्रियों से परामर्श—५३६-४०,—का राज्याभिषेक—६२५, ३३४५-४६,—का, विराट की सभा में, अपने को प्रकट करना —१४८२,—का विश्राम—२८६२, २८६७,—का 'वृक्ष'-रूपक—१५४३,—का शल्य से कर्ण को निस्तेज करने का वर माँगना—१६६०,—का शल्य से युद्ध की आज्ञा माँगना—१६६०,—का शासन—५८२,—का शिशुपाल को समझाना—५६१-६२,—का शोक—१६८२, ३२१६-१७,—का शोक-नाश—४२६०,—का श्रीकृष्ण से, कुन्ती और मुख्य-मुख्य कौरवों को, सन्देश कहना— १६७१,—का सञ्जय से, कौरव-पक्ष के राजाओं को, सन्देश कहना—१५४५,—का सञ्जय से कौरवों की नीति आदि पूछना—१५२८-२६,—का सञ्जय से, दुर्योधन आदि को, सन्देश कहना—१५४४-४५, १५४६-४८,—का सञ्जय से नीतिधर्म-सङ्गत वक्तव्य —१५३१-३४, १५३६-३८,—का सञ्जय से विदुर को सन्देश कहना—१५४५-४६,—का सदेह स्वर्गारोहण—४४६६,—का सन्ताप—६८६,—का सभा-भवन—५१६, ५१७, ६२०-२१,—का, सरोवर के तट पर मृत भाइयों के लिए, शोक और तर्क-वितर्क—१३४६-४७,—का सुशर्मा की सेना से

*राम (रामचन्द्र) (१)—विष्णु के अवतार, अयोध्या के राजा; सूर्यवंशी महाराज दशरथ के पुत्र; पत्नी सीता; पुत्र लव और कुश; भाई भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न—१५, १७४, ८८२, ४१८१,—और इन्द्रजित् का युद्ध १२९७,—और खर की शत्रुता—१२७१,—और जटायु का संवाद—१२७५, —और रावण का युद्ध—१२९२, १३००, —और रावण के युद्ध में निहत वानरों का पुनर्जीवन—१३०३,—और लक्ष्मण तथा भरत-शत्रुघ्न का सम्मिलन—१३०४,—और समुद्र का सजातीयत्व—१२८८,—और सुग्रीव की मैत्री—१२७७,—का, इन्द्रजित् द्वारा, बाण-पाश में बांधा जाना—१२९७,—का इन्द्र-प्रेषित रथ पर आरोहण—१३००, —का उपाख्यान—२२९६-९७,—का कुबेर को पुष्पक विमान लौटाना—१३०४,—का जन्म—१२६५,—का पम्पा सरोवर में स्नान और पितृ-तर्पण—१२७७,—का राज्याभिषेक—१३०४,—का, लङ्का से, अयोध्या को लौटना—१३०३-०४,—का वन-गमन—१२७०,—का विवाह—१२६९,—का विश्राम-स्थल—८८८,—का शरभङ्ग के आश्रम को जाना—१२७१,—का शरीर-सौन्दर्य—१२६९,—का सुवर्ण-मृगरूपधारी मारीच का पीछा करना—१२७३,—का, सेना समेत, समुद्र पार करना—१२८९,—का स्वर्गारोहण-स्थान—८८२,—की मातलि-कृत स्तुति—१३०३,—की मूर्च्छा—१२९७,—की युद्ध-यात्रा—१२८७,—की वानरी सेना—१२८७,—की शिक्षा—१२६९,—के अलौकिक गुण—१२६९,—के अश्वमेध यज्ञ—१३०४,—के पूर्वज—१२६५,—को ब्रह्मा से वरलाभ—१३०३—को विश्वावसु का परामर्श—१२७६-७७,—द्वारा जटायु का और्ध्वदैहिक कर्म किया जाना—१२७५,—द्वारा बाली का वध —१२७९,—द्वारा रावण का वध—१३०० ।

राम (२)—'मध्य प्रान्त में नागपुर से २४ मील उत्तर रामतेज या रामटेक पर्वत'—५८० ।

राम (३)—परशुराम—४०६२ ।

रामकुण्ड—दे० "द्वैपायन (२)"—९५८, ४००७ ।

रामठ—एक म्लेच्छ जाति—५८१, ७९८ ।

रामतीर्थ (१)—सरयू-तटवर्ती एक तीर्थ, जहाँ रामचन्द्रजी भृत्य, वाहन और सेना सहित शरीर-त्याग करके स्वर्ग गये थे—८८२ ।

रामतीर्थ (२)—एक तीर्थ जहाँ परशुराम ने सौ वाजपेय और सौ अश्वमेध यज्ञ किये थे—३१४५ ।

*रामराज्य—२२९६ ।

रामह्रद—दे० "द्वैपायन (२)"—१८५९ ।

*रामायण की संक्षिप्त विवृति—९९५-९६ ।

*रामोपाख्यानपर्व—१२६४ ।

रावण—विश्रवा का पुत्र; राक्षसों का राजा; माता पुष्पोत्कटा; भाई कुम्भकर्ण—९९५, १७१५,—और रामचन्द्र का युद्ध—१२९२, १३००,—और शूर्पणखा का संवाद—१२७१,— और सीता का संवाद—१२८१-८२,—का कुबेर से लङ्का नगरी और पुष्पक विमान छीन लेना—१२६७,—का जन्म—१२६६,—का पुत्र-शोक—१२९८,—का माया-युद्ध—१२९९,—का वध—१३००,—की तपस्या—१२६६,—की मोर्चेबन्दी—१२९०,—की युद्ध-यात्रा—१२९९,—के पूर्वज—१२६५, १२६६,—के वध के लिए ब्रह्मा की व्यवस्था—१२६८,—को कुबेर का शाप—१२६७,—को नलकूबर का शाप—१२८०, १३०२,—को ब्रह्मा से वर-लाभ—१२६६-६७,—पर जटायु का आक्रमण—१२७४,—शब्द की निरुक्ति—१२६७ ।

*राष्ट्र—पवित्र—४००८ ।

राहु—दक्षकन्या सिंहिका का पुत्र; नव ग्रहों में से एक—१३५,—का कबन्ध—१७१६,—का शिरश्छेद—६२,—द्वारा सूर्य-चन्द्र का तेज-हरण—४२४७,—का परिमाण—१८९५ ।

रिष्ट—एक राजा—५२९ ।

रुक्मरथ —मद्र-नरेश शल्य का पुत्र; कौरव-पक्ष का योद्धा, अभिमन्यु द्वारा निहत —४१५, १९७२, २४१३,—का वध—२२७० ।

रुक्माङ्गद—मद्र-नरेश शल्य के पुत्र—४१५ ।

रुक्मिणी—विदर्भ-नरेश भीष्मक की कन्या; रुक्मी की बहन; लक्ष्मी का अंशावतार; श्रीकृष्ण की पत्नी; प्रद्युम्न (कामदेव) आदि की माता—१४४, ४१५, १७२४, १८००, ३९५७,—का आश्रम—१६०,—का प्राण-त्याग —४४५८,—का हरण—१८००,—के पुत्र—३९९३,—को दुर्वासा से वर-लाभ—४२५५ ।

रुक्मी—विदर्भ-नरेश भीष्मक का पुत्र, रुक्मिणी का भाई; श्रीकृष्ण का साला—१४१, ५७९, १४९३, १९१८,

१८००,—और अर्जुन का संवाद—१८००-०१,—का दिव्य धनुष—१८००,—का दुर्योधन के पास जाना—१८०१,—का पाण्डव-शिविर में आगमन—१८००,—की अस्त्र-शिक्षा—१८००,—की आत्म-प्रशंसा—१८०१,—की तीर्थ-यात्रा—१८०१,—की नवीन राजधानी—१८०० ।

रुचि (१)—एक अप्सरा—३९९३ ।

रुचि (२)—देवशर्मा की स्त्री—४०३१ ।

रुचिपर्वा—राजा कृति का पुत्र, कौरव-पक्ष का योद्धा, सुपर्वा नामक पहाड़ी राजा द्वारा निहत—२२३२-३३ ।

रुद्र—महादेव, शिव—१७२४,१८५७,२२८५,३११८,—की पूजा—३८९७,—कौन हैं—३४०४,—ग्यारह—१३६, २७३, ४२३८ ।

रुद्रकोटि—कुरुक्षेत्र का एक तीर्थ—८७० ।

रुद्रकोटि कूप और कुण्ड—कुरुक्षेत्र के रुद्रकोटि नामक तीर्थ-स्थान में एक कूप और कुण्ड—८७४ ।

रुद्रपद तीर्थ—'मान्धाता; नर्मदा नदी में एक टापू जहाँ ओंकारनाथ का मंदिर है, खण्डवा से ३२ मील उत्तर-पश्चिम, मोरटक्का रेलवे-स्टेशन से सात मील उत्तर-पूर्व और बाबई से ६ मील पूर्व'—८६९ ।

रुद्रमार्ग तीर्थ—८७८ ।

रुद्रवट—एक तीर्थ, महादेवजी का स्थान—११८३ ।

रुद्रसुता—अङ्गिरा की तीसरी कन्या, नामान्तर सिनीवाली—११५८ ।

रुद्रसूनु—कार्तिकेय का एक नाम—११७६,—शब्द की निरुक्ति—११७६ ।

रुद्रसेन—पाण्डव-पक्ष का एक योद्धा—२५५७ ।

रुद्राणी—दे० "पार्वती"—५३५, १७२४ ।

रुद्रावर्त—एक तीर्थ—८८० ।

रुमण्वान्—महर्षि जमदग्नि के पुत्र; माता रेणुका; भाई सुषेण, वसु, विश्वावसु और परशुराम—९३८ ।

रुरु—एक ऋषि; प्रमति के पुत्र; माता घृताची (अप्सरा); पुत्र शुनक; भार्या मेनका की पुत्री प्रमद्वरा—४९, ४०१८,—और डुण्डुभ का संवाद—५२-५४,—और प्रमद्वरा का वृत्तान्त—४९-५२ ।

रुषद्गु—यम की सभा का एक राजा—५२९ ।

रुषर्द्धिक—सुराष्ट्रवंशी कुलघातक एक राजा—१६५९ ।

रूपवाहिक—एक जनपद—१८९० ।

रूपी—अजमीढ का, केशिनी से उत्पन्न, पुत्र, जह्नु और व्रजन का भाई—२०६ ।

रेणुक—रसातल-निवासी एक ब्रह्मवादी महानाग—४२०३,—का दिग्गजों से नागों के लिए बलि प्रदान का ज्ञान प्राप्त करना—४२०३-०४,—का देवताओं को धर्मोपदेश—४२०४ ।

रेणुका—प्रसेनजित् की कन्या, महर्षि जमदग्नि की पत्नी, परशुराम की माता—९०९, ९३८, १७२४,—का वध—९३९,—को सूर्य-किरणों से क्लेश-प्राप्ति—४१३८ ।

रेणुका तीर्थ—'पञ्जाब में नाहन से १६ मील उत्तर एक तीर्थ'—८६९, ८७७ ।

रेणुप—एक जनपद—१७६७ ।

रेवती—स्कन्द का एक ग्रह (अदिति)—११७९ ।

रेवा—मनु नामक अग्नि की स्त्री—११६२ ।

रैभ्य—एक ऋषि; प्रजापति वीरण के पुत्र; दिक्पति कुक्षि के पिता—५१७, ३९१९,—उपरिचर के अश्वमेध यज्ञ के सदस्य—३८८१,—का आश्रम—९७०,—का पुनर्जीवन—९७७,—का पूर्व दिशा में निवास—३९३९ ।

रैवत (१)—स्कन्द का एक ग्रह—११७९ ।

रैवत (२)—त्वष्टा के पुत्र; भाई विश्वरूप, यशस्वी, अनेकपाद्, अहिर्बुध्न्य और विरूपाक्ष—३६३८ ।

रैवत (३)—कार्तिक मास में मास-भक्षण का त्याग करनेवाले एक राजा—४१८१, ४२६५ ।

रैवतक पर्वत—दे० "उज्जयन्त गिरि"—५४४, ४७६, १८९२,—का दुर्ग—५४४,—का विस्तार—५४४,—पर उत्सव—४७७-७८ ।

रैवत मनु—रेवती से उत्पन्न पाँचवें मनु—१७१४ ।

रोचनामुख—एक दानव, गरुड़ द्वारा निहत—१७०९ ।

रोचमान (१)—अश्वमेध-यज्ञ-कर्ता एक राजा, अश्वग्रीव असुर का अंशावतार—१४०,—का भीमसेन द्वारा पराजित होना—५७४,—का वध—२८९९,—द्रौपदी के स्वयंवर में—४१५,—पाण्डव-पक्ष का रथी योद्धा—१८२८ ।

रोचमान (२)—उत्तर का एक राजा; अर्जुन द्वारा राजसूय-दिग्विजय में पराजित—५७२ ।

रोमहर्षण—एक सूत; उग्रश्रवा के पिता—१ ।

रोहिणी (१)—सुरभि की कन्या, बहन गन्धर्वी, विमला और अनला, सन्तान गायें—१३६ ।

रोहिणी (२)—वसुदेव की पत्नी, बलदेव की माता; —४३६—का सती होना—४४५६ ।

रोहिणी (३)—हिरण्यकशिपु की कन्या; विश्वपति (स्विष्टकृत्) अग्नि की स्त्री—११६२ ।

रोहिणी (४)—एक नक्षत्र, चन्द्रमा की स्त्री—११७८, १२८१, १३७६, १७२४, १८७६, ४२२७,—का देवता—१७७१ ।

रोहित—'शाहाबाद ज़िले में रोहतास पहाड़ के चारो ओर का प्रदेश'—२३०० ।

रोहितक—'पञ्जाब में, दिल्ली से ४२ मील उत्तर-पश्चिम एक गण-तन्त्र राज्य', कर्ण द्वारा विजित—१२२६ ।

रोहितक-वन—रोहितक के अन्तर्गत एक वन—१५२१ ।

रोही—'अफग़ानिस्तान की एक नदी;' नामान्तर रोहा—१८८६ ।

रोहीतक[१]—दे० "रोहितक"—५८० ।

रौद्रकर्मा—राजा धृतराष्ट्र का एक पुत्र—१४२, २५६, —का वध—२४५६ ।

रौद्राश्व—पूरु (१) के पुत्र; माता पौष्टि; भाई ईश्वर और प्रवीर; पत्नी मिश्रकेशी (अप्सरा); पुत्र अन्वग्भानु आदि दस—१८६ ।

रौम्यगण—वीरभद्र के रोम से उत्पन्न वीरगण—३७७४ ।

रौहिण—देवताओं का एक वटवृक्ष—७५,—का परिमाण—७५,—की शाखा का गरुड़ द्वारा तोड़ा जाना—७५ ।

ल

लक्षणा—एक अप्सरा—२७३ ।

लक्ष्मण (१)—अयोध्या-नरेश महाराज दशरथ के पुत्र; माता सुमित्रा; भाई शत्रुघ्न—५२६,—और इन्द्रजित् का युद्ध—१२९२-९३, १२९६-९८,—और कुम्भकर्ण का युद्ध—१२९५,—और प्रमाथी का युद्ध—१२९५-९६,—और वज्रवेग का युद्ध—१२९५-९६,—और सुग्रीव का संवाद—१२८३,—का, कबन्ध द्वारा,पकड़ा जाना—१२७६, —का जन्म—१२६५, —का पम्पा सरोवर में स्नान और पितृ-तर्पण—१२७७,—का राक्षसों से युद्ध—१२९२, —का वन-गमन—१२७०,—का विवाह—१२६६,—की मूर्च्छा—१२९७,—की शिक्षा—१२६६,—के प्रति सीता के कटु वचन—१२७३,—द्वारा इन्द्रजित् का वध—१२९८,—द्वारा कुम्भकर्ण का वध—१२९५ ।

लक्ष्मण (२)—दुर्योधन का पुत्र—१८२१,—और अभिमन्यु का युद्ध—१९९८, २०४०,—का वध—२२७२ ।

लक्ष्मी—समुद्र-मन्थन से निकली हुई एक देवी, ब्रह्मा की पुत्री, नारायण की पत्नी—६०, १३६, ५३५, ७७१, १२४६, १७२४, ३१३८,—और इन्द्र का संवाद—३६७७-८०,—और गो का संवाद—४१०४-०५, —का निवास (गायों के मल-मूत्र में)—४१०४,—का बलि को त्यागकर इन्द्र के पास आना—३६६६,—के निवास-स्थान—३९५७-५८ ।

लङ्का—राक्षसों की राजधानी, 'आधुनिक सीलोन'—७९८, १२९५,—में वानरी सेना के उत्पात—१२९१-९२ ।

लङ्गती—एक नदी—५३१ ।

लता—वर्गा अप्सरा की सखी, जिसका उद्धार अर्जुन द्वारा हुआ—४७४ ।

लपिता—एक शार्ङ्गिका, मन्दपाल ऋषि की भार्या—५०२ ।

लपेटिका तीर्थ—८८६ ।

लम्पाक—'काबुल नदी के उत्तरी तट पर पेशावर के निकट, जलालाबाद से २० मील उत्तर-पश्चिम में स्थित, लघन नामक प्रदेश'—२४४१ ।

लय—यम की सभा का एक राजा—५२९ ।

ललितक तीर्थ—८८० ।

ललित्थ(१)—उत्तर-पश्चिम की एक जाति—२२०९ ।

ललित्थ(२)—कौरव-पक्ष का एक योद्धा—२२५८ ।

लवणाश्व—एक ऋषि—७४३ ।

*लाक्षा-भवन—लाह, सन आदि भभकनेवाली वस्तुओं से बना हुआ मकान, जिसे दुर्योधन ने वारणावत में पाण्डवों के रहने को बनवाया था—३३१,—का निर्माण—३३१-३२,—का दाह—३३६, ७१६,—की सुरंग—३३८,—में पाण्डवों का निवास—३३५ ।

लाङ्गली—'मद्रास की लागुलीया नदी जिसके तट पर चिकाकोल बसा हुआ है; इसे नग्लन्दी नदी भी कहते हैं'—५३१।

---

(१) इसे नकुल ने भी, राजसूय-दिग्विजय में, जीता था ।

वडवा—एक नदी—११६४।

वडवातीर्थ—८६६।

वडवामुख (१)—एक अग्नि जो समुद्र का पानी पीता है—३६०५।

वडवामुख (२)—ऋषि-रूपधारी भगवान् विष्णु—३६०५।

वत्स (१)—'इलाहाबाद के पश्चिम एक प्रदेश'—१६२३।

वत्स (२)—शर्याति के वंश में उत्पन्न एक राजा, हैहय और तालजङ्घ का पिता—४०१६।

वत्सभूमि—दे० "वत्स (१)"—५७५, १२२५, १८५६।

वत्सासुर—एक राक्षस; श्रीकृष्ण द्वारा निहत—५६६।

वदान्य—एक ऋषि; सुप्रभा के पिता, अष्टावक्र के श्वशुर—३६६१।

*वध-दण्ड से बचना—३७३७-३६।

वधिर—एक नाग—१७०६।

वधूसरा—भृगु-पत्नी पुलोमा के आँसुओं से उत्पन्न एक नदी—४७।

वध्र—एक जनपद—१८६०।

वध्रयश्व—यम की सभा का एक राजा—५२६।

*वन की शोभा—१००२-०३।

*वनपर्व की अध्याय-श्लोक-संख्या—२४।

*वनवासी पाण्डवों के वध का कुचक्र—७०५।

वनवासिक—एक जनपद—१८६०।

*वनस्पति-विज्ञान—२५६८।

वनायु (१)—दक्षकन्या दनु का पुत्र—१३५।

वनायु (२)—पुरूरवा के, उर्वशी में उत्पन्न, पुत्र—१४६।

वनायु (३)—एक जनपद; 'आधुनिक अरब'—१८६०, २०७७।

वनेयु—पुरुवंशी एक राजा—१८६।

वन्दना—एक नदी—१८८६।

वन्दी—वरुण का पुत्र; विदेहराज का एक सभा-पंडित—६६३,—और अष्टावक्र का संवाद—६६७-६८,—की जल-समाधि—६६६, —की हार—६६८।

वपुष्टमा—पाण्डवों के प्रपौत्र जनमेजय की स्त्री; काशिराज सुवर्णवर्मा की पुत्री—६८।

वभ्रु—एक यादव, दे० "बभ्रु (४)"—४७८।

वभ्रुमाली—एक ऋषि—५१७।

वरदान तीर्थ—८६८।

वरदासङ्गम—'मध्य प्रदेश की वर्धा नाम की नदी का सङ्गम'—८८७।

वरयु—महौजस-वंशी एक कुलघातक राजा—१६५६।

वरा—'बनारस की वरुणा नाम की नदी'—१८८६।

वराङ्गी—दृषद्वान् की पुत्री; संयाति की स्त्री; अहयाति की माता—२०८।

वराणसी—'बनारस की वरुणा और असी[1] नाम की नदियाँ'—१८८६।

वराह (१)—युधिष्ठिर की सभा के एक ऋषि—५१७।

वराह (२)—गिरिव्रज (राजगृह) का एक पर्वत—५५७, ३६१३।

वराह (३)—विष्णु का तीसरा अवतार—३६४०, ३६१२,—द्वारा पृथ्वी का उद्धार—१२६२।

वराहक—जनमेजय के सर्पयज्ञ में जला एक साँप—११६।

वराहकर्ण—एक यक्ष—५३२।

वराह तीर्थ—'पुर्णिया ज़िले में नाथपुर के पास तमोर अरुणा और सुनकोसी नदियों के सङ्गम पर स्थित एक पवित्र स्थान'—८७१।

वरी—एक विश्वेदेवा—४१२४।

वरुण (१)—एक देवता; पश्चिम दिशा के अधिपति—४५, ११२, ६३७,—का अभिषेक—३१३२,—का अर्जुन के पास आकर उन्हें पाश नाम का अस्त्र देना—७८२,—का आदिम निवासस्थान—१७१५, —का इन्द्र द्वारा सम्मान—१५१७, —का वर्ण (मेघ-सदृश श्याम)—७८२,—की पत्नी गौरी—१७२४,—की पत्नी—वारुणी देवी—५३०,—की बड़ी पत्नी—शुक्र की बेटी और उनकी सन्तान 'बल' (पुत्र) और 'सुरा' (कन्या)—१३६,—की सभा का वर्णन—५३०-३१,—के पुत्र 'पुष्कर'—१७०१,—के पुत्र वन्दी—६६६,—के पुत्र वशिष्ठ—२१८,—द्वारा उतथ्य की पत्नी का अपहरण—४२४५,—द्वारा उतथ्य की पत्नी का लौटाया जाना—४२४६,—द्वारा सीता की चरित्र-शुद्धि का अनुमोदन—१३०२।

---

(१) आजकल यह नदी सूख गई है। एक नाला मात्र है जो बरसात में बहता रहता है।

प्रत्यूष और प्रभास। (२) किसी के मतानुसार मनु-पुत्र प्रजापति के धूम्रा नाम की स्त्री में उत्पन्न पुत्र—३६५०।

वसुगण - दे० "वसु(७)"—५३५ १७७७,—और गङ्गा का संवाद—२१३-१४,—की उत्पत्ति—१३७,—की नामावली –३६३८, ४२३८।

वसुचन्द्र—पाञ्चाल देश का एक क्षत्रिय; पाण्डव-पक्ष का योद्धा—२५५७।

वसुदान (१)—युधिष्ठिर की सभा में उपस्थित पाण्डव-पक्ष का एक अतिरथी योद्धा—५१८, ६२३, १८२८, १८७०, १६८६, २०८६,—का वध—२२१७।

वसुदान (२)—एक राजा ६२५।

वसुदेव—यदुवंशी राजा शूरसेन के पुत्र, पत्नी देवकी (कंस की बहन), भद्रा, रोहिणी और मदिरा, पुत्र बलदेव और श्रीकृष्ण, बहन कुन्ती—१३०, १४३, ४७८, ४२२६,—और अर्जुन का संवाद—४४५४-५५,—का अभिमन्यु के लिए शोक—४३५५-५६,—का, पुत्र-पौत्र आदि के मरने पर, शोक—४४५४-५५,—की और्ध्वदैहिक क्रिया –४४५६,—की मरणोत्तर-गति—४४७३,—की मृत्यु—४४५६,—को श्रीकृष्ण का संक्षेप में महाभारत के समाचार सुनाना –४३५३-५५ ४३५६-५७।

वसुधारा—'बदरीनाथ से ४ मील पर एक तीर्थ'—८६८।

वसुमना (१)—हर्यश्व का, माधवी से उत्पन्न, पुत्र; भाई विश्वामित्र का पुत्र अष्टक, काशीनरेश दिवोदास-पुत्र प्रतर्दन और औशीनर शिबि, नाना ययाति—१११०, १७२३, १७२८,—और वामदेव का संवाद—३४३६-३६,—का स्वर्ग-भ्रष्ट ययाति को अपना पुण्य देना—१७३०,—की विशेषता—१७३०।

वसुमना (२)—यमराज की सभा के एक राजा—५२६, १४५५।

वसुमान् (१)—युधिष्ठिर की सभा का एक राजा—५१८, १४६३।

वसुमान् (२)—एक अग्नि—५२८।

वसुमान् (३)—एक राजा, ओषदश्व के पुत्र—६०१,—और ययाति का संवाद—१८३।

वसुमान् (४)—जनकवंशी एक राजा—३८२७,—और एक महर्षि का संवाद—३८२७-२८।

वसुमित्र—एक राजा, विक्षर असुर का अंशावतार—१४७।

वसुषेण—राधा और अधिरथ द्वारा रक्खा हुआ कर्ण का नाम—१४४, २४८, १३३६, १७६८।

वसुहोम –अंग देश के एक धर्मात्मा राजा—३४८५,—और मान्धाता का संवाद—३४८५-८६।

*वस्त्र-दान का फल—४०८३।

वस्त्रप—एक जाति—६२३।

वस्त्रा –एक नदी—१८८६।

वस्वोकसारा—एक नदी—१०८५।

वर्हानर—यम की सभा का एक राजा—५२६।

***वाक्य**—के गुण-दोष—३८४४-४५।

***वाक्य-विवरण**—३८४३-४४।

***वाक्याङ्ग**—३८४४-४५।

वागिन्द्र—गृत्समद के वंशज प्रकाश का पुत्र, प्रमति का पिता—४०१८।

वाग्मी—पुरुवंशी मनस्यु का, सौवीरी रानी से उत्पन्न, पुत्र; भाई शक्त और सहनन—१८६।

वाटधान (१) एक राजा, क्रोधवश असुरों का अंशावतार—१४१, १४६३।

वाटधान (२)—'एक ब्राह्मण जाति जिसका निवास-स्थान पञ्जाब के भटनेर में था'—५८१।

वाटधान (३)—'दिल्ली के पश्चिम का एक प्रदेश; आधुनिक भटनेर' – १५२१, १८६०, २०००।

वाडवानल—जल-शोषक आसुर अग्नि –१७०२।

***वाणिज्य-नीति**—५२५-२६।

***वाणी**—के उच्चारण की प्रक्रिया—४३०२,—के गुण-दोष—१५६५,—के दो भेद—४३०२।

वातघ्न—विश्वामित्र का एक पुत्र—३६४७।

वातज—एक जनपद—१८६०।

वातवेग (१)—राजा धृतराष्ट्र का एक पुत्र—१४२, २५६,—का वध—२६५६।

वातवेग (२)—एक गरुड़—१७०४।

वातस्कन्ध—एक देवता—५२८।

वाताधिप—एक राजा—५७७।

वातापि (१)—एक असुर; दक्षकन्या दनु का पुत्र; इसके नरकासुर आदि नौ भाई और थे—१३५।

वातापि (२)—मणिमती पुरी के निवासी इल्वल दैत्य का छोटा भाई जिसे महर्षि अगस्त्य ने खाकर पचा डाला—७१२, ६०२।

(१) विधाता = पूर्व-कर्म ।

विशाला (२)—सरस्वती की एक शाखा, जो गया में है—३११५ ।

विशाला तीर्थ—४००७ ।

विशाला पुरी—'आधुनिक बेसाद, जो बिहार प्रान्त के मुज़फ्फरपुर ज़िले में है'—६०४ ।

विशालाक्ष (१)—राजा धृतराष्ट्र का एक पुत्र—१४२, —का वध—२०७४ ।

विशालाक्ष (२)—मत्स्य-नरेश विराट की सेना का एक योद्धा—१४१८,—का युद्ध—१४१८ ।

विशालाक्ष (३)—एक गरुड़—१७०४ ।

विशालाक्ष (४)—भगवान् शङ्कर का एक नाम—३३७७ ।

विशुण्डि—एक नाग—१७०६ ।

विशोक (१)—पाण्डवों का एक अनुचर—५८३, १०५३,—भीमसेन का सारथी—२०४७ ।

विशोक (२)—केकय-राजकुमार; पाण्डव-पक्ष का योद्धा —२९५२,—का, कर्ण द्वारा, वध—२९५२ ।

विश्रवा—एक ऋषि; कुबेर, रावण, कुम्भकर्ण आदि के पिता—८९४,—पुलस्त्य ऋषि के, योग-बल से दूसरा शरीर धारण कर लेने पर, आविर्भूत—१२६५ ।

विश्व—एक राजा; मयूरासुर का अंशावतार—१४० ।

विश्वकर्मा—आठवें वसु प्रभास के पुत्र; माता बृहस्पति की बहन; शिल्पाचार्य; सब प्रकार के गहनों के आविष्कर्ता और देव-विमान-निर्माता—१३८,—द्वारा त्रिभुवन-सुन्दरी तिलोत्तमा का सृजन—४६५ ।

*विश्व का उपाख्यान—२०२७,२०२८-२९ ।

विश्वकृत्—एक विश्वेदेवा—४१२४ ।

विश्वजित्—बृहस्पति के पुत्र—११६० ।

विश्वपति—मनु नामक अग्नि के पुत्र—११६२ ।

विश्वभुक् (१)—पाँच इन्द्रों में से एक—४३८ ।

विश्वभुक् (२)—बृहस्पति के पुत्र—११६० ।

विश्वरूप (१)—वरुण की सभा का एक दैत्य—५३११ ।

विश्वरूप (२)—दे० "त्रिशिरा"—१५०२, १५१७, ३६३८, ३९०० ।

*विश्वरूप का दर्शन[1]—१९३९-४२ ।

विश्वा—दक्ष की कन्या—१३५ ।

विश्वाची—एक प्रसिद्ध अप्सरा—२०१,—आदि का, अर्जुन-जन्म के समय, गान—२७३,—के साथ ययाति का वन-विहार—१४७ ।

विश्वामित्र—चंद्रवंशी गाधि के पुत्र, जो तपश्चर्या द्वारा क्षत्रिय से ब्राह्मण हो गये थे; गालव के गुरु—३९३, ३१२०,—आदि का साम्ब को (यदुवंश-नाशक) शाप—४४४८,—उत्तर दिशा के निवासी—३६३६,—और चाण्डाल का संवाद—३५२८-३२,—और वशिष्ठ की स्पर्धा—३१२५,—का आश्रम—६२७,—का उपवास—४१६३,—का गालव से आठ सौ श्यामकर्ण घोड़े माँगना—१७१२,—का तप—३१२१,—का तपोभङ्ग और मेनका से शकुन्तला की उत्पत्ति—१९४-९५, —का ब्राह्मणत्व—१७१२, ३९४६,—का, माधवी में, पुत्रोत्पादन—१७२७,—का वर्ण-विपर्यय—४०६१-६२, —की उत्पत्ति—३९४६, ४०६२,—की तपःसिद्धि—३९५,—की, धर्म द्वारा, परीक्षा—१७११-१२,—की शपथ (अगस्त्य के मृणाल न चुराने के सम्बन्ध में)—४१३६,—की शपथ (सप्तर्षियों के मृणाल न चुराने के सम्बन्ध में) —४१३३,—की हार—३९५,—के पुत्र—३९४७, —के पूर्व-पुरुष—३९४५-४६,—द्वारा माधवी का ग्रहण —१७२७,—द्वारा वशिष्ठ की कामधेनु (नन्दिनी) का हरण—३९४,—द्वारा संन्यासी और उसके कुत्ते की स्थूलता का कारण-निर्देश—४१२९,—शब्द की निरुक्ति —४१३१ ।

विश्वामित्र तीर्थ—८७६ ।

विश्वामित्रा—'गुजरात की एक नदी जिसके किनारे पर बड़ोदा स्थित है'—१८८९ ।

विश्वामित्राश्रम—'बक्सर का चैत्ररथ वन'—१८५६ ।

विश्वायु—एक विश्वेदेवा—४१२४ ।

विश्वावसु (१)—एक गन्धर्व; दक्षकन्या प्राधा का पुत्र —४९, १३६, २७२, ३८३, १८८३,—का राक्षस-योनि से उद्धार—१२७६,—का राम को परामर्श—१२७६-७७ ।

विश्वावसु (२)—एक ऋषि—८९५ ।

विश्वावसु (३)—महर्षि जमदग्नि के एक पुत्र—९३८ ।

---

(१) नारायण का विराट् रूप ।

(१) किसी-किसी के मतानुसार सतपुड़ा पर्वत, जिसमें वैडूर्य की खानें हैं ।

(१) नारायण की छाती में महादेवजी का त्रिशूल लगने का चिह्न।

श्रुतानीक—मत्स्यराज विराट के भाई—२५५७।

श्रुतान्त—राजा धृतराष्ट्र का एक पुत्र—३०७६,—का वध—३०७७।

श्रुतायु (१)—द्रौपदी-स्वयवर में उपस्थित एक राजा—४१५,—युधिष्ठिर की सभा में—५१८।

श्रुतायु (२)—कलिंग-देश का एक राजा, कौरव-पक्ष का योद्धा; अच्युतायु का भाई—१६८६,१६६५,—और इरावान् का युद्ध—१६६७,—और भीमसेन का युद्ध—१६६२-६५,—का वध—२३६३,—के पुत्र नियतायु का वध—२३६३,—के पुत्र शक्रदेव का वध—१६६३।

श्रुतायु (३)—अम्बष्ठाधिपति, कौरव-पक्ष का योद्धा, अर्जुन द्वारा निहत—२३६५।

श्रुतायुध—कलिङ्ग देश का राजा, कौरवपक्ष का योद्धा; लोकपाल वरुण का, पर्णाशा नदी से उत्पन्न, पुत्र—५१८, १६०१, २३६०,—का दुर्जेयत्व—२३६०,—का श्रीकृष्ण पर चलाई हुई अपनी ही गदा के प्रहार से मरण—२३६०,—की दिव्य गदा—२३६०।

श्रुतावती—भरद्वाज मुनि की कन्या—३१४२,—का तप—३१४२-४३।

श्रुताह्व—पाण्डव-पक्ष का एक क्षत्रिय; अश्वत्थामा द्वारा निहत—२५५१।

श्रुति—एक प्राचीन राजा—१६।

श्रेणिमान्—कुमार देश का राजा; पाण्डव-पक्ष का अतिरथी योद्धा; कालेय असुर का अंशावतार—१४१, ५७५, १८२८।

*श्रेष्ठता का मूल—१६८३।

श्वाविल्लोमापह तीर्थ—८७३।

श्वासा—प्रजापति की स्त्री; किसी किसी के मतानुसार अनिल नामक वसु की माता—१३७।

श्वेत (१)—कार्तिक मास में मांस-भक्षण के त्यागी, स्मरणीय, एक प्राचीन राजा—१६, ४१८१, ४२६२।

श्वेत (२)—एक ऋषि—५०, ४२३६।

श्वेत (३)—एक पर्वत; 'तिब्बत के पूर्व हिमालय का एक भाग'—५७२, ११७०, १८८३।

श्वेत (४)—मत्स्यनरेश विराट के दूसरे पुत्र—१६७२,—और भीष्म का युद्ध—१६७५-७६,—का वध—१६७६।

श्वेत (५)—एक द्वीप—३८७६।

श्वेतकि—एक धर्मपरायण, याज्ञिक राजा—४८८,—का नामान्तर श्वेतकेतु—४६१,—की शिवाराधना—४८६,—के यज्ञ में निरन्तर बारह वर्ष घी पीने से अग्नि का अजीर्ण रोग से ग्रस्त होना—४६०-६१।

श्वेतकेतु (१)—एक ऋषि; जनमेजय के सर्पयज्ञ के सदस्य; गौतम-वंशी उद्दालक के पुत्र, नामान्तर आरुणि-१०६, २६७,—उत्तर दिशा के निवासी—४२६५,—का आश्रम—६६२,—की बाँधी हुई सामाजिक मर्यादा—२६७-६८।

श्वेतकेतु (२)—दे० "श्वेतकि"—४६१।

श्वेतगिरि—दे० "श्वेत" (३)—६७८, १०१३।

श्वेतभद्र—एक यक्ष—५३२।

श्वेतवाहन—अर्जुन का एक नाम—१४३५,—शब्द की निरुक्ति—१४३५।

श्वेता—कश्यप की कन्या; माता क्रोधा, पुत्र श्वेत नाम का दिग्गज—१३६।

श्वैत्य—एक प्राचीन राजा—१६।

ष

षंढ—राजा धृतराष्ट्र का एक पुत्र—२६५६,—का वध—२६५६।

षष्ठिह्रद—एक तीर्थ—४००६।

षष्ठी देवी—दुर्गा—५३५।

*षट्कर्म—३३८३।

स

संकुल-युद्ध—२०००-०२, २०४३-४४, २१४१-४४, २२११-१४, २३६८-६६, २५६८-७२, २७३३-३८, २७५८-६०, २७६४-६७, २८६७-७४, २८८६-६०, २६४७-४८, २६४८-५२, ३०५६-५८, ३०६७-७०।

संकृति—शाल्व देश के राजा द्युमत्सेन की रानी; सत्यवान् की माता—१३०८।

संक्रम—विष्णु-दत्त कुमार कार्त्तिकेय का अनुचर—३१३३।

संग्रह—समुद्र-दत्त कुमार कार्त्तिकेय का अनुचर—३१३३।

संग्रामजित्—युधिष्ठिर की सभा का एक राजा—५१८।

संज्ञा—अश्व-रूप-धारिणी सूर्य-पत्नी; अश्विनीकुमारों की माता—१२४६, ४२३८।

सुदक्षिण—काम्बोज देश का राजा—४१५, ६२५, १५२०, १७६५, १८२०, १६०१, २१२८, २३६१,—और श्रुतकर्मा का युद्ध—१६६७,—का वध—२३६१,—(काम्बोज) के छोटे भाई का वध — २८७२ ।

सुदर्श—राजा धृतराष्ट्र का एक पुत्र—३०८०,—का वध—३०८० ।

सुदर्शन (१) — एक राजा जिसे श्रीकृष्ण ने गान्धार-देश-निवासियो तथा राजा नग्नजित् के पुत्रो को जीतकर मुक्त किया था—१६१२ ।

सुदर्शन (२)—जम्बू-वृक्ष विशेष; नीलगिरि के दक्षिण और निषध पर्वत के उत्तर—१८८२, १८८६ ।

सुदर्शन (३)—कौरव-पक्ष का एक राजा—२४३२,—का सात्यकि द्वारा वध—२४३३ ।

सुदर्शन (४)—राजा धृतराष्ट्र का एक पुत्र—२४५६,—का वध—२४५६ ।

सुदर्शन (५) — अवन्ति देश का राजा; पाण्डव-पक्ष का योद्धा—२६६२,—का वध—२६६२ ।

सुदर्शन (६)—अग्नि के, सुदर्शना से उत्पन्न, पुत्र—३६४१,—की कथा—३६४१-४३ ।

सुदर्शन-चक्र-खाण्डव-दाह के अवसर पर अग्निदेव द्वारा प्राप्त श्रीकृष्ण (विष्णु भगवान्) का चक्र —६२, १६२५,—का विस्तार—१६४७,—की विशेषता—१६४७,—की श्रेष्ठता—१६२५,—से निर्भय करनेवाला अग्नि—१७०१ ।

सुदर्शन द्वीप—जम्बूद्वीप का नामान्तर—१८८२ ।

सुदर्शना—इक्ष्वाकुवशी राजा दुर्योधन (२) की पुत्री; माता नर्मदा नदी; पति अग्निदेव; पुत्र सुदर्शन—३६४०,—और अग्नि का विवाह—३६४१ ।

सुदाम—दक्षिण का एक जनपद—१८६० ।

सुदामा(१)—उत्तर उलूक के मोदापुर का राजा; अर्जुन द्वारा राजसूय-दिग्विजय मे विजित—५७२ ।

सुदामा (२)—दशार्ण देश का राजा, दमयन्ती का नाना—८४० ।

सुदास—इक्ष्वाकुवशी राजा कल्माषपाद का पिता—४०० ।

सुदिन तीर्थ—८७५ ।

सुदुर्जय—इक्ष्वाकुवशी राजा सुवीर का पुत्र, दुर्योधन (२) का पिता—३६४० ।

सुदृष्ट—एक जनपद—१८६० ।

सुदेव (१)—एक ब्राह्मण, जिसे दमयन्ती का पता लगाने के लिए उसके पिता ने भेजा था—८३७ ।

सुदेव (२)—हर्यश्व का पुत्र, काशी का राजा-४०१६,—के युद्ध के प्रभाव से देवलोक की प्राप्ति—३४४३-४४ ।

सुदेवा (१)—अङ्ग देश की राजकुमारी; अरिह (२) की स्त्री, ऋक्ष की माता—२०८ ।

सुदेवा (२)—दशार्ह देश की राजकुमारी, विकुण्ठन की रानी, अजमीढ़ की माता—२०६ ।

सुदेष्ण—एक जनपद—१८६० ।

सुदेष्णा (१)—शिविराज राजा बलि की रानी, पुत्र (दीर्घतमा ऋषि द्वारा उत्पन्न) अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, पुण्ड्र और सुह्म—२३५ ।

सुदेष्णा (२) —मत्स्यनरेश विराट की दूसरी रानी; केकय-नरेश की कन्या, कीचक की बहन, पुत्र उत्तर; पुत्री उत्तरा—१३६३,—और सैरन्ध्री का संवाद—१४१०,—का द्रौपदी को दासी नियुक्त करना—१३७७,—का द्रौपदी को, बहाने से, कीचक के घर भेजना—१३८७ ।

सुद्युम्न (१)—यम की सभा का एक राजा—५२६ ।

सुद्युम्न (२)—मनु के पुत्र, जिन्होंने लिखित को चोरी का दण्ड देकर श्रेष्ठ लोक प्राप्त किया था—३३०७, ४२०८ ।

सुधन्वा (१)—अङ्गिरा ऋषि के पुत्र—६५७, १५६६, ४११५,—और विरोचन का विवाद—६५७, ६५८, ६५६, १५६६-६७ ।

सुधन्वा (२)—पाञ्चाल-राजकुमार; पाण्डव-पक्ष का योद्धा—२४४४,—द्रोण द्वारा निहत—२४४४ ।

सुधर्मा (१)—युधिष्ठिर की सभा मे उपस्थित एक यादव राजकुमार—५१८ ।

सुधर्मा (२)—युधिष्ठिर की सभा में उपस्थित एक राजा—५१८ ।

सुधर्मा (३)—दशार्ण देश का राजा; राजसूय-दिग्विजय मे इससे भीमसेन का युद्ध हुआ था-५७४,—और भीमसेन का बाहु-युद्ध—५७४,—का भीमसेन से हारना—५७४ ।

सुधर्मा (४)—त्रिगर्तराज सुशर्मा का छोटा भाई—१४१६,—का युद्ध—१४१६ ।

सुधर्मा (५)—पाञ्चाल देश का क्षत्रिय; पाण्डव-पक्ष का योद्धा—१७८६ ।

सुबाहु (९)—एक नाग—१७०६ ।

सुबेल—एक पर्वत जिस पर राम की सेना का पड़ाव था—१२६१ ।

सुभग—शकुनि का भाई; भीमसेन द्वारा निहत—२५५३ ।

सुभगा—एक अप्सरा; दक्ष-कन्या प्राधा की पुत्री—१३६ ।

सुभद्र—एक ऋषि, जिनके नाम पर उस स्थान का नाम सौभद्र तीर्थ पड़ा—४७३ ।

सुभद्रा (१)—वसुदेव की कन्या, श्रीकृष्ण की सौतेली बहन, अर्जुन की पत्नी; अभिमन्यु की माता—१३१, २१२, ४७८,—और अर्जुन का विवाह—४८३,— का विलाप—२३२८-३०, ४३६२,—का हरण—४७६,—के शरीर का वर्णन—४४२८ ।

सुभद्रा (२)—सुरभि की कन्या—१७०५ ।

*सुभद्राहरणपर्व—४७७ ।

सुभीम—यज्ञ में विघ्न करनेवाला एक देव-स्वरूप असुर, पाञ्चजन्य (२) का पुत्र—११६१ ।

सुभूमिक तीर्थ—सरस्वती-तटवर्ती एक तीर्थ—३११२ ।

सुभ्राज—सूर्य-दत्त कुमार कार्त्तिकेय का अनुचर—३१३३ ।

सुभ्राट्—एक देवता; मनु (१) (मह्य) के पुत्र, देवभ्राट् के भाई—३ ।

सुमणि—चन्द्रमा-दत्त कुमार कार्त्तिकेय का अनुचर—३१३३ ।

सुमण्डल—एक राजा; राजसूय-दिग्विजय मे अर्जुन द्वारा विजित—५७१ ।

सुमति—वरुण की सभा का एक दैत्य—५३१ ।

सुमध्यमा—राजर्षि मदिराश्व (२) की कन्या; हिरण्यहस्त की भार्या—४२०८ ।

सुमन—इन्द्र की सभा के एक देवता—५२८ ।

सुमना (१)—एक साँप—८४, १७०६ ।

सुमना (२)—युधिष्ठिर की सभा मे उपस्थित किरात-राज—५१८ ।

सुमना (३)—वरुण की सभा का एक दैत्य—५३१ ।

सुमना (४)—देवलोक की एक स्त्री—४१६०,— और शाण्डिली का संवाद—४१६०-६१ ।

सुमन्तु—एक ऋषि; महर्षि वेदव्यास के शिष्य—१३०, ३८६२ ।

सुमन्यु—एक महात्मा जिन्होने शाण्डिल्य को अन्न का ढेर देकर स्वर्ग प्राप्त किया था—४२०८ ।

सुमल्लिक—एक जनपद—१८६० ।

सुमित्र (१)—एक प्राचीन राजा—१६ ।

सुमित्र (२)—सौवीर देश का राजा; अर्जुन द्वारा विजित—३१७ ।

सुमित्र (३)—युधिष्ठिर की सभा मे उपस्थित एक ऋषि—५१७ ।

सुमित्र (४)—युधिष्ठिर की सभा मे उपस्थित एक राजा—५१८ ।

सुमित्र (५)—पुलिन्द देश का राजा, राजसूय-दिग्विजय मे भीमसेन द्वारा विजित—५७४ ।

सुमित्र (६)—मत्स्य देश का राजा, राजसूय-दिग्विजय में सहदेव द्वारा विजित—५७६ ।

सुमित्र (७)—पाञ्चजन्य द्वारा उत्पन्न देव-रूप एक असुर—११६१ ।

सुमित्र—(८)—हैहय-वंशी एक राजा—३४६२,—और ऋषभ का संवाद—३४६३-६६ ।

सुमित्रा—अयोध्या-नरेश इक्ष्वाकुवंशी महाराज दशरथ की एक रानी; लक्ष्मण और शत्रुघ्न की माता—१२६५ ।

सुमीढ़—भरतवंशी सुहोत्र का पुत्र; माता ऐक्ष्वाकी; भाई अजमीढ़ और पुरुमीढ़—२०५ ।

सुमुख (१)—एक नाग; चिकुर नाग का पुत्र; आर्यक नाग का पौत्र और वामन नाग का नाती, इन्द्र के सारथि मातलि का जामाता—८४, १७०६,—और गरुड़ का सान्निध्य—१७१०,—और गुणकेशी का विवाह—१७०८,—का वंश-परिचय—१७०६,—की, इन्द्र द्वारा, आयु-वृद्धि—१७०८ ।

सुमुख (२)—कश्यप का, विनता से उत्पन्न, पुत्र; एक गरुड़—१७०४ ।

सुमुख (३)—गरुड़ का पुत्र—१८८३ ।

सुमुखी—एक अप्सरा—३६६३ ।

सुमेरु—'बदरिकाश्रम के निकट गढ़वाल का 'रुद्र हिमालय' पर्वत, जहाँ गङ्गा का उद्गम है'—५८, २१८, ३६८, ४६४, ५३३, १०२७, १८४६, १८८३, ३१३२, ३८७६, ३८८५ ।

सुयजु—भरतवंशी भुमन्यु (१) का पुत्र; माता पुष्करिणी; भाई सुहोत्र, सुहोता, सुहवि, ऋचीक और दिविरथ—२०५ ।

सुयज्ञा—प्रसेनजित् (१) की पुत्री; महाभौम की रानी, अयुतनायी की माता—२०८।

सुरक्रतु—विश्वामित्र का एक पुत्र—३६४७।

सुरजा—दक्षकन्या प्राधा से उत्पन्न एक अप्सरा—१३६।

सुरता—दक्ष-कन्या प्राधा से उत्पन्न एक अप्सरा—१३६।

सुरथ (१)—एक राजा, 'क्रोधवश' नामक असुर-गण का अंशावतार—१४१।

सुरथ (२)—यम की सभा का एक राजा—५२६।

सुरथ (३)—कोटिकास्य का पिता—१२४६,—और नकुल का युद्ध—१२५६।

सुरथ (४)—पाञ्चाल देश का एक क्षत्रिय, पाण्डव-पक्ष का योद्धा—२५५१,—का वध—२५५१, ३०४५।

सुरथ (५)—जयद्रथ का पुत्र; दुर्योधन तथा अर्जुन का भानजा, दुःशला का पुत्र—४३७४,—की मृत्यु—४३७४।

सुरनिहन्ता—पाञ्चजन्य द्वारा उत्पन्न एक देव-स्वरूप असुर—११६१।

सुरप्रवीर—पाञ्चजन्य द्वारा उत्पन्न एक देव-स्वरूप असुर—११६१।

सुरभि (सुरभी)—दक्ष की कन्या; नन्दिनी नाम की कामधेनु की माता—१३६, २१८, ७०७, ११८०, १७०५, १७१६, ४०६७,—और इन्द्र का संवाद—७०७,—का दुग्ध—१७०५,—का वास-स्थान—१७०५,—की उत्पत्ति—१७०५, ४२१४,—की कन्याएँ—१७०५,—की तपस्या—४१०६,—की शपथ (अगस्त्य के मृणाल न चुराने के सम्बन्ध मे)—४१३७,—को ब्रह्मा से वर-लाभ—४१०६।

सुरभि-ग्रह—एक बालग्रह—११८०।

सुरभिमान्—एक अग्नि—११६२।

सुरभीपट्टन—'मैसूर मे कुवत्तूर नामक एक नगर'; राजसूय-यज्ञ में सहदेव द्वारा विजित—५८०।

सुरश्रेष्ठ—अदिति के बड़े पुत्र—१७०१।

सुरस—एक नाग—१७०६।

सुरसा (१)—कश्यप की, क्रोधा से उत्पन्न, पुत्री; कङ्क पक्षियो और नागो की माता—१३६, १७०६।

सुरसा (२)—एक अप्सरा—२७३।

सुरा—वरुण की कन्या—६०, १३६, ५३५।

*सुराज के सुख—३३६३-६४।

सुरारि—एक राजा—१४६३।

सुराव—एक घोड़ा जो उस सुवर्णमय रथ मे जुता था जो इल्वल दैत्य ने अगस्त्य ऋषि को दिया था—६०८।

सुरासमुद्र—सात समुद्रों मे से एक—१८६३।

सुराष्ट्र—'काठियावाड़ और गुजरात का कुछ भाग'—५७६, १३६०।

सुरुरु—कश्यप का, विनता से उत्पन्न, पुत्र; एक गरुड़—१७०४।

सुरूपा—सुरभि की कन्या—१७०५।

सुरेणु—सरस्वती की सात शाखाओं मे से एक—३११५।

सुरेश—एक विश्वेदेवा—४१२४।

सुरेश्वर—आठ वसुओ में से एक—३६३८।

सुरोमा—जनमेजय के सर्पयज्ञ में जला एक साँप—११६।

सुलभा—एक संन्यासिनी—३८४१,—और जनक का संवाद—३८४१-४६।

सुलोचन—राजा धृतराष्ट्र का एक पुत्र—१४२, २५६,—का वध—२०२२।

सुवपु—एक अप्सरा—२७३।

सुवर्चला—सूर्य की पत्नी—४२२७।

सुवर्चा (१)—राजा धृतराष्ट्र का एक पुत्र—१४२, २५६,—का वध—२६५६।

सुवर्चा (२)—द्रौपदी-स्वयंवर मे उपस्थित एक राजा; सुकेतु के पुत्र—४१५।

सुवर्चा (३)—पाञ्चजन्य द्वारा उत्पन्न एक देवरूप असुर—११६१।

सुवर्चा (४)—एक ब्राह्मण—१३२१।

सुवर्चा (५)—कश्यप का, विनता से उत्पन्न, पुत्र, एक गरुड़—१७०४।

सुवर्चा (६)—कौरव-पक्ष का एक क्षत्रिय—२२७५,—का अभिमन्यु द्वारा वध—२२७५।

सुवर्चा (७)—हिमवान्-दत्त कुमार कार्तिकेय का अनुचर—३१३३।

सुवर्चा (८)—इक्ष्वाकु-वंशी खनीनेत्र का पुत्र, अविक्षित् का पिता—४२७५।

सुवर्ण (१)—एक गन्धर्व—२७२।

सुवर्ण (२)—हयग्रीव-रूपधारी विष्णु का नाम—१७०२।

सुवर्ण (३)—एक ऋषि—४१४१,—का स्वायम्भुव मनु से धूप-दीप के दान के विषय मे प्रश्न—४१४१,—शब्द की निरुक्ति—४१४१।

सेनापति—राजा धृतराष्ट्र का एक पुत्र—१४२,—का वध—२०२२ ।
सेनाबिन्दु (१)—उत्तर का एक राजा—१४०, ५७२ ।
सेनाबिन्दु (२)—काशी का राजा; पाण्डवपक्ष का योद्धा; नामान्तर क्रोधहन्ता—४१५, १८२८।
*सेनोद्योगपर्व—१४८७ ।
सैन्धव—एक देश—७६८ ।
सैन्धव वन—'हरद्वार के निकट एक वन'—८६४ ।
सैन्धवायन—विश्वामित्र का एक पुत्र—३६४७ ।
सैन्धवारण्य—दे० "सैन्धव वन"—६५२ ।
सैरन्ध्री—द्रौपदी का, अज्ञातवास के समय का, नाम—१३६३,—और बृहन्नला का संवाद—१४०६-१०,-और सुदेष्णा का संवाद—१४१० ।
सैसिरिध्र—एक जनपद—१८६० ।
सोम (१)—धर्म के पुत्र एक वसु; पुत्र वर्चा; द्वितीय पत्नी मनोहरा (जिससे शिशिर, रमण और प्राण नामक पुत्र उत्पन्न हुए)—११२, १३७, १४२, १७८३, ४२३८ ।
सोम (२)—एक राजा, महर्षि अत्रि के पुत्र; बुध के पिता—४६२, १७०१, २५०२, ३६३८ ।
सोम (३)—एक अग्नि—५२८ ।
सोमक (१)—एक देश—२७२, १८७१ ।
सोमक (२)—यमराज की सभा का एक राजा—५२६, ६५३, ६५५, १८८८, ४०६६, ४१८१,—का आश्रम—६५८,—का पुत्रेष्टि यज्ञ—६५६-५७,—की गुरु-भक्ति—६५७-५८ ।
सोमकीर्ति—राजा धृतराष्ट्र का एक पुत्र—१४२, २५६ ।
सोमगिरि—'आधुनिक अमरकण्टक पर्वत'—४२६५ ।
सोम तीर्थ—कुरुक्षेत्र का एक तीर्थ-८७१, ८७५, ८७८, ३१२६, ३१४६ ।
सोमदत्त—एक कुरुवशी राजा, प्रतीप-पुत्र बाह्लीक के पुत्र; भूरि, भूरिश्रवा और शल के पिता—४१५, १७३३, १७४१, १८०६, २५०२,—और शिनि का युद्ध—२५०२,—का वध—२५७१ ।
सोमधेय—५७५ ।
सोमप (१)—पितरो का एक गण—५३५ ।
सोमप (२)—एक विश्वेदेवा—४१२४ ।
सोमपद—एक पवित्र स्थान—८८३ ।
सोमभोजन—एक गरुड़—१७०४ ।
*सोमरस[१]—४१४७,—के क्रय-विक्रय की निन्दा—४१४७, —चार प्रकार के—३२०३ ।
सोमवर्चा—एक विश्वेदेवा—४१२४ ।
सोमश्रवा—एक ऋषि; श्रुतश्रवा के पुत्र—३२ ।
सोमा—एक अप्सरा—२७३ ।
सोमाश्रम—एक पवित्र स्थान—८८५ ।
सोमाश्रयायण—एक तीर्थ—३८० ।
सौगन्धिक वन—कुबेर का, हिमालय पर्वत पर स्थित, एक वन—८७६, १७१७ ।
सौचित्ति—पाण्डव-पक्ष का एक राजा—१८७०, २०८६ ।
सौदास—इक्ष्वाकुवशोत्पन्न एक राजा-४०६८, ४३४८,-और उत्तङ्क का संवाद-४३४८-४६,-का राक्षसत्व-४३४८।
*सौप्तिकपर्व की अध्याय-श्लोक-संख्या—२८ ।
सौभ (१)—'आधुनिक अलवर'—७१६, २१८७ ।
सौभ (२)—त्रिवर्चा का पुत्र—११६१ ।
सौभद्र—एक तीर्थ—४७३ ।
सौभनगरी—सौभराज शाल्व द्वारा बनवाई गई, इच्छानुसार चालित विमान पर स्थित, एक नगरी—७२३ ।
सौभ-विमान—दे० "सौभनगरी"—७१६, ७२२,—का नाश—७३६ ।
*सौमदत्ति (सोमदत्त का पुत्र) और शख (५) का युद्ध—१६६५ ।
सौम्यगण—एक प्रकार के स्मरणीय देवता—४३३८ ।
सौरभेयी—वर्गा नाम की अप्सरा की सखी—४७४ ।
सौराष्ट्र—दे० "सुराष्ट्र"—८६३, ८६४ ।
सौवीर—एक देश; 'गुजरात प्रात का ईडर जिला'—६०४, १७५७, १६०५, २०४३, ३४४६ ।
सौवीरी—पूरुवशी प्रवीर के पुत्र मनस्यु की रानी, शक्त, संहनन और वाग्मी की माता—१८६ ।
सौशल्य—एक जनपद—१८८६ ।
सौश्रुति—त्रिगर्तराज सुशर्मा का भाई—२७७३,—का वध—२७७३ ।
*सौहार्द के छः गुण—१६०२ ।
सौहृद—एक जनपद—१८६० ।

---

(१) एक प्रकार की लता का रस ।

(१) भीष्म के गिर जाने पर गङ्गा द्वारा भेजे गये ऋषियों का कृत्रिम रूप।

---

[1] हिरण्य = सोना ।

अर्जुन के दस नाम

(१) अर्जुन, (२) फाल्गुन, (३) जिष्णु, (४) किरीटी, (५) श्वेतवाहन, (६) बीभत्सु, (७) विजय, (८) कृष्ण, (९) सव्यसाची और (१०) धनञ्जय।

धृतराष्ट्र के पुत्रों के नाम

(१) दुर्योधन, (२) युयुत्सु, (३) दुःशासन, (४) दुःसह, (५) दुःशल, (६) जलसन्ध, (७) सम, (८) सह, (९) विन्द, (१०) अनुविन्द, (११) दुर्धर्ष, (१२) सुबाहु, (१३) दुष्प्रधर्षण, (१४) दुमर्षण, (१५) दुर्मुख, (१६) दुष्कर्ण, (१७) कर्ण, (१८) विविंशति, (१९) विकर्ण, (२०) शल, (२१) सत्व, (२२) सुलोचन, (२३) चित्र, (२४) उपचित्र, (२५) चित्राक्ष, (२६) चारुचित्र, (२७) शरासन, (२८) दुर्मद, (२९) दुर्विगाह, (३०) विवित्सु, (३१) विकटानन, (३२) ऊर्णनाभ, (३३) सुनाभ, (३४) नन्द, (३५) उपनन्द, (३६) चित्रबाण, (३७) चित्रवर्मा, (३८) सुवर्मा, (३९) दुर्विमोचन, (४०) अयोबाहु, (४१) महाबाहु, (४२) चित्राङ्ग, (४३) चित्रकुण्डल, (४४) भीमवेग, (४५) भीमबल, (४६) बलाकी, (४७) बलवर्द्धन, (४८) उग्रायुध, (४९) सुषेण, (५०) कुण्डधार, (५१) महोदर, (५२) चित्रायुध, (५३) निषङ्गी, (५४) पाशी, (५५) वृन्दारक, (५६) दृढ़वर्मा, (५७) दृढ़क्षत्र, (५८) सोमकीर्त्ति, (५९) अनूदर, (६०) दृढ़सन्ध, (६१) जरासन्ध, (६२) सत्यसन्ध, (६३) सदःसुवाक्, (६४) उग्रश्रवा, (६५) उग्रसेन, (६६) सेनानी, (६७) दुष्पराजय, (६८) अपराजित, (६९) कुण्डशायी, (७०) विशालाक्ष, (७१) दुराधर, (७२) दृढ़हस्त, (७३) सुहस्त, (७४) वातवेग, (७५) सुवर्चा, (७६) आदित्यकेतु, (७७) बह्वाशी, (७८) नागदत्त, (७९) अग्रयायी, (८०) कवची, (८१) क्रथन, (८२) कुण्डी, (८३) धनुर्द्धर, (८४) उग्र, (८५) भीमरथ, (८६) वीरबाहु, (८७) अलोलुप, (८८) अभय, (८९) रौद्रकर्मा, (९०) दृढ़रथ, (९१) अनाधृष्य, (९२) कुण्डभेदी, (९३) विरावी, (९४) प्रमथ, (९५) प्रमाथी, (९६) दीर्घरोमा, (९७) दीर्घबाहु, (९८) व्यूढोर, (९९) कनकध्वज, (१००) कुण्डाशी, (१०१) विरजा।

[आदिपर्व के ६७वें और ११८वें अध्यायों में से प्रत्येक में धृतराष्ट्र के पुत्रों के नाम गिनाये गये हैं; किन्तु दोनों स्थानों के नामों में कुछ अन्तर मिलता है। भीमसेन ने जहाँ-जहाँ पर इन लोगों को मारा है वहाँ से भी इनके नामों का निश्चय करने मे पूरी सहायता नहीं मिलती। दूसरी बात यह है कि ६७वें अध्याय में पूरे १०० नाम हैं भी नहीं। इसके सिवा उसमें कुछ ऐसे नाम भी हैं जो दुबारा आये हैं।

चित्रसेन, जयत्सेन, जैत्र, भीम, रवि, व्यूढोरस्क, वैराट, शत्रुञ्जय, शत्रुसह, श्रुतर्वा, श्रुतान्त, षंढ, सुचारु, सुजात और सुदर्श—ये नाम न तो ६७वें अध्याय मे हैं और न ११८वें में ही। किन्तु इनमे से 'सुचारु' के अतिरिक्त और सबका युद्धभूमि मे वध हुआ है; इससे ये दुर्योधन के भाई प्रतीत होते हैं।

नम्बर ३६, ४२ और ४३ वाले धृतराष्ट्र-पुत्रों का वध न होने से इन तीनों का अन्तर्भाव चित्रसेन में करना ठीक जँचता है। जयत्सेन जरासन्ध (नं० ६१) मालूम होता है। भीम या तो भीमवेग (नं० ४४) होगा या भीमबल (नं० ४५)। रवि विरावी (नं० ९३) जान पड़ता है। व्यूढोरस्क व्यूढोर (नं० ९८) या व्यूढोरु (अध्याय ६७) होगा। वैराट विकटानन (नं० ३१) हो सकता है। शल (नं० २०) शत्रुञ्जय जान पड़ता है। दुर्विमोचन (नं० ३९) और दुर्विरोचन (अध्याय ६७) एक ही जान पड़ते हैं। सेनापति (अध्याय ६७) का वध हुआ है इसलिए यही सेनानी (नं० ६६) होगा।]

परिशिष्ट

(१) पशु-पक्षी

उपचक्र—चक्रवाक पक्षी—१०१६, १०५४।
ऋषभ—जन्तु-विशेष—१०४६।
एकचरण—जीव-विशेष—२३६८।
ऐणेय—एक जाति का मृग—१२४८।
कारण्डव—एक प्रकार का हंस—५१६, ७७४, ६६१।
क्रौञ्च—करॉकुल पक्षी—७७४, ६६१, ३२०२।
गवय—एक प्रकार का मृग—१२४८।
चमरी (मृग)—सुरागाय—१०४६।
चाष—एक पक्षी, "चाहा"—३२०२।
जीवजीवक—चकोर—६२४, ३८६१।
तित्तिरि—एक प्रकार का घोड़ा—५७३।
न्यंकु—एक प्रकार का, अनेक सींगोंवाला, मृग—१२४८।
पृषत—एक प्रकार का मृग—१२४८।
प्रियक—एक पक्षी—१०१५।
प्लव—एक जल-पक्षी—६६१।
भारुण्ड—पैनी चोचवाला एक प्रकार का पक्षी—१८८६, ३५७३।
भूरुण्ड—एक पक्षी—१७४६।
भूलिङ्ग—एक मांसाहारी पक्षी, जो मुँह से 'साहस मत करो' कहा करता है पर सिंह की दाढ़ों में लगा मांस निकालकर खा जाता है—५६७, ३५७३।
भृङ्गराज—एक प्रसिद्ध पक्षी; भीमराज—१०१६, १०५४।
मिञ्जिका-मिञ्जिक (?)—महादेव के वीर्य से उत्पन्न—११८२।
रंकु—एक जाति का मृग—११६५।
रुरु—मृग-विशेष—६६१, १२४८, २६५५।
लोहपृष्ठ—कङ्क नाम का पक्षी—१०१६।
शतपत्र—एक पक्षी—६२४, १६७०, ३८५७।
शम्बर—एक प्रकार का मृग—१२४८।
शरभ—पशु-विशेष—१०१४, १०४६, १२४८, २४५८।
शल्लकी—कण्टक-युक्त जन्तु; साही—२५८६, ३१३०।
शश—एक प्रकार का मृग—१२४८।
शार्दूल—एक प्रकार का सिंह—१०५४।
सृमर—एक प्रकार का पशु—२३०६।
स्याही—दे० "शल्लकी"—२४६६।
हरिण—१२४८।

---

(२) वृक्ष, लता आदि

अतिमुक्तक—तेंदू अथवा ताड़ का पेड़—३११५।
अरिष्ट—नीम का या रीठे का पेड़—८२३।
आम्रातक—आमड़े का वृक्ष—१०१४।
इङ्गुद—हिंगोट का वृक्ष—८२३।
इङ्गुदी—दे० "इङ्गुद"—३११५।
एरका—एक प्रकार की घास जो शाप-वश मूसल के रूप में परिणत हो गई थी—४४५२।
कमल के वृक्ष—१००३।
करमर्द—करौंदे का वृक्ष—१०१५।
करवीर—कनेर का पेड़—११८२।
कीचक—पोला बाँस—४३२८।
कुंकुम—एक वृक्ष—१०१५।
कुटज—एक वृक्ष; कुरैया—१०१५।
जपा—एक प्रसिद्ध पुष्प-वृक्ष—११८२।
तिन्दुक—तेंदू का पेड़—१०१४।
पद्मक—पद्मकाष्ठ का पेड़—८२३।
पाटल—वेल के पत्तों के समान पत्तोंवाला एक पेड़; पाड़र या पाढ़र—१०१५।

पारावत—एक वृक्ष; तेंदू—१०१४-१५।
पारिजात—कल्पवृक्ष, जो समुद्र को मथकर निकाला गया है—११८२।
पीलु—एक वृक्ष, पील या पीलू—१०५३।
पीलुक—दे० "पीलु"—३११५।
पुन्नाग—सुल्ताना चम्पा—८२४, १०१५, १२०२।
प्रियाल—चिरौंजी का वृक्ष—८२३।
प्लक्ष—एक वृक्ष; पाकर—८२५, ८६६।
बकुल—मौलसिरी—१०१५।
मेषशृङ्ग—एक विष-वृक्ष—४३२८।
लकुच—वृक्ष-विशेष—१०१४।
शिशप—शीशम—५३०।
श्लेष्मातकी—लिसोड़े का पेड़—६६८।
षण्ड—एक प्रकार का वृक्ष—३११५।
सप्तच्छद—सप्तपर्ण वृक्ष, छतिवन—१२०२।
सप्तपर्ण—दे० "सप्तच्छद"—१०१५।
सोमलता—एक लता जिसके रस-पान का महत्त्व वेदों में वर्णित है—७६७।
स्यन्दन—तेंदू—८२३।

---

(३) वर्णसङ्कर जाति

अध्यूढ़—जब कोई पुरुष किसी गर्भवती स्त्री का पाणिग्रहण करता है तब उक्त गर्भ से उत्पन्न पुत्र पर स्त्री के पुराने पति का अधिकार नहीं रहता; वह नये पति का अध्यूढ पुत्र माना जाता है—४०४८।
अन्तेवसायी—निषादी के गर्भ और सैपाक के वीर्य से उत्पन्न सन्तान—४०४६।
अन्ध्र—निषादी और वैदेह के संयोग से उत्पन्न सन्तान—४०४६।
अपध्वसज—ब्राह्मण के क्षत्रिया, वैश्या और शूद्रा से उत्पन्न; क्षत्रिय के वैश्या और शूद्रा से उत्पन्न तथा वैश्य का शूद्रा से उत्पन्न—ये छः प्रकार के पुत्र अपध्वंसज कहे जाते हैं—४०४८।
अम्बष्ठ—वैश्या के गर्भ और ब्राह्मण के वीर्य से उत्पन्न सन्तान—४०४४।
आयोगव—मगध देश की सैरन्ध्री के गर्भ और बाह्य (निकृष्ट जातियो) के वीर्य से उत्पन्न सन्तान—४०४५।
आयोगव (तक्षा)—वैश्या के गर्भ और शूद्र के वीर्य से उत्पन्न पुत्र; बढ़ई—४०४५।
आहिण्डक—निषाद का—'वैदेह' जाति की स्त्री के गर्भ से उत्पन्न—पुत्र—४०४६।
उग्र—शूद्रा के गर्भ और क्षत्रिय के वीर्य से उत्पन्न सन्तान—४०४५।
करण—शूद्रा के गर्भ और वैश्य के वीर्य से उत्पन्न सन्तान—४०४५।
कारावर—निषादी और चर्मकार के संयोग से उत्पन्न सन्तान—४०४६।
क्षुद्र—निषादी और वैदेह के संयोग से उत्पन्न सन्तान—४०४६।
चाण्डाल (१)—ब्राह्मणी के गर्भ और शूद्र के वीर्य से उत्पन्न पुत्र—४०४५।
चाण्डाल (२)—सैरन्ध्री के गर्भ और चाण्डाल के वीर्य से उत्पन्न सन्तान, जिसका कार्य मरघट की रक्षा करना है—४०४६।
नौकाजीवी—निषाद के वीर्य और सैरन्ध्री के गर्भ से उत्पन्न सन्तान (मल्लाह)—४०४५।
पाण्डुसौपाक—निषादी और चाण्डाल के संयोग से उत्पन्न सन्तान—४०४६।
पारशव (निषाद)—शूद्रा के गर्भ और ब्राह्मण के वीर्य से उत्पन्न सन्तान—४०४४।
पुल्कस—आयोगवी के गर्भ और चाण्डाल के वीर्य से उत्पन्न सन्तान—४०४६।
ब्राह्मण—ब्राह्मणी और क्षत्रिया के गर्भ से उत्पन्न ब्राह्मण की सन्तान—४०४४।
मद्गनाभ—आयोगवी के गर्भ और निषाद के वीर्य से उत्पन्न सन्तान—४०४६।
भार्गवी—एक वर्ण-संकर जाति (की स्त्री)—४०४६।
मायाजीवी—आयोगवी के गर्भ और वैदेह के वीर्य से उत्पन्न सन्तान—४०४६।

माहिष्य—वैश्या के गर्भ और क्षत्रिय के वीर्य से उत्पन्न सन्तान—४०४५।

मैरेयक—सैरन्ध्री के गर्भ और वैदेह के वीर्य से उत्पन्न सन्तान—४०४५।

मौद्‍गल्य—ब्राह्मणी के गर्भ और वैश्य के वीर्य से उत्पन्न पुत्र—४०४५।

विजातीय—दूसरी जाति की स्त्री से पैदा होनेवाली सन्तानें—४०४५।

वैदेहक—ब्राह्मणी के गर्भ और वैश्य के वीर्य से उत्पन्न पुत्र—४०४५।

सजातीय- अपनी जाति की स्त्री से उत्पन्न हुई सन्तान—३४१५, ४०४५।

सूत—ब्राह्मणी के गर्भ और क्षत्रिय के वीर्य से उत्पन्न सन्तान—४०४५।

सौपाक—वैदेही के गर्भ और चाण्डाल के वीर्य से उत्पन्न सन्तान—४०४६।

---

(४) बाजे और आभूषण

बाजे

क्रकच—एक प्रकार का वाद्य—२१०१, ३००१, २२६२।

गोमुख—एक वाद्य—१६१५।

गोविषाण—वाद्य-विशेष—२१०१, ३००१।

गोशृङ्ग—वाद्य-विशेष—१६५५।

जयमङ्गल—एक प्रकार का वाद्य—१६५५।

झर्झर—एक प्रकार का वाद्य—२२६२।

तूर्य—एक प्रकार का वाद्य; तुरही; सिंघा—२१२४।

पटह—युद्ध का नगाड़ा—२५३८।

पणव—एक वाद्य-यन्त्र, ढोल—१६१५।

पेशी—वाद्य-विशेष; ढोल—१६५५।

भेरी—नगाड़ा—१६१५, १६५५।

मर्दल—एक प्रकार का मृदङ्ग—२८२६।

महानक—एक प्रकार का बाजा—२२६२।

मुरज—मृदङ्ग; पखावज—१७६६।

वल्लरी—एक प्रकार का वाद्य—२५३८।

वारुण शंख—एक शख, जिसे सत्ययुग में प्रजापति ब्रह्मा ने इन्द्र को दिया था—६२५।

आभूषण

अङ्गुलिवेष्टन—आभूषण-विशेष (अँगूठी)—२४८४।

चूड़ामणि—मस्तक का एक आभूषण—२०६६।

निष्क—एक प्रकार का आभूषण—२०७७, २११०।

---

(५) यज्ञ

अग्निष्टुत् यज्ञ—अग्निष्टोम यज्ञ का सङ्क्षिप्त रूप—३१४७, ३६५८।

अग्निष्टोम—ज्योतिष्टोम यज्ञ का दूसरा रूप; यह यज्ञ पाँच दिन में समाप्त होता है और अग्निहोत्री ब्राह्मण ही इसे कर सकता है—२३०६, ३१४७।

अग्निहोत्र यज्ञ—(१) नित्य और (२) काम्य भेद से यह दो प्रकार का होता है; अग्नि-स्थापन करके आजीवन प्रातःकाल और सायङ्काल नियमपूर्वक हवन करना 'नित्य' और किसी कामना के लिए निर्दिष्ट समय तक हवन करना 'काम्य' है—३१४७।

अतिरात्र—एक दिन में समाप्त होनेवाला यज्ञ-विशेष—२३०६।

अश्वमेध-यज्ञ—एक यज्ञ; इसमें एक घोड़ा छोड़ा जाता था जिसकी रक्षा के लिए सेना साथ रहती थी। जो लोग यज्ञकर्त्ता का आधिपत्य नहीं मानते थे वे घोड़े को बाँध लेते थे। उनको युद्ध में पराजित कर तथा घोड़े

को छुड़ाकर सेना आगे बढ़ती थी। इस प्रकार समग्र पृथ्वी में घूमकर वह घोड़ा लौटता था। घोड़े के लौट आने पर यज्ञ होता था, जिसमें समस्त अधीन राजा लोग भेंट लेकर उपस्थित होते थे—३१४७।

अष्टाकपाल इष्टि—वह यज्ञ जिसमें आठ खप्परों में पकाये गये 'पुरोडाश' का हवन किया जाय—११६३।

आग्रयण—एक प्रकार का यज्ञ जो नई फसल आने पर किया जाता है—२३०३।

इष्टाकृत—सहस्र वर्ष में समाप्त होनेवाला यज्ञ-विशेष—६५८।

इष्टापूर्त—सर्वसाधारण के उपकारार्थ यज्ञ करना या कुआँ-बावली खुदवाना, बाग़ लगाना आदि—२५२६, ३७२८।

इष्टिकर्म—यज्ञ-विशेष—७४०।

गोमेध यज्ञ—एक प्रकार का यज्ञ, जिसका विधान कलि-युग में वर्जित है—४०८०।

चातुर्मास्य—चार महीने में समाप्त होनेवाला एक यज्ञ—२३०३, ३१४७।

द्वादशाह (यज्ञ)—वह यज्ञ जो बारह दिनों में सम्पन्न हो—३१४७।

दर्श-पौर्णमास—अमावास्या और पूर्णिमा को किये जानेवाले यज्ञ—२३०३, ३१४७।

नरमेध—एक यज्ञ जिसमें नर-मांस की आहुति दी जाती है—३१४७, ३७३८।

राजसूय यज्ञ—एक प्रकार का यज्ञ जिसे चक्रवर्ती राजा ही कर सकते हैं—३१४७।

पुण्डरीक—एक प्रकार का यज्ञ—३१४७।

वाजपेय यज्ञ—वेदोक्त सात यज्ञों में पाँचवाँ—२३०६, ३१४७।

विश्वजित्—एक प्रकार का यज्ञ जिसकी दक्षिणा में सर्वस्व दान कर देने का विधान है—२३०६।

सर्वमेध यज्ञ—एक प्रकार का सोम-याग जो दस दिनों तक होता था—३१८७।

साद्यस्क यज्ञ—एक प्रकार का यज्ञ—६६७।

सारस्वत—यज्ञ-विशेष—६५६।

सोम—सोमयाग—११६५।

सौत्रामणि यज्ञ—एक प्रकार का यज्ञ—३१४७।

---

(६) रथ के अङ्ग

अक्ष—रथ का धुरा—२२६५, २७०५।

अक्षकीलक—धुरे की कील—२७०५।

अक्षप्रमण्डल—रथ का अङ्ग विशेष—२७४३।

अनुकर्ष—रथ आदि का धुरे पर रहनेवाला ढाँचा—२०६६, २२५६।

अभीषु—लगाम—२२५५।

अवनाह—त्रिवेणु और युग के बाँधने की रस्सी—२७०५।

आस्तरण—बिछौना—१६६५।

ईषा—गाड़ी या रथ आदि में वह लम्बी लकड़ी जिसके सिरे पर जुआ बाँधकर बैल को जोड़ते हैं—१२०५।

ईषादण्ड—दे० "ईषा"—२२६६।

ईषामुख—ईषा का अग्रभाग—२४८१।

कूबर—रथ का वह भाग जहाँ पर जूआ बाँधा जाता है—२७४३।

चक्र—रथ का पहिया—२२५६।

त्रिवेणु—रथ के अग्रभाग का एक अङ्ग—१२०५, २२५६, २७४३।

पताका—झण्डा—१७६४, १६८४।

युग—जुआ—१२०५, २२५६, २५२३, २७०५, २७६५।

युगकीलक—जुए की कील—२७६६।

योक्त्रा—युग (जुए) से संलग्न वह रस्सी जिससे खींचने-वाला पशु जुड़ा रहता है—२७६५।

योक्त्र—दे० "योक्त्रा"—२७६६।

रथ-शक्ति—रथ की पताका का दण्ड—३०४६।

---

(७) व्यूह

---

(८) अस्त्र-शस्त्र आदि

कणप—बाण-विशेष; 'लोहे का एक हलका बर्छा जो धनुष अथवा हाथ से फेंका जाता था'—२००१, २४०१।

कपिश—एक प्रकार का निषिद्ध बाण, जो गाय अथवा हाथी की हड्डी से बनाया जाता था—२६५०।

कम्पन—अस्त्र-विशेष—२००१, २२४१।

करवाल—तलवार—१०३६, १५२०।

कर्णाकार—बाण-विशेष—१५६५।

कर्णिक—बाण-विशेष—१३४३।

कर्णी—बाण-विशेष—७६४, १४५३, १७६६।

कशा—चाबुक—२३५२।

कुठार—परशु—१४१८।

कुणप—'फेंककर चलाया जानेवाला लोहे का एक हलका बर्छा'—२५२३।

कुन्त[1]—'फेंककर चलाया जानेवाला लोहे का एक हलका बर्छा'—२५२३।

कौबेर—एक दिव्य अस्त्र—१४६६, १८२६।

क्षुद्रक—बाण-विशेष—२०५१।

क्षुर—बाण-विशेष—१२६५, २०१८।

क्षुरप्र—बाण-विशेष जिसकी धार तेज़ छुरे के समान हो—३१६, १२०४, २०१८।

क्षेपणी—शस्त्र-विशेष जो फेंककर मारा जाता था—२०४५।

गदा—'यह लोहे की चार हाथ लम्बी होती थी, इसका सिरा भारी होता था जिस पर कहीं कहीं सौ शूलों का होना कहा गया है'—६२, ४२७, १७६६, १८१६।

गान्धर्व अस्त्र—१०४१।

गुह्यकास्त्र—एक दिव्य अस्त्र—१८४७।

गोशीर्ष—'लगभग दो फ़ुट लम्बा, तिकोना, बीच में चौड़ा एक प्रकार का बरछा जिसके नीचे लकड़ी का सुन्दर बेंट होता है'—२६१६।

चक्राश्म—लकड़ी का बना हुआ यन्त्र जिससे बड़े-बड़े पत्थर के टुकड़े बहुत दूर तक चलाये जाते थे—४६७।

चटकामुख—बाण-विशेष—२८४७।

चर्म—२७६५।

जिह्मग—किसी एक को लक्ष्य बनाकर दूसरे पर चलाया जानेवाला, एक प्रकार का, निषिद्ध बाण—६५०।

तलत्र—चमड़े का दस्ताना—४७४२।

तलत्राण—दे० "तलत्र"—२११५।

तलवार—दे० "असि"—६२, १७६४।

तूणीर—तरकश—२२५६, ३०४४।

तोमर—'एक प्राचीन अस्त्र जो सीधा और तीन हाथ लम्बा होता था; इसमें काठ का बेंट और गुच्छे के ऐसा लोहे का सिर होता था'—६२, ७२३, १००५, १७६६, १७६०, १७६४, १८६०, १६०१, ३४४७।

त्रिशूल—तीन फलोंवाला एक प्रकार का भाला—७७, १०२१।

त्वाष्ट्र—एक अस्त्र—२२०६, २४०१, २५५४।

धनुष—'बाण चलाने का यन्त्र (कमान) जो प्रायः मनुष्य के बराबर लम्बा होता था, इसके एक सिरे पर नस की अथवा मूर्वा घास की बनी डोरी (ज्या) बँधी होती थी, बाण चलाने के लिए धनुष को झुकाकर दूसरे सिरे पर ज्या चढ़ाई जाती थी, बाण ज्या पर रखकर उसके साथ ज़ोर से खींचकर छोड़ा जाता था; धनुष धन्वन् की लकड़ी का बना होता था; सींग (शृङ्ग) के बने धनुष को शार्ङ्ग (विष्णु का धनुष सींग का ही था), ताल के बने को कार्मुक और बाँस के बने को चाप कहते थे; पीछे से धनुष सबका बोधक माना जाने लगा, युद्ध-विद्या में प्राचीन काल में धनुष का इतना महत्त्व था कि सारी युद्ध-विद्या धनुर्वेद के नाम से प्रसिद्ध हो गई'—१०३६।

नखर—एक प्रकार का अस्त्र—२२४१, २७५६, ३४४६।

नाराच—'पाँच पुङ्खोंवाला बाण जो सब का सब लोहे का होता था'—३१६, ६६४, १०४५, १२५६, १७६६, १७६०।

नालीक—'एक प्रकार का छोटा बाण, जो नली में रखकर चलाया जाता था; नीति-प्रकाशिका के अनुसार यह एक प्रकार की बंदूक है जिससे द्रोणिचाप फेंके जाते थे; इसके चलाने में धमापन की आवश्यकता होती थी'—१७६६।

---

(१) कुंत, ऋष्टि, पट्टिश, कणप और कुणप में वास्तविक भेद क्या था, नहीं कहा जा सकता।

निर्व्यूह—शस्त्र-विशेष—२३५२।
निषङ्ग—पैदल योद्धाओं की कमर में रहनेवाला छोटा तरकस—१७६४।
निस्त्रिंश—'छोटी तलवार'—१०२१, १६६६, २००१।
नैऋतास्त्र—एक दिव्य अस्त्र—१०३६।
पट्टिश—'एक प्रकार का बड़ा बरछा जिसका उल्लेख बड़े बड़े योधाओं के ही साथ हुआ है; पिछले नीति-ग्रन्थों में यह किरिच की तरह तीक्ष्ण, पतला और दुधारा आयुध बतलाया गया है'—६२, ७३२, १००५, १७६४, १७६५।
परशु—'एक प्रकार की कुल्हाड़ी जिसका फल आगे की ओर चौड़ा अर्द्धचन्द्राकार, धार चमकती हुई, बेट लाठी की तरह पतला, बाँह के बराबर लम्बा और पीछे के भारी सिरे की ओर लगा होता है [नी० शि० २, १६; ५, ६-१०; अ० पु० १५१, १३]'—७३२, १०२१, १०३६, ३४४७।
परश्वध—'परशु के आकार का, उससे थोड़ा सा भिन्न, एक आयुध'—४२७, ६२२, १३००, १५१६, १७६०, १६६६।
परिघ—'एक प्रकार की गदा'—१७६६, १६०१, १६६६, २००२।
पर्जन्यास्त्र—'सम्भवतः वर्षा कर देनेवाला अस्त्र'—३०६।
पर्वतास्त्र—एक प्रकार का अस्त्र जिसका प्रयोग करने से युद्धभूमि में पहाड़ प्रकट होते थे, यह वायव्यास्त्र का प्रभाव (आँधी) दूर करने के लिए प्रयुक्त होता था—१०४१, २१०८ (३००८)।
पावतास्त्र—दे० "पर्वतास्त्र"—३०६।
पाश—'यह लोहे का, पतला, सीसे की गोलियों से सजाया हुआ और त्रिकोण होता था, इसका फन्दा नीति-प्रकाशिका के अनुसार एक बित्ता और अग्निपुराण के अनुसार एक हाथ परिधि का होता था, पिछले ग्रन्थ के अनुसार इसकी लम्बाई दस हाथ होती थी, इसके प्रयोग करने में फैलाना, लपेटना और काटना ये तीन क्रियाएँ होती थी, यह आयुध क्षुद्र समझा जाता था'—७३२, ७८२, १७६४।
पाशुपत अस्त्र—'एक प्रकार का मन्त्र-युक्त अस्त्र जो शिवजी का माना जाता है'—२७२, ७७८, १४६६, १८२६, २१६१।
पूति—'कुन्द धारवाला बाण जिसका प्रयोग निषिद्ध माना गया है'—२६५०।
पृषत्क—एक प्रकार का बाण—२७७४।
प्रज्ञास्त्र—मायानाशक एक अस्त्र—७३२, १२६७।
प्रस्वाप (अस्त्र)—वह अस्त्र जिसके प्रयोग से शत्रुपक्ष के सैनिक सो जायँ—१८५१।
प्रस्वापन (अस्त्र)—दे० "प्रस्वाप (अस्त्र)"—७८३।
प्राजापत्य—प्रजापति का दिव्य अस्त्र—१४६६।
प्रास—'एक प्रकार का बरछा, जो सात हाथ लम्बी बाँस की छड़ के ऊपर लगा रहता था'—६२, १६६२, १७६४, १८६६, २०८०, ३४४६।
फरसा—दे० "परशु"—७७।
बस्तिक—एक प्रकार का निषिद्ध बाण, जिसका अग्रभाग शिथिल रूप से दण्ड में लगा रहता है, निकालते समय लोहे को गाँसी बस्ति मे रह जाती है, केवल दण्ड बाहर रह जाता है—२६५०।
बेलन—६२।
ब्रह्मशिर—एक दिव्य अस्त्र—३२२२।
ब्रह्मशिरा—महादेवजी का पाशुपत अस्त्र—७७६।
ब्रह्मास्त्र—एक दिव्य अस्त्र—१०३३, १६३६, १८५२।
ब्राह्म—एक दिव्य अस्त्र—७७०, २१६१।
भल्ल—एक प्रकार का बाण—१६, १०२१, १२०४, १८४६।
भार्गवास्त्र—सम्भवतः परशु—२६७७।
भिन्दिपाल—छोटा डण्डा जो फेंककर मारा जाता था। 'एक हाथ लम्बे, एक हाथ मोटे झुके सिर का टेढ़ा-मेढ़ा डण्डा; वेग देने के लिए यह तीन बार घुमाकर शत्रु की टाँगों पर मारा जाता था, फेंकते समय बायाँ पैर आगे रखना पड़ता था'—१५१६, १७६४।
भौमास्त्र—३०६।
महाशूल—बड़ा शूल—१०३६।
माहेन्द्र—'सम्भवतः वज्र'—१८२६।
मुद्गर—'हथौड़े के समान एक आयुध जो हाथ अथवा यन्त्र के द्वारा फेंका जाता था'—१०४४, १२६०, १७६४।
मुशल—मूसल, 'बँधे हुए सिरों का भारी डंडा'—७१६, १६६८।
यष्टि—'भारी डंडा'—२०६६।

(९) अन्तर्कथा (उपाख्यान)

महाभारत के प्रमुख पात्र

(उपहार-पुस्तक)

वक्तव्य

महाभारत के पात्रों की कार्य-परम्परा, उक्त ग्रन्थ में, अनेक स्थलों पर बिखरी पड़ी है; अतएव पाठक को उसका सम्यक् ज्ञान प्राप्त करने में बड़ी असुविधा होती है। इस आवश्यकता को दृष्टि में रखकर प्रस्तुत पुस्तक की रचना की गई है। इससे पाठक को प्रायः सभी मुख्य-मुख्य पात्रों का चरित एक ही स्थल पर मिल जायगा।

पात्रों के क्रम का निर्धारण अकारादि-क्रम से किया गया है; वयो-मर्यादा, शूरता और महत्त्व की दृष्टि से नहीं। आलोचना करने में किसी प्रकार की रू-रियायत नहीं की गई। इस कारण, सम्भव है, आलोचना किसी-किसी को अप्रिय लगे। जिसको जिस पात्र के कार्यों से अब तक सहानुभूति रही है वह यदि अपनी धारणा के विपरीत आलोचना पढ़कर क्रुद्ध हो जाय तो इसमें आश्चर्य ही क्या। किन्तु आलोचक को तो किसी का पक्षपात न करके गुण-दोष की समीक्षा करनी है। जैसे युधिष्ठिर का अथवा भीष्म पितामह का चरित आदर्श माना जाता है; किन्तु आलोचक ने उसमें जहाँ त्रुटि देखी है वहाँ उसका उल्लेख कर दिया है। यदि वह ऐसा न करता तो अपने कर्तव्य से च्युत हो जाता। उसके हृदय में भीष्म पितामह अथवा धर्मराज युधिष्ठिर के प्रति यथेष्ट सम्मान का भाव है, फिर भी उसको सत्य बात कहनी पड़ी है। आशा है, इसके लिए कृपालु पाठक उस पर कोप न करेंगे।

पुस्तक की कुल सामग्री महाभारत से ली गई है। इस काम में लेखक को "महाभारत की अनुक्रमणिका" से बहुमूल्य सहायता मिली है। इसके सिवा श्रीयुक्त चिन्तामणि विनायक वैद्य एम० ए०, एल्-एल० बी० की "भारतीय वीरकथा", महामहोपाध्याय पण्डित रामकृष्ण तर्कतीर्थ के "भारत-संवाद" और श्री शशिभूषण विद्यालंकारजी के 'जीवनी-कोष' से भी सहायता ली गई है। किन्तु प्रस्तुत पुस्तक अपने ढँग की निराली है। इसमें कथाभाग देने की चेष्टा न करके चरित-चित्रण और समीक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया है।

श्रीकाशीधाम,
अधिक भाद्रपद कृष्ण ६
संवत् १९९३ विक्रमी

लेखक

युग के आर्यों में बाल-विवाह का रिवाज नहीं था। इस विवाह का कारण राजनैतिक था। यह सम्बन्ध हो जाने से पाण्डवों को मत्स्य-नरेश विराट से हर प्रकार की सैनिक सहायता मिल गई। उधर विराट को भी बेटी के विवाह की चिन्ता से छुटकारा मिल गया। कारण यह है कि अज्ञातवास के समय अर्जुन अपनी क्लीबावस्था में उत्तरा को नाचने-गाने की शिक्षा दिया करते थे। इससे अन्यत्र कदाचित् उसका विवाह होने मे कुछ कठिनाई होती। छोटी ही अवस्था में अभिमन्यु का विवाह हुआ, उसकी पत्नी उत्तरा गर्भवती हुई और वह बेचारा समरभूमि में अलौकिक वीरता प्रकट करके, अपने वंशवालों को उस दिन के संकट से बचाकर, वीरों के लोक को चला गया। उत्तरा पर विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा। उसे वैधव्य-दुःख तो सहना ही पड़ा, इसके अतिरिक्त आततायी अश्वत्थामा ने उसके गर्भस्थ बालक पर इषीकास्त्र का प्रयोग भी कर दिया। यह श्रीकृष्ण का ही काम था कि इस संकट से रक्षा करके उन्होने परिक्षित को पाण्डवों का वंश चलाने के लिए बचा लिया।

अम्बा

भीष्म (देवव्रत) को अपने सौतेले भाई विचित्रवीर्य का विवाह करना था। इसके लिए वे क्षत्रिय-कन्याओं की खोज में थे। इसी बीच काशिराज की कन्याओं के स्वयंवर की ख़बर मिली। ठीक समय पर वे काशिराज के यहाँ पहुँचे और समवेत राजमण्डली को परास्त करके उन कन्याओं को लाकर उन्होंने माता सत्यवती के सुपुर्द कर दिया। कन्याओं का नाम अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका था। अम्बा सबसे बड़ी थी। उसने शाल्व को वरमाला पहनाने का निश्चय कर रक्खा था। हस्तिनापुर में पहुँचकर उसने अपना उक्त अभिप्राय प्रकट करके कहा कि मैं दूसरे को हृदय से वरण कर चुकी हूँ, अतएव विचित्रवीर्य के साथ मेरा विवाह करना अनुचित है।

भीष्म और सत्यवती ने उदारता दिखलाकर अम्बा को शाल्व के पास जाने की आज्ञा दे दी। किन्तु जब वह शाल्व के पास पहुँची तो उसने इसे ग्रहण करना स्वीकार नहीं किया। कह दिया कि तुम तो भीष्म के यहाँ हो आई हो। तुममें कुछ दोष देखकर ही उन्होंने तुम्हें त्याग दिया है। अम्बा ने शाल्व को सच्चा हाल समझाने की बड़ी चेष्टा की; किन्तु कुछ फल नहीं हुआ। बेचारी की ज़िन्दगी बरबाद हो गई। अब वह भीष्म के यहाँ भी न जा सकती थी। जाती तो वे लोग कहते कि दूसरे पुरुष पर आसक्त रमणी को अपनी गृहिणी बनाने का दायित्व कौन ले। अन्त में वह बड़ी दुखी होकर वन में ऋषियों के पास पहुँची। उन लोगों ने सब हाल सुनकर उसको ढाढ़स बँधाया। एक दिन उसकी भेंट उसके नाना राजर्षि होत्रवाहन से हो गई। उनकी सलाह मानकर अम्बा महात्मा परशुरामजी की शरण में गई। उन्होंने अपने मित्र की नातिन के दुःख से दुखी होकर भीष्म के साथ घोर युद्ध किया। इस युद्ध में भीष्म ने बड़ा पराक्रम प्रकट किया। परशुरामजी से उन्होंने धनुर्वेद सीखा था। इस नाते वे परशुरामजी के शिष्य थे। इस सम्बन्ध का निर्वाह उन्होंने उचित रीति से किया। युद्ध आरम्भ करने से पहले उन्होंने गुरु के चरणों की वन्दना करके उनसे युद्ध के लिए अनुमति ली और आशीर्वाद प्राप्त किया तथा क्षत्रिय-धर्म की ओर देखकर डटकर युद्ध किया। बड़ा विकट संग्राम हुआ। कोई किसी से हार नहीं मानता था। अन्त में अपने पितरों

की आज्ञा मानकर परशुराम को युद्ध बन्द करना पड़ा। यह विजय पाकर भी भीष्म ने किसी प्रकार का अभिमान प्रकट न करके गुरु की वन्दना ही की थी।

अब अम्बा ने परशुरामजी के उपदेश से, अपनी मनोरथ-सिद्धि के लिए, महादेवजी की आराधना करना आरम्भ कर दिया। आशुतोष ने प्रसन्न होकर उसे भीष्म के वध करने का वरदान दे दिया। बस, अम्बा ने एक चिता बनाकर अपनी देह को भस्म कर दिया। इसके अनन्तर वह राजा द्रुपद के यहाँ कन्या के रूप में उत्पन्न हुई। उसका नाम शिखण्डिनी था। आगे चलकर वह स्थूणाकर्ण नामक यक्ष से पुरुषत्व का विनिमय करके शिखण्डी नाम से प्रसिद्ध हुई। अन्त मे इसी को युद्ध में भीष्म का वध करने में सफलता मिली।

अम्बा ने अपने हाथों आपत्ति मोल ली। यदि वह शाल्व की चिन्ता छोड़ देती तो कौरवों के रनिवास से उसे कौन हटा सकता था? पर कष्ट यहाँ भी रहता। उसकी दोनों बहनों पर जैसी बीती वह प्रकट ही है। भीष्म को अपनी विपत्ति का मूल कारण मानकर वह उन्हें अपना शत्रु समझती थी। उनसे बदला लेने के लिए उससे जितने उपाय बन पड़े, उन सबको उसने किया। इतने बड़े महात्मा परशुरामजी तक को इस झगड़े में घसीटा और सफलता न पाने पर भी उसने आशा नहीं छोड़ी। कठोर तपस्या द्वारा पार्वतीपति को प्रसन्न कर उनसे वरदान माँगा। वह चाहती तो भीष्म का वध करने की क्षमता माँगने के बदले अपने कल्याण का साधन कर लेती; किन्तु उसे तो बदला लेना था। इसके आगे उसकी दृष्टि में मोक्ष का भी कुछ महत्त्व न था। इसी को लगन कहते हैं। जिसमें ऐसी लगन होती है वह सब कुछ कर लेता है। इतनी तपस्या करने पर भी अम्बा को दूसरे जन्म में पुरुष-शरीर नहीं मिला। पहले कन्या होकर तब विनिमय में पुरुष-शरीर मिला। यह एक ख़ास बात है जिस पर ध्यान देना चाहिए।

अर्जुन

अर्जुन कुन्ती के सबसे छोटे पुत्र थे। इनका जन्म इन्द्र के द्वारा हुआ था। इसी कारण आगे चलकर इन्द्र ने इनके मार्ग के काँटे दूर करने में, समय-समय पर, सहायता की थी। इनमें ख़ासी शूरता और शक्ति थी। धुन के तो ये ऐसे पक्के थे कि कौरव-पाण्डवों में कोई भी इस विषय में इनकी बराबरी करनेवाला नहीं था। इनके इस गुण पर द्रोणाचार्य इतने प्रसन्न हुए कि धनुर्वेद की जो बातें उन्होंने औरों को नहीं बताई थीं वे भी इन्हें बतला दी थीं। वे इनको अश्वत्थामा से भी बढ़कर चाहते थे। ये भी ज़बर्दस्त गुरुभक्त थे। इस नाते से अश्वत्थामा के साथ इनका बड़ा मेलजोल था। एक बार रात को भोजन करते समय दिया बुझ गया फिर भी हाथ का कौर मुँह में ही गया, अन्यत्र नहीं—इसको लक्ष्य करके इन्होंने, गुरु के बताये बिना ही, शब्दवेधी बाण चलाना सीख लिया था।

द्रोणाचार्य एक बार शिष्यों के साथ गङ्गा नहाने गये। ज्योंही वे जल में उतरे त्योंही मगर ने उनकी टाँग पकड़ ली। द्रोणाचार्य ने अपने छात्रों की जाँच करने के लिए आवाज़ लगाई कि "तुम लोग मुझे इस मगर से बचाओ।" अन्यान्य छात्र तो घबराहट के मारे एक दूसरे की ओर ताकते रह गये; किन्तु अर्जुन ने पानी के भीतर डूबे हुए मगर को तुरन्त पाँच बाण मारकर मार डाला और

आचार्य की टाँग पर आँच तक न आने दी। इससे प्रसन्न हुए आचार्य ने अर्जुन को प्रयोग और उपसंहार सहित ब्रह्मशिर अस्त्र सिखला दिया।

इसके बाद द्रोणाचार्य की आज्ञा से, राजकुमारों का अस्त्र-कौशल दिखलाने के लिए, 'टूर्नामेंट' कराया गया। इसमें भी अर्जुन के ही खेल सबको पसन्द आये। इस कारण दुर्योधन को बड़ा दुःख हुआ। उत्सव समाप्त होने को था कि वहाँ कर्ण ने पहुँचकर वे सब करामातें कर दिखलाईं जिनके लिए अर्जुन की प्रशंसा हो रही थी। बस, यहीं से इन दोनों वीरों में लाग-डाँट पैदा हो गई जो कर्ण की ज़िन्दगी भर बनी रही।

इस घटना के अनन्तर अर्जुन की शक्ति की परीक्षा कर्मक्षेत्र में गन्धर्वराज अङ्गारपर्ण का सामना करने में हुई। वह बड़ा बली था। किन्तु अर्जुन से परास्त होने पर सारी शेखी भूल गया। अन्त में उसने अर्जुन से मित्रता कर ली और वह 'चाक्षुषी' विद्या सिखला दी जिसकी प्राप्ति के लिए छः महीने तक कठोर तपस्या करनी पड़ती है। उसने पाण्डवों को गन्धर्व-जाति के सौ-सौ घोड़े देने का भी वचन दिया। उसी की सलाह से पाण्डवों ने महर्षि धौम्य को अपना पुरोहित बना लिया। आगे राजा द्रुपद के यहाँ स्वयंवर-सभा में पहुँचने पर अर्जुन ने मत्स्य-वेध करके द्रौपदी को प्राप्त किया और माता कुन्ती के आदेश से पाँचों भाइयों ने उसे अपनी पत्नी बनाया। यहीं पाण्डवों को सब लोगों ने पहचाना। इससे पहले तक लोग यही समझते थे कि पाण्डव लोग अपनी माता के साथ वारणावत में जल मरे। श्रीकृष्ण से भी यहीं पहले-पहल भेंट हुई। मत्स्य-वेध कर चुकने पर राजमण्डली मे बड़ा हुल्लड़ मच गया था और ब्राह्मणवेषधारी अर्जुन से द्रौपदी को छीन लेने के लिए मार-काट भी हुई थी जिसमें अर्जुन ने सबके छक्के छुड़ाकर सिद्ध कर दिया कि हमें निरा भिखमङ्गा मत समझो।

द्रौपदी के सम्बन्ध मे पाण्डवों ने यह नियम बना लिया था कि जिस समय वह एक भाई के पास रहे उस समय अन्य चार भाइयों में से कोई उसके पास न जाय और यदि पहुँच जाय तो उसे वनवास करना पड़े। एक बार द्रौपदी के साथ युधिष्ठिर एकान्त में थे और जहाँ पर वे थे वहीं होकर अस्त्रागार में धनुष उठाने के लिए अर्जुन को जाना पड़ा। एक ब्राह्मण की रक्षा करने के लिए धनुष की आवश्यकता थी। ब्राह्मण का कार्य पूरा कर चुकने पर अर्जुन, नियमानुसार, वनवास करने को चले गये। वनवास मे तीर्थयात्रा करते समय मध्यदेश में उनको नागकन्या उलूपी की प्राप्ति हो गई। फिर पूर्व ओर मणिपुर के स्त्री-राज्य मे वहाँ की राजकुमारी चित्राङ्गदा से भी विवाह हो गया। अर्जुन के पुत्र प्रसिद्ध योद्धा बभ्रुवाहन की उत्पत्ति इसी के गर्भ से हुई थी। दक्षिण ओर के तीर्थों की यात्रा कर चुकने पर अर्जुन जब पश्चिम में प्रभास-क्षेत्र पहुँचे तब वहाँ, द्वारका से आकर, श्रीकृष्ण ने उनसे भेंट की। यहाँ से दोनों मित्र द्वारका की ओर गये। किन्तु वनवास की प्रतिज्ञा के कारण अर्जुन द्वारका में न जाकर पास ही रैवतक पर्वत पर ठहर गये। बहुत से द्वारकावासी और बलराम भी यहीं उनसे मिलने को आये। यहाँ बलराम की बहन सुभद्रा को देखकर अर्जुन मोहित हो गये। यह देख श्रीकृष्ण ने पूछा कि क्या वनवासी तपस्वी के मन में भी काम की वासना उत्पन्न होती है। बलरामजी सुभद्रा का विवाह दुर्योधन के साथ करने का विचार कर रहे थे। इसका ख़याल करके श्रीकृष्ण ने अर्जुन को सुभद्रा का हरण करने की सलाह दे दी। अर्जुन के ऐसा कर बैठने पर बलराम

ने यादवों को अर्जुन का पीछा करने की आज्ञा दी। इस पर श्रीकृष्ण ने बड़े भाई को समझा-बुझाकर शान्त कर दिया। अन्त में अर्जुन को आदर के साथ बुलाकर उनके साथ सुभद्रा का विवाह यथाविधि कर दिया गया। सुभद्रा के ही गर्भ से अर्जुन के पुत्र प्रसिद्ध वीर अभिमन्यु का जन्म हुआ था।

अग्नि के प्रार्थना करने और कपिध्वज नाम का दिव्यरथ तथा गाण्डीव धनुष देने पर अर्जुन ने श्रीकृष्ण की सहायता से ऐसा प्रबन्ध कर दिया कि इन्द्र की एक न चली और अग्नि ने खाण्डव-वन को भस्म करके अपनी तृप्ति कर ली। मय नाम का असुर, तक्षक नाग और चार शार्ङ्क पक्षियों के सिवा उस अग्निकाण्ड से कोई जीता नहीं बच सका। प्राण-दान करने के बदले में मय नाम के इंजीनियर ने पाण्डवों के लिए हज़ार खम्भों का एक विलक्षण सभा-भवन बना दिया। इसमे उसने कैलास और मैनाक पर्वत से मूल्यवान् मणियाँ लाकर लगाई थीं। अर्जुन को देवदत्त नाम का बढ़िया शंख भी उसने दिया था।

हस्तिनापुर में राजसूय यज्ञ से पूर्व किये गये दिग्विजय में अर्जुन ने बहुतेरे राजाओं को जीतकर उनसे यज्ञ के लिए कर वसूल किया था। राजसूय यज्ञ बड़ी धूमधाम से किया गया। उसकी तैयारी देखने से दुर्योधन को बड़ा दुःख हुआ था। यज्ञ में लोगों के आगत-स्वागत का कार्य दुःशासन को सौंपा गया था। ब्राह्मणों की सेवा-शुश्रूषा अश्वत्थामा के ज़िम्मे थी। राजाओं की अभ्यर्थना का कार्य संजय को दिया गया था। भीष्म और द्रोण इस बात की जाँच-पड़ताल पर तैनात थे कि किसी काम में कोई कसर तो नहीं रह गई है। रत्न आदि रखने और दक्षिणा देने के काम पर कृपाचार्य की नियुक्ति हुई थी। विदुर के ज़िम्मे ख़र्च का हिसाब-किताब था। सबसे अधिक सम्मान का काम था राजाओं से मिली हुई भेंटों को स्वीकार करना। यह दुर्योधन को दिया गया था। सबसे छोटा किन्तु सबसे अधिक पुण्यजनक काम था ब्राह्मणों के चरण धोने का। इसे श्रीकृष्ण करते थे। भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव से जो कुछ करने के लिए कहा जाता था उसी के करने को वे तैयार रहते थे।

असल में राजसूय यज्ञ था पाण्डवों के ऐश्वर्य का मध्याह्न। इसी में ग्रहण लग गया। जिन्होंने ऐसे अच्छे दिन देखे थे उन्हीं को जुए में हारकर बड़े से बड़े सङ्कट झेलने पड़े। राज-पाट गया, धन-दौलत गई, इज़्ज़त-आबरू गई, भाई-बन्धुओं से वियोग हुआ और वन-वन में मारे-मारे फिरना पड़ा। इसी सङ्कट-काल में यह सोचा गया कि शर्तें पूरी हो जाने पर भी यदि कौरव हमारा राज्य न लौटावेंगे तो क्या किया जायगा। इसके लिए अभी से तैयारी कर रखनी चाहिए। अब धर्मराज से अर्जुन ने वह जगत्प्रकाशक विद्या सीखी जो उन्हें व्यासजी से प्राप्त हुई थी। इसके पश्चात् गाण्डीव धनुष और अक्षय तरकस लेकर अर्जुन ने दिव्य अस्त्रों की प्राप्ति के लिए तपस्या करने को प्रस्थान किया। हिमालय और गन्धमादन पर्वत को लाँघने पर उन्हें कैलास मिला। यहाँ उनका और एक किरात का झगड़ा हो गया। एक वराह का शिकार किया गया था। किरात कहता था कि मेरा बाण लगने से वराह मरा है और अर्जुन उसे अपने बाण का शिकार हुआ बतलाते थे। अन्त में दोनों के बीच ठन गई। घोर संग्राम हुआ। इसमें अपनी शक्ति का ह्रास होते देख अर्जुन को बड़ा विस्मय हुआ। अन्त में किरातवेषधारी शङ्कर को पहचानकर अर्जुन ने उन्हें प्रणाम किया और उनसे पाशुपत अस्त्र पाया।

आरम्भ में ही यह सफलता हो जाने से अर्जुन को बड़ी प्रसन्नता हुई। आगे उन्हें इन्द्र का सारथि मातलि रथ लिये हुए मिल गया। अर्जुन गङ्गाजी में स्नान करके रथ पर सवार हो अमरावती पहुँचे। देवसभा में पहुँचने पर इन्द्र ने उन्हें अपने ही साथ आसन पर बिठा लिया। यहाँ अर्जुन ने पाँच वर्ष बिताये और विविध देवताओं से उनके अस्त्र सीखे। चित्रसेन गन्धर्व से मित्रता थी इसलिए उसने गाना, नाचना और बाजे बजाना आदि सिखा दिया। देवसभा में उर्वशी अप्सरा की ओर वे इसलिए देखा करते थे कि यह हम लोगों की वंशमाता है। किन्तु चित्रसेन ने कुछ और ही समझकर एक दिन उसे अर्जुन के पास भेज दिया। उसे देखकर अर्जुन आदर देने के लिए खड़े हो गये और उसके काम-वासना प्रकट करने पर बोले कि तुम तो हमारे वंश की जननी हो। मैं तुम्हारे साथ कोई अनुचित कार्य कैसे कर सकता हूँ। तुमको कुछ भ्रम हो गया है। इससे कुढ़कर उर्वशी ने अर्जुन को नपुंसक हो जाने का शाप दे डाला। अन्त में यह शाप अर्जुन के लिए वरदान ही हो गया। इसी के प्रभाव से अर्जुन बृहन्नला बनकर राजा विराट के रनिवास में उत्तरा के सङ्गीत-शिक्षक हो सके थे।

अन्त में अर्जुन स्वर्ग से बदरीवन में नर-नारायण के आश्रम में पहुँचे। अन्यान्य पाण्डव यहीं पर अर्जुन की प्रतीक्षा कर रहे थे। बहुत दिन बीतने पर अर्जुन से भेंट हुई थी इस कारण सभी को प्रसन्नता हुई। उन्होंने भाइयों को अस्त्र-प्राप्ति का वर्णन सुनाकर हर्षोत्फुल्ल कर दिया। युधिष्ठिर ने तथा औरों ने भी अर्जुन को इसलिए शाबाशी दी कि तुम साक्षात् शङ्करजी और इन्द्र के दर्शन कर आये।

पाण्डव लोग एक बार द्वैतवन में ठहरे हुए थे। यह ख़बर पाकर शकुनि, कर्ण और दुर्योधन ने इन लोगों को सताने के लिए मन्सूबा गाँठा। सरकारी गौओं और साँड़ों की गिनती करके उन पर चिह्न बना देने तथा शिकार खेलने का बहाना करके, धृतराष्ट्र से अनुमति लेकर, ये लोग दल-बल के साथ चल पड़े। वहाँ पर दुर्योधन के सैनिकों के साथ गन्धर्वों का झगड़ा हो गया। बात यहाँ तक बढ़ी कि चित्रसेन ने दुर्योधन आदि को परास्त करके बाँध लिया। यह देख मन्त्री लोग युधिष्ठिर के पास दौड़े गये। उन्होंने सब हाल कहकर रक्षा के लिए प्रार्थना की। भीम ने कहा कि यह अच्छा ही हुआ। ये लोग यहाँ हमारा उपहास करने आये थे। उसका फल भोगें। अपने शत्रुओं की भी कोई सहायता करता है। युधिष्ठिर ने उनको धमकाकर कहा कि कुछ भी हो, आख़िर दुर्योधन हमारा भाई ही है। उसको हमारे रहते कोई कैसे पकड़ ले जायगा। फिर कौरव-कुल की महिलाओं का अपमान तो हम किसी प्रकार सहन नहीं कर सकते। उनको गिरफ़्तार करनेवाले की ख़बर अच्छी तरह ली जानी चाहिए। मैं पूजन में बैठा हूँ, इससे स्वयं नहीं जा सकता। तुम चारों भाई अभी जाकर अपने भाइयों का उद्धार करो।

आज्ञा पाकर अर्जुन ने गन्धर्वों से युद्ध किया। क्रोध की दशा में वे लोग भी भिड़ गये; किन्तु अन्त में अपनी एक न चलते देख चित्रसेन ने अर्जुन को अपनी पुरानी मित्रता की याद दिलाकर कहा कि यह क्या करते हो! जिन शत्रुओं ने तुम्हें तरह-तरह से तङ्ग किया है उन्हीं की हिमायत करके मुझ अपने मित्र पर प्रहार कर रहे हो! अन्त में क़ैदी दुर्योधन आदि को साथ लिये चित्रसेन युधिष्ठिर के पास आया और उनके कहने से उसने उन लोगों को छोड़ दिया। यदि

दुर्योधन में समझ होती तो इस घटना से शिक्षा ग्रहण करता क्योंकि जिन्होंने उसे क़ैद करके उसकी स्त्रियों पर भी क़ब्ज़ा कर लिया था उन्हीं को परास्त कर देनेवाले पाण्डवों से आख़िर वह क्योंकर पेश पा सकता ?

वनवास की अवधि बीतने पर पाण्डव लोग, नाम और रूप बदलकर, राजा विराट के यहाँ रहने लगे। वहाँ पर अर्जुन, बृहन्नला नाम रखकर, हिजड़े के वेष में रहते और राजकुमारी उत्तरा को नृत्यगीत की शिक्षा दिया करते थे। इस विषय का विशेष विवरण 'उत्तर' के चरित में दिया गया है। गोग्रहण का युद्ध हो चुकने पर, अन्यान्य पाण्डवों के साथ अर्जुन भी प्रकट हो गये। समझौता करने के सम्बन्ध में अर्जुन की भी इच्छा थी। युद्ध में पहले से यह निश्चय तो रहता नहीं कि किस पक्ष की हार होगी और किसकी जीत। इसी से उन्होंने जोखिम को टालने की चेष्टा की थी पर होनहार कहीं टली है ! अन्त में युद्धभूमि में उन्होंने जैसा रण-कौशल दिखाया, जितनी सेना को मारा और जैसे अलौकिक काम किये उसका वर्णन महाभारत में भरा पड़ा है।

अर्जुन के विजयी होने में श्रीकृष्ण की सहायता प्रधान कारण है। एक तो उनके जैसा सारथि उस समय दूसरा न था; दूसरे उनकी सलाह तो सर्वथा अनमोल ही थी। द्रोणाचार्य, दुर्योधन और शल्य तीनों ने श्रीकृष्ण के सारथित्व की बार-बार प्रशंसा की है और उनकी नीति-कुशलता का लोहा तो सभी ने मान लिया था। यह उन्हीं का काम था जिससे पाण्डवों के पक्ष को न्याय्य मानकर संसार ने कौरवों को अनीति का पुरस्कर्ता ठहराया और यह साधारण बात न थी। किसी राजा का लोगों की नज़रों से गिर जाना उसकी बड़ी भारी हार है। श्रीकृष्ण की सहायता का अभाव होते ही वीरवर अर्जुन को पंजाब के साधारण डाकुओं ने लूट लिया। इससे अर्जुन को बड़ा विस्मय हुआ। वे बराबर सोचते थे कि मैं वही कुरुक्षेत्रविजयी अर्जुन हूँ, वही मेरी भुजाएँ, वही मेरा धनुष और वे ही मेरे तीक्ष्ण बाण हैं; फिर क्या कारण है कि इन मामूली डकैतों पर मेरी एक नहीं चलती। अन्त में उन्हें पता चला कि जिसकी पूँजी से मेरा कारबार चलता था उस साहूकार के चले जाने से ही मेरी शक्ति का दिवाला हो गया है। इससे उन्हें बड़ा दुःख हुआ। हस्तिनापुर पहुँचकर उन्होंने अपनी यह कष्ट-कथा युधिष्ठिर को रो-रोकर सुनाई है।

श्रीकृष्ण के सारथ्य के विषय में एक ही घटना का उल्लेख हम यहाँ करेंगे। अर्जुन और कर्ण का घमासान युद्ध हो रहा था। वे दोनों एक दूसरे के अस्त्रों को काट-काटकर अपने अस्त्रज्ञान का प्रदर्शन कर रहे थे। अन्त में जब कर्ण की एक भी न चली तब उसने वह बाण निकाला जो सर्प के विष से बुझाया गया था और चन्दन के बुरादे में रक्खा रहता था। इसे उसने सुवर्ण के तरकस में अलग रख छोड़ा था। अर्जुन का सिर काटने के लिए इसी को उसने धनुष पर चढ़ाकर ठीक निशाने पर मार दिया और चिल्लाकर कहा कि अर्जुन मारा गया। उस प्रदीप्त बाण को आते देख श्रीकृष्ण ने चटपट लगाम खींचकर घोड़ों को बिठा दिया जिससे रथ के कुछ नीचे हो जाने से बाण निशाने पर न लगकर अर्जुन के मुकुट को गिराकर निकल गया। अब, अर्जुन ने अपने सफ़ेद दुपट्टे से अलकों को बाँध लिया और श्रीकृष्ण ने लगाम के इशारे से घोड़ों को खड़ा करके झुके हुए रथ को अपनी भुजाओं से उठाकर पहले का जैसा कर लिया। यदि श्रीकृष्ण ने फ़ुर्ती से यह काम

न किया होता तो अर्जुन का जीवित बचना कठिन था। ऐसे ही प्रसङ्ग पर सारथि की बुद्धिमानी और सूझ की परीक्षा होती है।

महाभारत के पात्रों की चरितावली की समीक्षा करने से ज्ञात होता है कि प्रत्येक पात्र के जीवन का लक्ष्य किसी न किसी उद्देश्य की पूर्ति करना है। युधिष्ठिर का चरित धर्मनिष्ठा से, भीष्म का चरित जितेन्द्रियता से और कर्ण का चरित्र दानशीलता तथा उदारता से ओत-प्रोत है सही; किन्तु इन सबके चरितों में जीवन के अन्यान्य अङ्गों की यथायोग्य सामंजस्य-रक्षा नहीं देख पड़ती। कर्ण के चरित्र को कुमन्त्रणा ने कलुषित कर डाला है। भीमसेन भड़भड़िया हैं और धर्मराज दीर्घसूत्री। उनमें क्षत्रियसुलभ शूरता क्वचित् ही देख पड़ती है। किन्तु अर्जुन का चरित्र ऐसा एकाङ्गी नहीं है। उनमें सभी गुण ठीक अनुपात में वर्तमान हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि उनका चरित केवल सद्गुणों के सारांश से संगठित है। सच तो यह है कि उनमे दोष और गुण दोनों का समावेश है। इसी से अर्जुन को पूर्ण मानव कहना ठीक होगा। कुरुक्षेत्र के महासमर के प्रारम्भ में उन्होंने अपने अनुरूप ही बर्ताव किया। इससे सभी ने उनकी प्रशंसा की। बड़े भाई की भूल से ही उन्हें विविध क्लेश सहने पड़े; किन्तु इसके लिए कभी उन्होंने उलाहना नहीं दिया। केवल एक बार उन्हें कुछ कड़ी बातें कहनी पड़ी थीं, सो उसका कारण था और उस पाप का उन्होंने प्रायश्चित्त भी किया था। अर्जुन का जीवन तो साधक का जीवन था। इसी से न वे सुख में मस्त हुए और न दुःख में बुरी तरह घबराये ही। उन्हें अपने भाइयों से जैसा कुछ स्नेह था उसका परिचय इसी से मिल जाता है कि वे स्वर्ग में रहने का इन्द्र का अनुरोध न मानकर—अस्त्रशिक्षा प्राप्त करके—भाइयों के पास कष्ट सहने को लौट आये। उद्देश-साधन के व्रती अर्जुन पर परमा सुन्दरी उर्वशी का कटाक्ष कारगर नहीं हुआ। इससे चिढ़कर उसने जो उन्हें एक वर्ष तक नपुसक रहने का शाप दिया उसका अर्थ यही समझना चाहिए कि उसने उन्हें उच्च श्रेणी का ब्रह्मचारी समझा। जिस पर कामिनी का कटाक्ष बेकाम हो जाय वह उसकी समझ में क्लीब तो है ही। राजा विराट के अन्तःपुर में हज़ारों सुन्दरियों के बीच रहकर उन्होंने अपनी जितेन्द्रियता को प्रमाणित कर दिया था। यदि वे ब्रह्मचर्य का पालन इतनी दृढ़ता से नहीं कर पाते तो भुवन-विश्रुत वीरों का सामना ही कैसे कर सकते। ब्रह्मचर्य-व्रत की सफलता के प्रभाव से ही अर्जुन तो ब्रह्मशिर अस्त्र का उपसंहार कर सके किन्तु अश्वत्थामा के किये यह काम न हुआ।

गन्धर्वराज चित्रसेन ने उर्वशी को अर्जुन का परिचय इस प्रकार दिया था—"अर्जुन ने स्वाभाविक अनेक गुणों, रूप-लावण्य, सुशीलता, व्रतानुष्ठान और इन्द्रिय संयम के द्वारा देवलोक और मनुष्यलोक में बहुत नाम पाया है; वे शूरता, वीरता, पराक्रम और क्षमा के प्रभाव से जगत् में प्रसिद्ध हो रहे हैं; वे डाह नहीं करते; उन्होंने वेद, वेदाङ्ग, उपनिषद् आदि सब शास्त्र पढ़े हैं; वे भक्ति के साथ गुरुजनों की सेवा करते हैं; आठ गुणों से युक्त मेधा उनकी स्वाभाविक शक्ति है; वे ब्रह्मचर्य, आलस्यहीनता और अभिज्ञता के द्वारा सब लोगों की रक्षा और देखरेख करते हैं... ।"

अर्जुन वीर हैं। न तो वे कूट-योद्धा हैं और न कूटनीति-निपुण। उनका काम तो मैदान में दो-दो हाथ दिखाना है। हम उन्हें शिशुपाल के झगड़े में नहीं पाते, द्रोण को मारने की अभिसन्धि से वे

कोसों दूर हैं। वे तो धृष्टद्युम्न से, गुरुहत्या करने के कारण, उलझ तक पड़ते हैं। वे यह नहीं सोचते कि पाण्डवों की विजय होने से धृष्टद्युम्न को कौन सी जागीर मिल जायगी; पाञ्चाल लोग तो पाण्डवों के हित के लिए ही अपना ख़ून बहा रहे हैं। अर्जुन इन सारी बातों को गुरुभक्ति में डुबो देते हैं।

ऐसा वीर पुरुष ठीक युद्ध के समय स्वजन-वध करने से क्यों विचलित हो उठा? यह दुर्बलता उन्हें माता से विरासत में मिली थी। देव और मानव दोनों के ही गुण तो उनके चरित्र में हैं; क्योंकि पिता है देवराज इन्द्र और माता है मानवी। ऐसी ही दुर्बलता उनमें हम अभिमन्यु के मारे जाने पर पाते हैं। जब तक प्राणी स्थूल शरीर में रहेगा तब तक उसमें ऐसी दुर्बलताओं का होना सर्वथा स्वाभाविक है। अश्वत्थामा और अर्जुन में यही अन्तर है कि पुत्र-शोक से दुखी होने पर भी अर्जुन ने दिव्य अस्त्रों का प्रयोग करके शत्रुओं का उच्छेद नहीं कर डाला किन्तु अश्वत्थामा ने न केवल निरस्त्र सो रहे लोगों की ही हत्या की, प्रत्युत पाण्डवों का विनाश कर डालने के लिए वह ब्रह्मशिर अस्त्र तक का प्रयोग करने से नहीं चूका।

दूसरी बात अर्जुन में है बड़े भाई की आज्ञाकारिता में रहना। अकेले अर्जुन ने जैसा घोर युद्ध किया, जितने वीरों को मारा और जितने देशों को जीता उतना उनके और किसी भाई ने नहीं। फिर भी उन्होंने अपना अलग राज्य स्थापित करने की चेष्टा नहीं की। भाई के राज्य में उन्होंने अपने लिए कोई महत्त्वपूर्ण स्थान भी नहीं माँगा। उन्हें तो इसी में सुख था कि बड़ा भाई राज्य करे और वे उसकी आज्ञा का पालन करें।

यह बात अवश्य है कि अर्जुन ने कर्ण को उस दशा में मारा जब वह अपने रथ के धँसे हुए पहिये को निकालने की चेष्टा कर रहा था और इसी कारण युद्ध में अपनी पूरी-पूरी शक्ति नहीं लगा पाता था। ऐसी दशा में उसको अर्जुन का मारना लोगों को कुछ असमञ्जस में डाल देता है क्योंकि इससे पहले अर्जुन ने कभी किसी निहत्थे, युद्ध-पराङ्मुख और शरणागत पर प्रहार नहीं किया। किन्तु जब हम सोचते हैं कि कर्ण को तो अर्जुन से युद्ध करते समय अस्त्र-प्रयोग को भूल जाने और विपन्न होने का अभिशाप था तब हमें अर्जुन का यह कार्य अनुचित नहीं जान पड़ता, फिर यह काम अर्जुन ने श्रीकृष्ण के कहने से ही किया था।

भीष्म पितामह से युद्ध करते समय प्रबन्ध यह किया गया था कि शिखण्डी को आगे करके, उसके पीछे रहकर, अर्जुन प्रहार करें। पितामह के वध के लिए ही शिखण्डी उत्पन्न हुआ था। पिछले जन्म में अम्बा ने भीष्म पर क्रुद्ध होकर उनका वध करने के लिए तपस्या की थी; वही इस जन्म में शिखण्डी हो गई थी। फलत: उसके द्वारा पितामह की मृत्यु होनी थी। दूसरे वे यथेष्ट वृद्ध भी हो चुके थे। तीसरे, कौरवों की करतूतें देखने से वे अपनी लम्बी उम्र से ऊब भी गये हों तो आश्चर्य नहीं। फिर यदि शिखण्डी की रक्षा न की जाती तो अन्य कौरव योद्धा उसे मार डालते और जिसके द्वारा इतने बड़े 'फ़ील्ड मार्शल' को गिराने का प्रबन्ध किया गया था उसकी रक्षा न करना कहाँ की बुद्धिमानी थी। इन्हीं सब कारणों ने अर्जुन को ऐसा करने के लिए लाचार कर दिया था। इसमें कोई धोखा-धड़ी नहीं थी। भीष्म ने दुर्योधन से स्पष्ट कह दिया था कि शिखण्डी पूर्वजन्म में स्त्री था। वह इस जन्म मे पहले लड़की ही था। पीछे से

घटना-क्रम ने उसे पुरुष बना दिया है। मैं उस पर हाथ नहीं उठाऊँगा। मेरी मृत्यु उसी के हाथ है। इस पर दुर्योधन ने ऐसा प्रबन्ध कर दिया जिससे शिखण्डी सामना करने को भीष्म तक पहुँच ही न पावे। उधर युधिष्ठिर के पूछने पर भीष्म ने बतला दिया कि शिखण्डी को आगे करके युद्ध न करोगे तो मुझे नहीं जीत सकते। इस प्रकार एक पक्ष इस चेष्टा में था कि शिखण्डी भीष्म को मारने न पावे, दूसरा पक्ष पहले पक्ष के संकल्प को विफल कर देने पर तुला हुआ था। इस तनातनी मे योग दिये बिना अर्जुन कैसे रह सकते थे। अतएव उन पर यह दोषारोपण नहीं किया जा सकता कि उन्होंने धोखा देकर भीष्म पर चोट की। जो कुछ हुआ, डंके की चोट हुआ। इस प्रबन्ध का ज्ञान भीष्म को सोलहों आने था। वे चाहते तो इससे बचने का कुछ प्रबन्ध भी करते। किन्तु हमें तो ऐसा जान पड़ता है कि भीष्म अपने को बेचारी अम्बा के जीवन को नष्ट करने का दोषी मानने लगे होंगे। उसी के पीछे उन्हें अपने गुरु परशुरामजी से ऐसा युद्ध करना पड़ा था जिसमें गुरुजी बुरी तरह घायल हो गये थे। और कोई होता तो वैसी चोटें खाकर जीवित न बचता। फिर भीष्म को मारने में सफलता पाने का संकल्प करके अम्बा जीती ही चिता में जलकर भस्म हो गई थी। इन सब बातों से उस समय समाज में भीष्म की निन्दा भी हुई होगी। अब उन्होंने देखा कि जो एक बार मेरे प्राण लेने के लिए जीती ही जलकर भस्म हो चुकी है उसके हाथ से मरकर प्राण देने से बदनामी धुल सकती है। फिर इतनी बड़ी उम्र ही किस काम की जिसमें तुच्छ कामों के लिए ऐसी भारी जोखिमें उठानी पड़ें। और जीवित रहने की भी तो कोई अवधि रहनी चाहिए। इसी से उन्होंने मृत्यु का आलिङ्गन करने में ही कल्याण समझा होगा। मृत्यु तो उनकी इच्छा के अधीन थी। पिता से उन्हें ऐसा ही वर मिला था।

अश्वत्थामा

अश्वत्थामा का जन्म तपस्वी द्रोणाचार्य के यहाँ हुआ था। अतएव उसे वैसा सुख नहीं मिला जैसा सम्पन्न घरानों की सन्तान को मिलता है। बचपन में तो उसे पीने के लिए गाय का दूध तक नहीं मिलता था। जब बहलाने के लिए उसे चावल धोकर उनका सफ़ेद-सफ़ेद पानी पीने को दिया गया और वह उसे दूध समझ उछल-उछलकर दूसरे ऋषिकुमारों से कहने लगा कि मैंने दूध पिया है तब उसकी बड़ी भद्द हुई। साथी लड़के उसे चिढ़ाने लगे। किन्तु यह भाग्य की बात है कि जिसका बचपन ऐसे संकट में बीता उसी को युवावस्था में राजाओं की जैसी सम्पत्ति प्राप्त थी। अश्वत्थामा ने स्पष्ट कहा है कि मेरे यहाँ सोना-चाँदी, धन-दौलत, मणि-मोती भरे पड़े हैं। मुझे किसी चीज़ की कमी नहीं है। होती ही कैसे? द्रुपद का आधा राज्य द्रोणाचार्य ले ही चुके थे। फिर कौरव-दरबार से भी उन्हें ख़ासी आमदनी होती थी।

'अश्वत्थामा' नाम कुछ विचित्रता रखता है। बात यह है कि कृपी का पुत्र उत्पन्न होते ही अश्व (=घोड़े) की भाँति स्थाम (=शब्द) करने लगा—रोने लगा, इसी से उसका नाम अश्वत्थामा रख दिया गया। यह नाम श्रवण-सुखद नहीं है। सो फ़ौजी लोग तो भयानक होते ही हैं अतएव उनका नाम भयावना हो तो इसमें क्या आश्चर्य?

पितामह भीष्म ने अपने पक्ष के महारथियों का परिचय देते समय कहा था—"अश्वत्थामा महारथी हैं। वे धनुर्धारियों में श्रेष्ठ, विचित्र युद्ध करनेवाले और दृढ़ प्रहार करनेवाले हैं। उनके बाण उतनी ही दूर तक जाते हैं जितनी दूर अर्जुन के। मैं उनके बल-वीर्य का वर्णन कहाँ तक करूँगा। वे चाहें तो अस्त्र के प्रभाव से तीनों लोकों को भस्म कर दें। उनमें ऋषियों का क्रोध, तप और तेज है। द्रोणाचार्य ने कृपा करके उन्हें सभी अस्त्र सिखला दिये हैं। न तो पाण्डवों की सेना में कोई अश्वत्थामा के समान पराक्रमी और युद्ध-निपुण है, न कौरवों की सेना में ही। वे एक ही रथ से देवताओं तक की सेना को मार सकते हैं। वे इतने मोटे-ताज़े और मज़बूत हैं कि हाथ मारकर पहाड़ तक को फोड़ सकते हैं। युद्धक्षेत्र में तो वे साक्षात् यमराज जान पड़ते हैं। किन्तु उनमें एक दोष है। उनको अपना जीवन बहुत प्रिय है। मौत से डरने के कारण वे युद्ध से जी चुराते हैं। इससे न तो मैं उन्हें रथी मानता हूँ और न अतिरथी।"

अश्वत्थामा का स्वभाव खरा था। वह ताव में आकर जली-कटी सुनाने लगता था। किसी का लिहाज़ न करता था। उसने दो बार कर्ण को बुरी तरह फटकारा था। बात यह थी कि विराट की राजधानी पर हमला करते समय द्रोणाचार्य ने अपशकुनों का वर्णन करके कहा कि अर्जुन से पेश पाना कठिन है। इस पर कर्ण द्रोणाचार्य की बुराई करने लगा। इसी से क्रुद्ध होकर अश्वत्थामा ने कहा—"निर्दय दुर्योधन के सिवा कौन क्षत्रिय कपट के जुए से राज्य पाकर सन्तुष्ट हो सकता है? बहेलिये की तरह धोखेबाज़ी से धन-वैभव प्राप्त करके कौन अपनी बड़ाई चाहेगा? तुमने जिनका सर्वस्व छीन लिया है उन पाण्डवों में से किसी को आमने-सामने युद्ध में हराया भी है? किस युद्ध में पाण्डवों को परास्त करके तुम द्रौपदी को सभा में घसीट लाये थे? हे कर्ण! अर्जुन बल और पराक्रम में तुमसे कई बातों में श्रेष्ठ हैं।" फिर दुर्योधन से कहा कि तुम जैसे जुआ खेले, जिस तरह द्रौपदी को सभा मे घसीट लाये और जैसे तुमने इन्द्रप्रस्थ का राज्य हज़म किया वैसे ही अब अर्जुन का सामना करो। क्षत्रिय-धर्म में निपुण, चतुर जुआरी, तुम्हारा मामा ही दो दो हाथ दिखावे। और लोग चाहें तो युद्ध करें। मैं अर्जुन से लड़ने का नहीं। हाँ, विराट आवेंगे तो मैं उनको समझ लूँगा।

दूसरी बार, जब द्रोणाचार्य के सेनापतित्व में युद्ध हो रहा था तब, पाण्डवों की सेना को ज़ोर पकड़ते देख दुर्योधन ने कर्ण से कहा कि मित्रता का परिचय देने का यही उपयुक्त समय है—कुछ कर दिखाओ। इस पर कर्ण डींग हाकने लगा कि मैं अर्जुन को यों मारूँगा, त्यों मारूँगा। कृपाचार्य को उसकी ये बातें बुरी लगीं। उन्होंने उसे इसके लिए फटकारा तो वह उन्हीं को बुरा-भला कहने लगा। उसने कृपाचार्य से यहाँ तक कह डाला कि जो फिर कभी मुझको अप्रिय कटु वचन कहोगे तो तलवार से तुम्हारी जीभ काट लूँगा।

कृपाचार्य एक तो गुरु, दूसरे बूढ़े ब्राह्मण और तीसरे सेनापति थे। उनका इस तरह अपमान करना कर्ण को उचित नहीं था। अपने मामा का अपमान अश्वत्थामा से न देखा गया। उसने बिगड़कर कर्ण से कहा—"सूतपुत्र! तू बड़ा अधम है। अपने सामने किसी को कुछ समझता ही नहीं। अपने मुँह अपनी बड़ाई करता है। जयद्रथ के मारे जाते समय तेरी शूरता कहाँ भाग गई थी? उस समय तूने अर्जुन का सामना क्यों नहीं किया?" यों बहुत डाँट-फटकार बतलाकर

जब अश्वत्थामा तलवार तानकर कर्ण के मारने को झपटा तब स्वयं कृपाचार्य और दुर्योधन ने उसे पकड़कर बीच-बचाव किया। उस समय दुर्योधन ने कहा कि तुम, कर्ण, कृपाचार्य, द्रोणाचार्य, शल्य और शकुनि, बस इन्हीं पर तो मेरा दारमदार है। आपस में तुम्हें ऐसा न करना चाहिए।

द्रोणाचार्य जिस समय शस्त्र त्यागकर देह छोड़ने के लिए योग धारण करके प्रायोपविष्ट हो रहे थे उस समय धृष्टद्युम्न ने उनका सिर काट लिया। ऐसी दशा में अपने पिता के मारे जाने का अश्वत्थामा को बड़ा दुःख हुआ। यदि वे युद्ध करते हुए मारे जाते तो किसी को कुछ कष्ट न होता। युद्ध में कौन किसका लिहाज़ करता है? किन्तु अनुचित रीति से उनके मारे जाने के कारण अश्वत्थामा आग-बबूला हो गया। उसने क्रोधान्ध होकर पाण्डवों तथा पाञ्चालों का नाश कर डालने की प्रतिज्ञा की। दुर्योधन आदि ने उसे और भी उभाड़ा। अश्वत्थामा ने कहा कि मिथ्यावादी युधिष्ठिर ने बुरा किया। उन्होंने धोखा देकर मेरे पिता से शस्त्र-त्याग कराया है इस कारण पृथ्वी शीघ्र ही उनका रक्त पियेगी। नारायणास्त्र का प्रयोग मेरे सिवा और कोई नहीं जानता। आज मैं उसी अस्त्र के द्वारा शत्रुओं का संहार करूँगा। शत्रुओं के किये कुछ न होगा। बस, क्रुद्ध अश्वत्थामा ने उसी अस्त्र का प्रयोग कर दिया। इससे पाण्डवों की सेना में हाहाकार मच गया। इतने योद्धा मारे गये कि उनकी लाशों का पहाड़ जैसा ढेर लग गया।

इससे तनिक पहले पाण्डव-पक्ष के महारथियों में आपस में विवाद हो गया था। द्रोणाचार्य का इस तरह मारा जाना अर्जुन और सात्यकि आदि को अच्छा नहीं लगा था। इसके लिए उन लोगों ने धृष्टद्युम्न की निन्दा की तो उसने अपने कार्य का समर्थन करके उन लोगों के भी दोष दिखाये। बात यहाँ तक बढ़ी कि सात्यकि गदा तानकर धृष्टद्युम्न का सिर फोड़ने को झपटा। श्रीकृष्ण का संकेत पाते ही भीमसेन ने लपककर उसे किसी तरह रोका। इस तनातनी में इधर तो युद्ध का उत्साह कम हो गया और उधर अश्वत्थामा ने नारायणास्त्र द्वारा तहलका मचा दिया। यह देखकर युधिष्ठिर ने धृष्टद्युम्न से कहा कि तुम पाञ्चालों की सेना लेकर भाग जाओ; वृष्णि, अन्धक आदि वंशों के यादवों के साथ सात्यकि भी चले जायँ; श्रीकृष्ण अपनी रक्षा आप कर लेंगे और अन्यान्य सैनिक युद्ध बन्द कर दें। मैं भाइयों के साथ जलती हुई आग में भस्म हो जाऊँगा। मैंने झूठ बोलकर आचार्य का वध कराया है, इस कारण अर्जुन मेरे ऊपर रुष्ट है। इससे मैं अपनी जान देकर अर्जुन को सुखी करूँगा। भला आचार्य ने हमारे साथ क्या कम सलूक किया है? अनेक महारथियों ने अकेले अभिमन्यु को निहत्था करके आचार्य के आगे ही न मार डाला था? द्रौपदी की दुर्गति भी उन्हीं के आगे हुई थी। दुर्योधन के थक जाने पर आचार्य ने ही उसे अभेद्य कवच बाँधकर हम लोगों पर हमला करने को भेज दिया था। जयद्रथ की रक्षा करने में क्या उन्होंने कुछ उठा रक्खा था? मेरी विजय के लिए प्रयत्न करनेवाले सत्यजित आदि पाञ्चालों और उनके भाई-बन्धुओं के प्राण आचार्य ने ही ब्रह्मास्त्र चलाकर लिये थे। कौरवों ने जब हमें अधर्म-पूर्वक निकाल बाहर किया था तब भी आचार्य ने हमें सामना करने से रोका था। भला आचार्य ने हमारा कौन सा उपकार नहीं किया?

इधर तो क्रुद्ध युधिष्ठिर ये व्यंग्य-वचन कह रहे थे उधर श्रीकृष्ण ने इशारे से सैनिकों को युद्ध करने से रोककर कहा कि शस्त्रास्त्र रखकर वाहनों से उतर पड़ो। ऐसा करके पृथ्वी पर पड़ जाने

से ही इस मार से बच सकोगे। दूसरा उपाय नहीं है। यदि इस अस्त्र का सामना किया जायगा तो यह और भी प्रबल होगा।

सब को ऐसा करते देख भीमसेन क्रुद्ध होकर उन्हें युद्ध के लिए उत्साहित करने लगे। उन्होंने कहा—मैं बाण चलाकर, गदा मारकर इस अस्त्र को विफल कर दूँगा। डरने की कोई बात नहीं। सब लोग मेरा पराक्रम देखें। अर्जुन, तुम गाण्डीव धनुष को हाथ से अलग मत करना।

अर्जुन ने कहा कि गौ, ब्राह्मण और नारायणास्त्र के विरुद्ध गाण्डीव का मैं कभी उपयोग नहीं करता। मेरी ऐसी ही प्रतिज्ञा है। यह सुनकर भीमसेन और भी क्रुद्ध हो अश्वत्थामा की ओर लपके। उन्होंने बाणवर्षा से अश्वत्थामा के रथ को छिपा दिया। किन्तु इससे नारायणास्त्र और भी प्रचण्ड हो गया। तब श्रीकृष्ण और अर्जुन ने दौड़कर भीमसेन के हाथ से शस्त्र छीने और उनको पकड़कर ज़बर्दस्ती रथ से उतार लिया। ऐसा करने से नारायणास्त्र शान्त हो गया। पाण्डवों के सैनिकों का भी दम में दम आया। वे लोग फिर शत्रु का सामना करने लगे। यह देख दुर्योधन ने अश्वत्थामा से दुबारा नारायणास्त्र का प्रयोग करने को कहा तो उसने उत्तर दिया कि यह दुबारा नहीं चलाया जाता। दुबारा चला देने से चलानेवाला ही मर मिटता है। अस्तु, यह ठीक है कि अश्वत्थामा ने दुबारा नारायणास्त्र नहीं चलाया; किन्तु ऐसा घमासान युद्ध किया कि वीरों के छक्के छूट गये। इस दशा में भीमसेन और सात्यकि ने ही अश्वत्थामा को रोका और दो दो बार उसे बेहोश तक कर दिया। अन्त में उसने अमोघ आग्नेयास्त्र का प्रयोग करके श्रीकृष्ण और अर्जुन समेत समस्त योधाओं को भस्म कर देना चाहा। उस अस्त्र ने बात की बात में पाण्डवों की एक अक्षौहिणी सेना को भस्म कर दिया। यदि अर्जुन झटपट ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करके उस अस्त्र को शान्त न कर देते तो ग़ज़ब हो जाता। अपने अस्त्र के शान्त हो जाने से अश्वत्थामा को बड़ा खेद हुआ। वह युद्धक्षेत्र से चलता हुआ। उसे रास्ते में वेदव्यासजी ने समझाया कि धनुर्वेद की निन्दा मत करो। जैसे पहाड़ पर आँधी का ज़ोर नहीं चल सकता वैसे ही श्रीकृष्ण और अर्जुन को कौन मार सकता है! व्यासजी के उपदेश से अश्वत्थामा को कुछ शान्ति मिली।

दोनों ओर के योद्धाओं ने समवेत होकर भी जितनी सेना का संहार नहीं किया था उतनी सेना का संहार अकेले अश्वत्थामा ने रात को कुछ घण्टों में ही कर डाला। उसका यह कार्य बड़ा ही नृशंसतापूर्ण कहा जायगा। बात यह हुई कि पाण्डवों के सेनानायकों ने कौरव-दल को ऐसी मार मारी कि मैदान ही ख़ाली कर दिया। कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा एक ओर को भाग खड़े हुए। दुर्योधन ने भी समरभूमि में ठहरना ठीक न समझ द्वैपायन ह्रद में जाकर शरण ली। पता लगाकर वहाँ पहुँचकर पाण्डवों ने उसे युद्ध के लिए उभाड़ा। वीर पुरुष किसी की बात को बर्दाश्त नहीं कर सकता। दुर्योधन ने पानी से बाहर आकर भीमसेन से गदा-युद्ध किया। इस युद्ध मे भीमसेन ने उसकी टाँगें तोड़ डालीं। वह अधमरा पड़ा हुआ विलाप कर रहा था कि, कृतवर्मा और कृपाचार्य के साथ, वहाँ अश्वत्थामा जा पहुँचा। अपने राजा की दुर्गति देख सभी को बड़ा दुःख हुआ। वहीं पर क्रुद्ध होकर अश्वत्थामा ने पाण्डवों की बेहद बुराई करके उनका नाश कर डालने की प्रतिज्ञा की। डूबते को तिनके का सहारा मिल गया। वैसे तो दुर्योधन सब ओर से निराश हो चुका था, पर अश्वत्थामा

की बातें सुनते ही उसने कृपाचार्य से कहकर सेनापति-पद पर उसका अभिषेक करा दिया। अब सेना ही कहाँ थी जिसका अधिपति अश्वत्थामा बनाया गया! ख़ैर, वहाँ से बिदा होकर तीनों के तीनों जङ्गल में चले गये। न जाते तो पाण्डवों से मुठभेड़ हो जाने का अँदेशा था। वहाँ थके हुए कृतवर्मा और कृपाचार्य तो घोड़ों को खोलकर आराम करने लगे किन्तु अश्वत्थामा को नींद न आई। पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए वह उतावला हो रहा था। अकेले ही उसे शत्रु का विनाश करने को जाते देख वे दोनों भी साथ हो लिये। जिस बरगद के पेड़ के नीचे ये लोग ठहरे हुए थे उस पर रात को एक उल्लू पक्षी आया और अपने शत्रु सोते हुए कौओं को दुर्गति के साथ मार-मारकर फेंकने लगा। उसके इस कार्य से अश्वत्थामा ने यह सबक़ लिया कि असावधान, थके और सोते हुए शत्रुओं का संहार करके बदला ले लेना चाहिए। आमने-सामने लड़कर उनसे पेश पाने की आशा नहीं है। उसके इस विचार का विरोध कृपाचार्य और कृतवर्मा ने किया तो वह उनसे उलझ बैठा। अन्त में तीनों के तीनों पाण्डवों के शिविर के पास पहुँचे। अश्वत्थामा तो एक ओर से छावनी के भीतर जाकर मार-काट करने लगा और कृपाचार्य तथा कृतवर्मा बाहर ही रहकर भागनेवाले निहत्थों पर हाथ साफ़ करने लगे। अन्त में सब का सफाया हो जाने पर इन दोनों ने छावनी में दो ओर से आग लगाकर अपनी वीरता का परिचय दिया। छावनी के भीतर सब लोग सो रहे थे। किसे ख़बर थी कि चोर की तरह घुसकर कोई उनकी हत्या करेगा। अश्वत्थामा ने सोते हुए धृष्टद्युम्न को लात मारकर जगा दिया और फिर गला दबाकर मार डाला। धृष्टद्युम्न ने कहा कि मारना है तो शस्त्र से मार जिससे वीरलोक मिले। इस पर अश्वत्थामा ने कहा कि तुझे उस लोक से वञ्चित करने के लिए ही कुत्ते की मौत मार रहा हूँ। इस तरह उसने बहुत से लोगों को गला घोंटकर मारा और बहुतों के सिर काट डाले। द्रौपदी के पाँचों पुत्रों को भी उसने मार डाला। वह जब शिविर में घुसा तब सब के सो जाने के कारण सन्नाटा था और जिस समय वह वहाँ से निकला उस समय किसी के जीवित न रह जाने के कारण सन्नाटा था। उस रात को पाँचों पाण्डव, श्रीकृष्ण और सात्यकि डेरों में नहीं थे। बात यह हुई कि कौरवों का पराभव हो जाने पर जब पाण्डवों ने कौरवों के शिविर पर अधिकार करके अपार कोष, सोना-चाँदी, रत्न, आभूषण, वस्त्र और दास-दासी आदि पर क़ब्ज़ा कर लिया और सब लोग आराम करने लगे तब श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को सलाह दी कि हम लोगों को आज कल्याण-कामना से शिविर के बाहर रात बितानी चाहिए। इस पर उन सातों आदमियों ने सरस्वती की शाखा ओघवती नदी के तट पर जाकर वह रात बिताई। यदि वे लोग शिविर में होते और अश्वत्थामा की चलती तो क्या वह उन्हें छोड़ देता!

शिविर के हत्याकाण्ड के बाद अश्वत्थामा, अपने साथियों के साथ, अधमरे पड़े दुर्योधन के पास पहुँचा। उसने ज़ोर से कहा—दुर्योधन! अगर तुम जीते हो तो सुखद संवाद सुनो। पाँचों पाण्डवों, श्रीकृष्ण और सात्यकि के सिवा मैंने सब को यमपुर का पाहुना बना दिया। उस पक्ष में मनुष्यों की कौन कहे, पशु भी जीवित नहीं बचे। मैंने तुम्हारा भरपूर बदला ले लिया।

यह सुनकर दुर्योधन को चेत हो आया। उसने कहा कि तुमने वह काम कर दिखाया है जो तुम्हारे पिता द्रोण, भीष्म, कर्ण आदि भी नहीं कर सके। नीच धृष्टद्युम्न और शिखण्डी के मारे

जाने की ख़बर पाकर मैं इन्द्र के समान सुखी हूँ। तुम्हारा भला हो; तुम सुखी रहो। अब हम लोग स्वर्ग में मिलेंगे। बस, दुर्योधन के प्राण-पखेरू उड़ गये।

भाई-बन्धुओं और अपने पाँचों बेटों के मारे जाने की ख़बर पाते ही द्रौपदी व्याकुल हो गई। वह युधिष्ठिर के पास आकर नीचे गिरने को थी कि भीमसेन ने सँभाल लिया। उसने बहुत विलाप करके पाण्डवों से कहा कि यदि पापी अश्वत्थामा मारा न जायगा तो मैं अन्न-जल त्यागकर प्राण छोड़ दूँगी। उसके माथे मे पैदायशी महामणि है। उसके पाने से मुझे उसके मारे जाने का विश्वास हो जायगा। यह सब सुनकर भीमसेन अश्वत्थामा का पीछा करने को दौड़े। नकुल उनका रथ हाँकने लगे। उनके चले जाने पर श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा कि आप भीमसेन की रक्षा का उपाय करें। अश्वत्थामा बड़ा पापी है। वह उस 'ब्रह्मशिर' अस्त्र को चलाना जानता है जिससे क्षण भर में सारा भूमण्डल भस्म हो सकता है। द्रोणाचार्यजी ने यह अस्त्र अपने प्रिय शिष्य अर्जुन को दिया था। इसकी ख़बर पाकर अश्वत्थामा उदास रहने लगा। अन्त में उसका आग्रह देखकर उसे भी उन्होंने वह अस्त्र सिखा दिया और विशेष रूप से सावधान कर दिया कि संकट पड़ने पर ही इससे काम लेना; कभी मनुष्यों पर इसका प्रयोग न करना। द्रोणाचार्यजी अश्वत्थामा का चञ्चल स्वभाव देख प्रसन्न नहीं रहते थे। पर करते क्या, था तो वह पुत्र ही। आप लोगों के वनवास के समय यह एक बार द्वारका में पहुँचा और मुझसे कहने लगा—"पिताजी ने महर्षि अगस्त्य से जो ब्रह्मशिर अस्त्र प्राप्त किया है उसे मैंने सीख लिया है। उसके बदले में मुझे अपना सुदर्शन चक्र दे दो।" मैंने उत्तर दिया—"मुझे तुम्हारे अस्त्र की आवश्यकता नहीं। मेरे धनुष, शक्ति, चक्र और गदा में से जिसकी तुम्हें ज़रूरत हो, ले लो।" सुदर्शन चक्र लोहे का है, उसमें एक हज़ार आरे हैं। वह वज्र जैसा कठोर है। उसको अश्वत्थामा बहुत ज़ोर लगाने पर भी उठा न सका। इससे वह बहुत ही उदास हुआ। अन्त में घोड़े और धन-रत्न आदि उपहार में पाकर वह द्वारका से चला गया। वह दुष्ट मेरा चक्र लेकर मुझसे ही भिड़ना चाहता था। वह बड़ा ही क्रूर और चञ्चल है। उससे भीमसेन की रक्षा करना आवश्यक है।

अब रथ पर चढ़कर श्रीकृष्ण के साथ अर्जुन और युधिष्ठिर रवाना हुए। इन लोगों के रोकने से भीम लौटे तो नहीं, उलटे और तेज़ी से आगे बढ़कर गङ्गा-किनारे पहुँच गये। जहाँ ऋषियों के बीच व्यासजी बैठे थे वहीं देह में घी चुपड़े और कुश-चीर धारण किये अश्वत्थामा भी बैठा था। उसको देखते ही भीमसेन ने धनुष पर बाण चढ़ाया। अश्वत्थामा की दृष्टि श्रीकृष्ण, अर्जुन और युधिष्ठिर पर भी पड़ी। प्राणों को संकट में देख उसने ब्रह्मशिर अस्त्र का ध्यान करके बायें हाथ से एक सेंठा उखाड़कर उसी पर दिव्य अस्त्र का प्रयोग किया और 'कोई भी पाण्डव न बचने पावे' कहकर उसे चला दिया। उस अस्त्र के चलाते ही ऐसी आग प्रकट हुई जो तीनों लोकों को भी जला सकती थी।

इस संकट से बचने का एक ही उपाय था। श्रीकृष्ण के कहने से अर्जुन ने उसी को किया। वे चटपट धनुष-बाण लेकर रथ से कूद पड़े। उन्होंने अश्वत्थामा के लिए, अपने लिए और अपने भाइयों के लिए 'स्वस्ति' कहकर, देवताओं और गुरुओं को प्रणाम करके, अस्त्र से ही अस्त्र का तेज शान्त कर देने के लिए ब्रह्मशिर अस्त्र का प्रयोग कर दिया। यह लोकनाशक घटना देखते ही देवर्षि

नारद और व्यासजी उन दोनों अस्त्रों के प्रभाव-क्षेत्र के बीच में खड़े हो गये। आशय यह था कि दोनों योद्धा अपने-अपने अस्त्रों का उपसंहार कर लें जिससे संसार की रक्षा हो जाय। उक्त दोनों महात्माओं की तो किसी अस्त्र से कुछ हानि हो ही नहीं सकती थी। अस्तु, दोनों मुनियों पर दृष्टि पड़ते ही अर्जुन ने तुरन्त अपने दिव्य अस्त्र को शान्त कर दिया। उन्होंने कहा कि भगवन्, मैंने तो अपने पक्ष की रक्षा के लिए ही इस अस्त्र का प्रयोग किया था। इसे लौटा लेने से अब अश्वत्थामा के अस्त्र का तेज हम लोगों को भस्म कर देगा। बतलाइए, अब क्या किया जाय।

अस्त्र का चलाना तो अश्वत्थामा जानता था, किन्तु लौटाने की विधि उसे मालूम न थी। इसी से गिड़गिड़ाकर उसने व्यासजी से कहा कि मैं अस्त्र को न लौटाऊँगा। देखिए, अभी पाण्डवों का ढेर हुआ जाता है। ये लोग बड़े पापी हैं। व्यासजी ने उसे समझाया कि देख, अर्जुन ने तेरे प्राण लेने को अस्त्र का प्रयोग नहीं किया। धर्मात्मा पाण्डवों को तू क्यों मारना चाहता है ? जिस राज्य में दिव्य अस्त्र के द्वारा ब्रह्मशिर अस्त्र निष्फल किया जाता है वहाँ बारह वर्ष तक पानी नहीं बरसता। इसी से अर्जुन, समर्थ होने पर भी, तेरे अस्त्र को नष्ट नहीं करते। पाण्डवों की, अपनी और देश की भलाई के लिए तू अपना अस्त्र लौटा ले। तू अपने मस्तक की मणि देकर राजा युधिष्ठिर से समझौता कर ले।

अश्वत्थामा ने कहा—"भगवन्, इस मणि के जोड़ की मणि संसार में नहीं है। यह पास में हो तो शस्त्र, रोग, भूख-प्यास आदि की पीड़ा नहीं होती। देवता, दानव, नाग, राक्षस और चोर आदि भी नहीं सताते। मैं इसे कभी न देता; पर आपकी बात को टाल नहीं सकता। यह मणि रक्खी है। किन्तु यह अस्त्र उत्तरा के गर्भ पर अवश्य गिरेगा। उसमें पाण्डवों का वंशधर मौजूद है।" व्यासजी क्या करते! उन्होने कहा कि अब पाण्डवों के प्राण लेने की चेष्टा न करना।

सब देख-सुनकर श्रीकृष्ण ने कहा—अश्वत्थामा, तुम्हारा दिव्य अस्त्र अपना काम कर ले। गर्भ का बालक मरा हुआ ही उत्पन्न हो; किन्तु फिर भी वह जी उठेगा और साठ वर्ष तक राज्य करेगा। कौरव-वंश के परिक्षीण होने पर उसके उत्पन्न होने के कारण उसका नाम परिक्षित् होगा। कृपाचार्य उसको धनुर्वेद सिखावेंगे। किन्तु तुम्हें अपनी करनी का फल भोगना पड़ेगा। तीन हज़ार वर्ष तक तुम्हें निर्जन देशों में अकेले भटकना पड़ेगा। बात करने तक को कोई न मिलेगा। तुम्हारी देह से पीब और रक्त की दुर्गन्ध निकला करेगी—तुमको कोढ़ हो जायगा। तुम्हें तरह-तरह की व्याधियाँ घेरे रहेंगी।

व्यासजी ने कहा—अश्वत्थामा ! ले, हमारी बात न मानने का फल भोग। कुलीन ब्राह्मण होकर तूने जैसा किया वैसा पाया। एक तो ब्राह्मण होकर क्षत्रिय का पेशा किया और उस पर भी ऐसा अधर्म ! श्रीकृष्ण की बात टल नहीं सकती।

पाण्डवों को मणि सौंपकर अश्वत्थामा बहुत ही उदास होकर वन की ओर चला गया। कहते हैं, कभी-कभी सतपुड़ा पहाड़ के जङ्गलों से निकलकर एक दीन-हीन जटाधारी सन्ध्या समय बस्ती में तेल माँगता पाया जाता है। वह बहुत ही बुड्ढा है। उसके मस्तक में ऐसा घाव है जो कभी भरता ही नहीं। उसी में लगाने को उसे तेल की ज़रूरत होती है।

भीष्म पितामह प्रधान सेनापति थे। वे एक-एक योद्धा की नस-नस को जानते थे। उन्होंने अश्वत्थामा के गुणों का वर्णन करके उसे सर्वश्रेष्ठ योद्धा माना है। उन्हें उसमें केवल एक दोष

दिखाई पड़ा है। वह है प्राणों का मोह। सो सिर को हथेली पर लिये कौन फिरता है? प्राण ऐसी वस्तु नहीं है जिसकी अवहेला की जाय। हमें तो ऐसा जान पड़ता है कि प्रधान सेनापति ने किसी बात से कुढ़कर ही अश्वत्थामा के सम्बन्ध में ऐसी सम्मति स्थिर कर लीथी। कारण यह है कि किसी युद्ध में अश्वत्थामा ने ऐसा काम नहीं किया जो उसकी वीरता के उपयुक्त न हो। वह बराबर प्राणों की ममता छोड़कर मार-काट करता रहा है और बुरी तरह घायल होने पर ही समर-भूमि से हटा है। उसने पाण्डवों की सेना का बेतरह संहार किया और भीमसेन तथा सात्यकि जैसे वीरों तक को बाण मार-मारकर मूर्च्छित कर दिया है। उसके अस्त्र-प्रयोग के आगे तो बड़ों-बड़ों की बुद्धि काम न देती थी। एक अर्जुन ही उसके मुक़ाबले में ठहर सकते थे। युद्ध से पहले दोनों में ख़ासी मित्रता थी। युद्ध की ख़बरें सुनते समय धृतराष्ट्र ने यह बात पूछी थी कि वे दोनों वीर पुरानी मित्रता को कैसे भूले होंगे। बात यह थी कि द्रोणाचार्य अर्जुन को बहुत मानते थे और कभी-कभी तो ऐसा हुआ कि उन्होंने कोई बढ़िया अस्त्र अर्जुन को ही सिखला दिया। पीछे पता लगने पर अश्वत्थामा ने रो-गाकर बाप से उसे पाया। अश्वत्थामा में भलमनसाहत न थी, इसी से द्रोणाचार्यजी उसकी ओर से खिन्न रहते थे। कोई बढ़िया अस्त्र सिखाते समय उन्हें यह शंका रहती थी कि कहीं यह इसका दुरुपयोग न कर बैठे। उनकी शङ्का निर्मूल न थी। अन्त में अश्वत्थामा ने वही करके अपने वंश को कलङ्कित किया। यदि अश्वत्थामा में ब्राह्मणोचित धैर्य होता, यदि वह विवेक को हाथ से न जाने देता, तो सचमुच वह अपनी कोटि का एक ही वीर था। किन्तु उसने अपनी अस्त्र-शिक्षा और शक्ति का पूरा-पूरा दुरुपयोग किया। उसे अपने पिता से प्रेम था तो उनके सन्निकट रहकर ही युद्ध करना चाहिए था जिसमें उन्हें उसके जीवन के संबंध में किसी प्रकार की शंका ही न होती। और यदि उसे पिता की मृत्यु का बदला लेना था तो सामने जमकर लोहा लेता—या तो शत्रु को मारता या उसके हाथों मरकर वीरलोक को जाता। किन्तु उसने यह कुछ न करके सोते हुओं की हत्या की, बच्चों के गले काटे, छावनी में आग लगवाई और पशुओं तक के प्राण लिये। ऐसा निष्ठुरता-पूर्ण कार्य तो क्रूर क्षत्रिय भी नहीं करते। आख़िर उसे कुछ अपने ब्राह्मणत्व का भी तो विचार रखना चाहिए था। पर बदला लेने के फेर में पड़कर वह अपने सब गुणों को खो बैठा। कठिन अवसर उपस्थित होने पर जो न डिगे वही तो धीर है; यों शान्ति के समय कौन धीर नहीं होता?

किन्तु अश्वत्थामा को ही किस बिरते पर दोष दिया जाय? आज जो लोग अपने को सबसे अधिक सभ्य, सुशिक्षित, बुद्धिमान्, दयालु, दानी और आविष्कारक समझते हैं वे क्या अश्वत्थामा की अपेक्षा कम क्रूरता के काम करते हैं? क्या वे निहत्थे ग्रामवासियों तक पर बम के गोलों की वर्षा नहीं करते? क्या वे ज़हरीली गैस का प्रयोग करके असंख्य जनता को अपाहिज़ नहीं बना देते? क्या वे क़त्ले-आम करना बुरा समझते हैं? क्या वे संसार को धोखा देने के लिए झूठे समाचार नहीं फैलाते? अश्वत्थामा ने उस अतीत युग में जो कुछ किया था उससे कहीं अधिक अत्याचार आज के सभ्य राष्ट्र किया करते हैं और फिर भी अपने कार्यों का समर्थन करते कुण्ठित नहीं होते। स्वार्थ सब कुछ करा लेता है। 'स्वार्थाय तुभ्यं नमः'।

उत्तर

यह राजा विराट का पुत्र था। इसकी बहन का नाम उत्तरा था जो अर्जुन के बेटे अभिमन्यु को ब्याही गई थी। पाण्डवों ने, नाम और रूप बदल-बदलकर, अपने अज्ञातवास का समय राजा विराट के यहाँ बिताया था। वह समय जब पूरा हो रहा था तब सुशर्मा ने राजा विराट के गोधन को हरण करने के लिए छापा मारा। उससे युद्ध करने के लिए राजा विराट के अपनी सेना लेकर चले जाने पर दूसरी ओर से भी आक्रमण हो गया। उस समय रनिवास में उत्तर कुमार ने अपनी वीरता की बड़ी डींग हाँकी। उसने कहा कि यदि मैं सुयोग्य सारथि पा जाता तो अकेला होने पर भी शत्रु के छक्के छुड़ा देता। मेरे सदृश योद्धा पृथ्वी पर दूसरा नहीं है, इत्यादि।

उत्तर की आत्मश्लाघा सैरन्ध्री बनी हुई द्रौपदी को अच्छी न लगी। उसने बृहन्नला (हिजड़ा बने हुए अर्जुन ने अपना यही नाम रख लिया था) को उत्तर का सारथ्य करने के लिए राज़ी करके उत्तर से इसके लिए प्रस्ताव किया। उत्तर ने पहले तो कहा कि हिजड़े को युद्धभूमि में जाने का साहस नहीं हो सकता; किन्तु सैरन्ध्री के बृहन्नला की प्रशंसा करने पर वह तैयार हो गया। राजकुमारी उत्तरा के कहने से बृहन्नला ने सारथि बनना स्वीकार कर लिया। उस समय उत्तर के दिये हुए कवच आदि को बृहन्नला ने यह दिखाने के लिए उलटा-पलटा पहनने का उपक्रम किया जिससे विदित हो कि उसके लिए यह काम बिलकुल नया है। यह देखकर उत्तरा और अन्त:पुर की अन्य स्त्रियों के कौतुक का ठिकाना न रहा। इसके पश्चात् रथ के जोते जाने पर जब उत्तर युद्धभूमि में जाने के लिए रवाना हुआ तब उत्तरा ने कहा कि भीष्म, द्रोण आदि महारथियों को परास्त करने पर उनके उत्तरीय वस्त्र लेते आना; मैं उन वस्त्रों की गुड़ियाँ बनाऊँगी।

नगरी से बाहर निकलकर उत्तर ने दूर से शत्रुसेना देखी तो उसके छक्के छूट गये। उसने गिड़गिड़ाकर बृहन्नला से कहा कि रथ को राजधानी में लौटा ले चलो। मैं युद्ध न कर सकूँगा। बृहन्नला के रोकने पर वह जब रथ से कूदकर भाग खड़ा हुआ तब बृहन्नला उसे पकड़ने को रथ खड़ा करके दौड़ा। उस समय बृहन्नला का केशपाश पीठ पर लटक रहा था, ओढ़नी अस्तव्यस्त हो रही थी और उसकी चाल स्त्रियों जैसी थी। यह दृश्य देखकर कौरव सैनिक हँसी के मारे लोट-पोट हो गये। किसी-किसी को सन्देह हो गया कि यह बृहन्नला स्वयं अर्जुन है। अन्त में बृहन्नला उत्तर को इस शर्त पर लौटा लाया कि वह रथ हाँके और बृहन्नला युद्ध करे। रास्ते में शमी वृक्ष के ऊपर रक्खे हुए अपने धनुष-बाण और कवच आदि उत्तर से निकलवाकर बृहन्नला ने पहने और ऐसा घनघोर युद्ध किया कि कौरवों के छक्के छूट गये। शत्रुओं के बेहोश हो जाने पर बृहन्नला ने उत्तर के द्वारा उन लोगों के उत्तरीय वस्त्र, उत्तरा को देने के लिए, उतरवा लिये। लौटने पर बृहन्नला ने उत्तर से कह दिया कि अभी किसी को हमारा प्रकृत परिचय न देकर इस विजय को अपनी ही बतलाना। राजा विराट अपने कुमार का विजय-संवाद सुनकर फूले नहीं समाये। पर कङ्कनामधारी युधिष्ठिर ने जब इस कार्य को उत्तर कुमार का न माना तो राजा ने क्रुद्ध होकर उनके मुँह में पाँसे दे मारे। इससे कङ्क के मुँह से रक्त गिरने लगा। उस समय सैरन्ध्री ने लपककर उनके मुँह से गिरते हुए रक्त को एक बर्तन में ले लिया। यदि वह ऐसा न करती तो एक नया बखेड़ा खड़ा हो जाता।

अन्त में, असल बात प्रकट होने पर, राजा विराट ने सभी पाण्डवों से क्षमा माँगी और उनके साथ रिश्तेदारी कर ली। बिना रिश्तेदारी किये लोकलज्जा से उनकी रक्षा नहीं हो सकती थी।

वीर पुरुषों को और विशाल वाहिनी को देखने से उत्तर का डरकर भाग खड़ा होना यह सूचित करता है कि उसने इससे पहले कभी समरभूमि में पैर नहीं रक्खा था और यदि कोई छोटा-मोटा युद्ध देखा भी हो तो अभी उसका धड़का नहीं खुला था। रनिवास में जो उसने अपनी प्रशंसा आप की थी उसका एक कारण तो लड़कपन हो सकता है और दूसरा कारण है अपनी प्रशंसा के गीत सुना-सुनाकर स्वजनों को विस्मित कर देना। उस बेचारे को यह पता कब था कि नाचने-गाने का पेशा करनेवाला बृहन्नला रथ हाँकने को तैयार हो जायगा और डींग मारने का फल हाथोंहाथ मिल जायगा।

आगे चलकर जब कुरुक्षेत्र मे महाभारत का युद्ध हुआ तब उत्तर कुमार ने किसी प्रकार की कायरता प्रकट नहीं की। उसने डटकर युद्ध किया और प्रख्यात योद्धा मद्रराज शल्य के साथ घमासान युद्ध करके पहले दिन के युद्ध में वीरगति प्राप्त की।

उत्तरा

यह राजकुमारी मत्स्य-महीप विराट की रानी सुदेष्णा की पुत्री थी। इसके भाई का नाम उत्तर था। अपने अज्ञातवास के समय अर्जुन ने बृहन्नला नाम रखकर अपने को नृत्य-गीत-कुशल हिजड़ा बतलाया। वे राजा विराट के रनिवास में, इस राजकुमारी को नाचना-गाना आदि सिखाने के लिए, रख लिये गये। रनिवास में भर्ती करने से पहले, राजा की आज्ञा पाकर, स्त्रियों ने हर तरह से परीक्षा करके उन्हें हिजड़ा ही पाया। वहाँ वे राजकुमारी उत्तरा को नाचने-गाने की शिक्षा बड़े अच्छे ढँग से देने लगे। उनके व्यवहार से राजकुमारी उन पर सन्तुष्ट रहती थी।

समय पूरा होने पर जब मालूम हुआ कि यह हिजड़ा नहीं, साक्षात् वीरवर अर्जुन हैं तब विराट बड़ी चिन्ता में पड़े। यह ठीक है कि उर्वशी के शाप के कारण अर्जुन, एक विशिष्ट अवधि के लिए, सोलहों आने नपुसक हो गये थे और उनके नपुंसकत्व की जाँच भी कर ली गई थी फिर भी भला-बुरा कहने से संसार को कौन रोक सकता था? अतएव विराट ने सोचा कि जब अर्जुन से उत्तरा की कोई बात छिपी नहीं रही है तब भलाई इसी में है कि वह उन्हीं को सौंप दी जाय। ऐसा करने से किसी को निन्दा करने के लिए गुंजाइश ही न रह जायगी। मत्स्य-नरेश का यह प्रस्ताव सुनकर अर्जुन बड़ी कठिनाई में पड़े। यदि उत्तरा को पत्नी बनाये लेते हैं तो विराट को जिस बात की आशङ्का थी उस पर संसार मुहर लगाये देता है और यदि अस्वीकार करते हैं तो विराट को अपनी राजकुमारी के अनुरूप वर मिलने की कठिनाई है। इस संकट से बचने का बढ़िया उपाय ढूँढ़ निकाला गया। अर्जुन ने कहा कि महाराज, मैंने उत्तरा को नृत्य-गीत आदि सिखाया है। फलतः वह मेरी शिष्या है। शिक्षा प्राप्त करते समय वह भी मेरे प्रति गुरुभाव प्रदर्शित करती रही है। अतएव उसको अपनी पत्नी बनाना मेरे लिए सम्भव नहीं। एक बात हो सकती है। उसका विवाह आप मेरे बेटे अभिमन्यु के साथ कर दें। यही हुआ। युद्ध में अभिमन्यु के वीरगति पाते समय उत्तरा गर्भवती थी। यदि वह गर्भवती न होती तो अवश्य ही पति के साथ सती हो जाती। बेचारी

को वैधव्य-क्लेश सहने के अतिरिक्त एक और घोर कष्ट सहना पड़ा। बात यह थी कि अश्वत्थामा का जब कोई प्रयत्न सफल नहीं हुआ तब उसने खीझकर इषीकास्त्र का प्रयोग इसलिए किया जिसमें पाण्डवों का वंश निर्मूल हो जाय। पाण्डवों की और सन्तानों को तो वह रात को, सब के सो जाने पर, मार ही चुका था। अब इसी उत्तरा के गर्भ का सब को भरोसा था सो अश्वत्थामा ने अस्त्र प्रयोग करके इसको भी निर्जीव कर डाला। पाण्डवों के यहाँ हाहाकार मच गया। किन्तु उस समय राजधानी में श्रीकृष्ण मौजूद थे। उन्होंने अपने अलौकिक प्रभाव से बालक को जीवित कर दिया। यह परिक्षित् नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसी बालक से पाण्डवों का वंश चला।

राजकुमारियों तक को अन्य शिक्षा के साथ-साथ नाचने-गाने की भी आवश्यक शिक्षा दी जाती थी। इस शिक्षा से वे अपना मनोरञ्जन तो कर ही सकती थीं, साथ ही पारिवारिक मनोविनोद के भी उपयोग में आती थीं।

धनी हो चाहे निर्धन, प्रभावशाली हो अथवा साधारण श्रेणी का, समाज का भय सबको रहता था। यह भय न होता तो सम्भवतः उत्तरा का विवाह पाण्डवों के वंश में न होकर किसी अन्य परिवार में होता। वास्तव में उस समय पाण्डव लोग सङ्कट सह रहे थे। न तो उनके पास धन-दौलत थी और न राज-पाट ही। उनसे रिश्तेदारी करने में मत्स्य-नरेश का, लोकलाज से बचने के सिवा, और कौन सा हित था? हाँ, पाण्डवों को अवश्य लाभ हुआ। उन्हें एक प्रबल सहायक मिला और बहुत सी सम्पत्ति भी प्राप्त हुई।

कर्ण

राजा कुन्तिभोज ने एक लड़की को अपनी बेटी की तरह पाला-पोसा था। यह लड़की कुन्ती नाम से प्रसिद्ध हुई। कर्ण इसी का पुत्र था। वह इसका विवाह होने से पहले ही उत्पन्न हुआ था।

कर्ण के जन्म की कथा बड़ी विचित्र है। एक बार राजा कुन्तिभोज के यहाँ महर्षि दुर्वासा पधारे। उनकी सेवा-शुश्रूषा कुन्ती ने इतनी अच्छी तरह की कि उससे प्रसन्न होकर उन्होंने कुन्ती को यह वर दिया कि तुम जिस देवता को, मन्त्र पढ़कर, बुलाओगी वही आ जायगा और तुमको सन्तान प्रदान करेगा। उन्होंने देवता को बुलाने का मन्त्र भी उसे सिखा दिया। कुन्ती ने, लड़कपन के कारण, इस मन्त्र की परीक्षा करने के लिए एक दिन सूर्यनारायण का आवाहन किया तो वे उसी दम पास आ गये। उन्हीं के सहवास से कर्ण का जन्म हुआ था। इस घटना को छिपाने के लिए कुन्ती ने तुरन्त के उपजे हुए शिशु को एक पिटारी में रखकर अश्व नाम की नदी में बहा दिया। इस बहती हुई पिटारी को राधा के स्वामी अधिरथ ने देखकर उठाया तो उसमें एक सुन्दर सलोना बालक देख पड़ा। वे दयार्द्र होकर उसे अपने घर ले गये। उन्होंने उसका लालन-पालन अपनी सन्तान की भाँति किया। बालक के शरीर पर कवच-कुण्डल देख उसका नाम उन्होंने वसुषेण रक्खा। वसु धन को कहते हैं और कवच-कुण्डल आदि धन उस बच्चे के साथ था, इसी से यह नाम रक्खा गया। वसुषेण जब सयाना हुआ तब उसने अनेक शास्त्रों का अध्ययन किया।

कर्ण प्रात:काल से लेकर सन्ध्यासमय तक सूर्य की उपासना किया करता था। उपासना करते समय उसके पास जाकर कोई ब्राह्मण कुछ माँगता था तो वह उसका मनोरथ पूर्ण कर देता था। उसके सदृश दानी संसार मे दूसरा नहीं हुआ। एक बार इन्द्र ने, अर्जुन के हित के लिए, ब्राह्मण का वेष बनाकर कर्ण के पास जाकर उसके सहज कवच-कुण्डल माँगे। ध्यान रहे कि सूर्य नारायण इससे पहले जाकर उससे इन चीज़ों के न देने का आग्रह कर गये थे। किन्तु दान करने से जो हाथ सिकोड़ ले वह दानी ही काहे का! याचना होते ही कर्ण ने शरीर पर से कतरकर कवच और कुण्डलों का दान कर दिया। ऐसा साहस करने के कारण अब कर्ण का नाम वैकर्तन हो गया। ब्राह्मण-वेष-धारी इन्द्र ने दान लेकर कर्ण को एक-पुरुषघातिनी अमोघ 'शक्ति' बदले में दी। आगे चलकर महाभारत के युद्ध में इस शक्ति ने बड़ा काम दिया। भीमसेन का पुत्र महा-वीर घटोत्कच इसी शक्ति के प्रहार से मारा गया।

महाराज धृतराष्ट्र की आज्ञा से जिस समय कौरव-पाण्डवों की अस्त्रशिक्षा की परीक्षा के लिए बड़ी धूमधाम के साथ जलसा किया गया और सबकी परीक्षा हो जाने पर अन्त में अर्जुन अपनी अस्त्रशिक्षा के कौशल दिखलाकर, लोगों को अचम्भे में डालकर, रङ्गभूमि से जा रहे थे उसी समय कर्ण वहाँ पहुँचा। उसने अर्जुन को ललकारकर कहा कि तुमने जैसे खेल दिखलाये हैं वैसे मैं भी दिखला सकता हूँ। तुमने कोई अनोखा काम नहीं कर दिखाया है। कर्ण की इन बातों से दुर्योधन को तो प्रसन्नता हुई किन्तु अर्जुन को झेंप के साथ-साथ क्रोध भी हुआ। अब द्रोणाचार्य की अनुमति मिलने पर कर्ण ने वे सब काम बड़ी सफ़ाई से कर दिखाये जिन्हें थोड़ी देर पहले दिखलाकर अर्जुन ने दर्शकों से वाहवाही लूटी थी। इससे अत्यन्त प्रसन्न हो रहे दुर्योधन ने कर्ण को हृदय से लगा लिया। शह पाकर कर्ण ने अर्जुन के साथ द्वन्द्व-युद्ध करने की ठानी तो अर्जुन तैयार होने लगे। यह रङ्ग में भङ्ग होते देख नीति-कुशल कृपाचार्यजी ने एक युक्ति से काम लिया। उन्होंने कहा कि राजकुमार के साथ राजकुमार ही युद्ध कर सकता है। जिसके गोत्र-कुल आदि का कुछ ठिकाना न हो वह राजकुमार से द्वन्द्व-युद्ध करने का अधिकारी नहीं। बेचारा कर्ण इस समस्या को कैसे हल करता, वह हक्का-बक्का सा मुँह ताकता रह गया। इस दुर्गति से बचाने के लिए दुर्योधन ने उसको, उस जलसे में ही, अङ्ग-राज्य का अधिकारी बना दिया। अब उसे राजकुमार के साथ द्वन्द्व-युद्ध करने में कोई रुकावट न रही। किन्तु इतना सब होने में शाम हो गई और यह झगड़ा इस दिन यहीं खतम हो गया। इस घटना से कर्ण और अर्जुन के बीच लाग-डाँट और भी बढ़ गई और वह कर्ण के जीवन-पर्यन्त बनी रही।

इसके कुछ समय पश्चात् द्रौपदी का स्वयंवर हुआ। वहाँ ब्राह्मण-वेष-धारी अर्जुन के मत्स्य-वेध करने पर जो कोलाहल मचा उसमे अर्जुन से कर्ण को पराजित होना पड़ा। द्रोणाचार्यजी ने कर्ण को ब्रह्मास्त्र नहीं सिखाया था इसलिए वह परशुरामजी के पास उक्त अस्त्र सीखने को पहुँचा। उसने वहाँ अपने को ब्राह्मण बतलाकर वह अस्त्र सीख तो लिया किन्तु अन्त मे भण्डा फूटने पर सब बातें जानकर परशुरामजी ने उसको यह शाप दे दिया कि युद्ध मे ठीक समय पर तू इन अस्त्रों का प्रयोग करना भूल जायगा। इससे उसका सारा परिश्रम व्यर्थ हो गया।

स्वयंवर-सभा में कर्ण को लक्ष्यवेध करने के लिए उद्यत देखकर द्रौपदी ने कहा था कि मैं सूत को वरण नहीं करूँगी। यह सुनकर कर्ण हताश हो उक्त कार्य से विरत हो गया। न तो उसे द्रौपदी की प्राप्ति हुई और न कुलीनों में स्थान ही मिला। जान पड़ता है, द्रौपदी की यह बात कर्ण के कलेजे को पार कर गई। तभी तो दानी और उदार होने पर भी उसने आर्य-नारी के निर्यातन में योग दिया था। दीन असहाय स्त्री की इज़्ज़त बचाने के बदले भेड़िया बन जाना कर्ण के चरित्र में काला कलङ्क है। जुए में जीत ली गई द्रौपदी सभा में पकड़ बुलाई गई। उसने गिड़गिड़ाकर सभासदों से न्याय माँगा। पूछा कि ऐसी दशा में स्त्री दाँव में लगाई जा सकती है या नहीं। पर कोई भी ठीक-ठीक उत्तर न दे सका। सब की बुद्धि मारी गई थी। एक दुर्योधन के भाई विकर्ण ने कौरवों के इस कुकृत्य का विरोध किया तो कर्ण आपे से बाहर होकर बोला—"विकर्ण, तुम अपने ही कुल को हानि पहुँचाने के लिए उपजे हो। दरबार में इतने राजा और बड़े-बूढ़े बैठे हैं। द्रौपदी के बार-बार दुहाई देने पर भी कोई साँस तक नहीं लेता। ले कैसे? सभी जानते हैं कि द्रौपदी धर्म से जीती गई है। तुम धर्म को समझो ही क्या? अभी तुम्हारी बुद्धि कच्ची है। युधिष्ठिर ने तो दाँव पर सर्वस्व लगा दिया था। द्रौपदी क्या सर्वस्व से बाहर है? अर्धनग्न अवस्था में द्रौपदी को सभा में घसीट लाना तुम्हें अनुचित जँचता है। सो एक पुरुष की पत्नी के लिए तुम्हारा मन्तव्य ठीक हो सकता है; किन्तु द्रौपदी तो पाँच पुरुषों की स्त्री है। उसे व्यभिचारिणी कहना ठीक होगा। व्यभिचारिणी चाहे नङ्गी सभा में लाई जाय चाहे एक वस्त्र पहने हुए। मैं इसमें कुछ दोष नहीं देखता।" ये दलीलें देकर उसने दुःशासन को पाण्डवों के तथा द्रौपदी के कपड़े तक उतार लेने की सलाह दे डाली।

मित्रता हो जाने पर कर्ण दुर्योधन को उसी तरह सलाह दिया करता था जिस तरह शकुनि देता था। इन्हीं लोगों के कुचक्र से पाण्डवों को जुए में हारकर वनवास भोगना पड़ा था। पाण्डव लोग जिस समय द्वैतवन में वनवास का समय बिता रहे थे उस समय कर्ण और शकुनि की बातों में आकर दुर्योधन अपने परिवार के साथ वहाँ पाण्डवों को चिढ़ाने के लिए पहुँचा। किन्तु वहाँ चित्रसेन नाम के एक गन्धर्व के साथ झगड़ा हो जाने पर कर्ण को प्राण लेकर भाग जाना पड़ा। गन्धर्वों ने पकड़कर दुर्योधन को क़ैद कर लिया। अन्त में युधिष्ठिर के अनुरोध करने पर, अर्जुन की कृपा से, उसे छुटकारा मिला। इसके बाद कर्ण ने दिग्विजय करके बहुत सा धन प्राप्त किया जो दुर्योधन को भेंट कर दिया।

कर्ण को अपनी शक्ति पर बेहद विश्वास था। उसने कौरवों को प्रसन्न करने के लिए एक बार दुर्योधन से कहा था कि परशुरामजी ने मुझे शाप अवश्य दिया था किन्तु मैंने उन्हें मना लिया था। उनकी कृपा से मुझे अभी सब अस्त्र याद हैं। इससे मैं कह सकता हूँ कि अभी मेरा अन्त-काल दूर है। मैं अर्जुन को मार गिराऊँगा। पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य और अन्यान्य योद्धा यहीं, आपके पास, बैठे रहें। मैं अपनी सेना के साथ जाकर, ऋषि की दी हुई अस्त्रविद्या के प्रभाव से, पाण्डवों को जीत लूँगा।

इस पर पितामह ने उसे फटकारते हुए कहा कि तेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है, इसी से तू अनाप-शनाप बक रहा है। खाण्डव-दाह के समय श्रीकृष्ण और अर्जुन ने जो वीरता प्रकट की थी उसका

स्मरण करके तुझे लज्जित होना चाहिए। इन्द्र ने तुझे जो अमोघ शक्ति दी है उसके टुकड़े-टुकड़े श्रीकृष्ण के चक्र से हो जायँगे। वह तेरे किसी काम न आवेगी।

इससे तुनुककर कर्ण ने कहा कि श्रीकृष्ण के विषय में पितामह ने जो कुछ कहा, सच है। पर उन्होंने मुझे व्यर्थ लज्जित किया है। लो, मैं अपने शस्त्र रक्खे देता हूँ। अब मुझे पितामह न तो युद्ध में देखेंगे और न सभा-समिति में। संग्राम मे इनकी मृत्यु हो जाने पर ही पृथ्वी के राजा लोग मेरे बल-पराक्रम का पता पावेंगे।

इस विवाद के फल-स्वरूप कर्ण ने भीष्म पितामह के जीते-जी युद्ध में कौरवों का हाथ नहीं बँटाया। पर पितामह के गिर जाने पर उसने उनसे मिल लेना उचित समझा। आखिर उनके असाधारण रण-कौशल की वार्ता वह प्रतिदिन सुनता ही था। जब उसने देखा कि वे कूच करने को हैं तब वह रथ से उतरकर उनके पास पैदल पहुँचा और बोला कि पितामह, मैं कर्ण आपको प्रणाम करता हूँ। अपनी कल्याणमयी दृष्टि से मेरी ओर देखिए। पवित्र वाक्यों से मुझे कृतार्थ कीजिए। कौरवों में अब आप जैसा निपुण कोई नहीं है। मैं आपकी अनुमति से अर्जुन को मारने की इच्छा रखता हूँ।

पितामह ने कहा—कर्ण, कौरवों को अब तुम्हारा ही भरोसा है। तुम उनको आनन्दित करो। तुम उनके हित के काम पहले कर भी चुके हो। मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ, जाकर शत्रुओं से युद्ध करो। दुर्योधन के समान तुम भी धर्म से मेरे पौत्र-तुल्य हो।

इसमें सन्देह नहीं कि कर्ण जैसा वीर और आत्माभिमानी था वैसा ही दानशील भी था। वह अपनी बात का धनी था। जो बात कह दी उससे पीछे नहीं हटा। श्रीकृष्ण ने हस्तिनापुर में उससे एकान्त में कहा था कि तुम, कुन्ती के ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण, पाण्डवों के बड़े भाई हो। अतएव अपने भाइयों की हत्या करने में तुम्हें रत्ती भर भी लाभ न पहुँचेगा, उलटा पाप लगेगा। यदि तुम दुर्योधन का पक्ष छोड़कर अपने भाइयों के सहायक हो जाओगे तो सम्भव है कि दोनों पक्षों में समझौता हो जाय। इससे एक तो इतने लोगों की प्राणरक्षा का पुण्य तुम्हें मिलेगा, दूसरे पाण्डव लोग तुम्हीं को अपना बड़ा भाई समझकर राजा बना लेंगे। यह सुनकर उसने श्रीकृष्ण से कहा कि अब मित्रता तोड़ देना ठीक नहीं। तोड़ दूँगा तो लोग कहेंगे कि इसने अर्जुन से डरकर ऐसा किया है। इसके सिवा कुन्ती ने तो मुझे पानी में बहाकर कहीं का नहीं रक्खा। धृतराष्ट्र के घराने में, दुर्योधन के आश्रित रहकर, मैंने तेरह वर्ष तक अकण्टक राज्य भोगा है। अपनी जाति के सूतों के साथ कई यज्ञ भी मैं कर चुका हूँ। मेरा विवाह-सम्बन्ध सूतों के साथ हुआ है और उन्हीं की रीतियाँ मेरे घर में प्रचलित हैं। दुर्योधन भी मेरे ही भरोसे पाण्डवों से भिड़ने की तैयारी कर चुके हैं। मेरे ही बल-बूते पर उन्होंने पाण्डवों से विरोध करने की हिम्मत की है। द्वन्द्व-युद्ध में मैं ही अर्जुन से भिड़ने को चुना गया हूँ। इसलिए इस समय वध, बन्धन, डर या लोभ के वश होकर मैं दुर्योधन को धोखा न दे सकूँगा। अर्जुन से यदि मैं युद्ध नहीं करूँगा तो उनकी और मेरी, दोनों की बदनामी होगी। कृष्णचन्द्र, इसमें सन्देह नहीं कि तुम मेरे हित की बात कह रहे हो। यह भी सत्य है कि पाण्डव तुम्हारे उपदेश पर चलकर सब काम सिद्ध कर लेंगे। फिर भी मुझे यही ठीक जान पड़ता है कि तुम इन बातों को, जो मुझसे-तुमसे हुई हैं, पाण्डवों से न कहना। धर्मात्मा युधिष्ठिर मुझे अपना

बड़ा भाई जानेंगे तो सब राज्य मुझे दे देंगे; किन्तु मैं पहले की प्रतिज्ञा के अनुसार सारा साम्राज्य दुर्योधन को सौंप दूँगा। यह पाण्डवों के लिए अच्छा न होगा। हाँ, मैं इतना अवश्य करूँगा कि युद्ध में अर्जुन के सिवा और किसी पाण्डव के प्राण न लूँगा। मैं चाहता हूँ कि युधिष्ठिर ही इस साम्राज्य के स्वामी हों। वासुदेव जिसके नेता, भीमसेन और अर्जुन जिसकी ओर से लड़नेवाले तथा नकुल, सहदेव और द्रौपदी के पाँचों पुत्र जिसके पृष्ठ-रक्षक हैं वह अखण्ड भूमण्डल के राज्य को बहुत समय तक क्यों न भोगेगा?

कर्ण की यह वक्तृता उसी के मुख से शोभा देने योग्य है। कर्ण और युधिष्ठिर में जो अन्तर है उसे कर्ण ने स्वयं स्वीकार कर लिया है। युधिष्ठिर को यदि यह पता लग जाता कि कर्ण उनका भाई है तो वे उससे कदापि युद्ध न करते; किन्तु कर्ण ने यह सब जानकर भी भाइयों के विरुद्ध हथियार उठाया।

एक बार कुन्ती ने भी कर्ण की उपासना-भूमि में जाकर उसको अपने पक्ष में करने की चेष्टा की थी। उन्हें भी उसने वही उत्तर दिया था जो ऊपर लिखा जा चुका है। उन्हें उसने अपने को अधिरथ सूत का पुत्र बतलाया था। चार पाण्डवों के प्राण न लेने की जो प्रतिज्ञा उसने की थी उसका निर्वाह उसने युद्धभूमि में सोलहों आने किया। अर्जुन के अतिरिक्त अन्य पाण्डवों को वह मार सकता था; किन्तु मौक़ा पाकर भी उसने उन लोगों को छोड़ दिया। अर्जुन से अवश्य वह अस्थि-वैर मानता था और उन्हीं से युद्ध करने की लालसा उसे बहुत दिनों से थी। द्रोणाचार्यजी के वीर-गति प्राप्त कर चुकने पर महाभारत के युद्ध में वह सोलहवें दिन प्रधान सेनापति बनाया गया और सत्रहवें दिन अर्जुन के साथ युद्ध करता हुआ मारा गया।

माता का विवाह होने से पूर्व कर्ण का जन्म हुआ था, इसमें उसका क्या अपराध था? किन्तु सभी लोग उसे इस प्रकार की उत्पत्ति के लिए ताना दिया करते थे जिससे वह चिढ़ जाता था। उसका कहना था कि माता-पिता के आचरण का कलङ्क मेरे माथे मढ़ना ठीक नहीं—उसका दायित्व मुझ पर नहीं। वैसे मेरे आचरण और वीरता में कोई दोष निकाले तो मैं झेंपूँ।

कर्ण का चरित्र बहुत ही उदात्त होता यदि वह अपने को सर्वश्रेष्ठ योद्धा न मानता। किन्तु महत्पुरुष के चरित्र में कुछ न कुछ कमी अवश्य रह जाती है। यदि कर्ण मे यह दोष न होता तो वह न तो भीष्म पितामह से झगड़ा करता, न द्रोणाचार्यजी और गुरु-पुत्र अश्वत्थामा की निन्दा करता और न अपने सारथि मद्रराज शल्य से ही बिगड़ बैठता। यदि वह अपने सिवा औरों को भी वीर मानने की उदारता दिखलाता—तनिक सहनशीलता से काम लेता—तो महा-भारत के युद्ध का परिणाम कुछ और ही होता।

कर्ण की वीरता में बट्टा लगानेवाली एक और घटना है। अल्पवयस्क राजकुमार अभिमन्यु जब चक्रव्यूह को तोड़कर शत्रु-सेना के भीतर पहुँच गया और अकेला होने पर भी बुरी तरह शत्रुओं के दाँत खट्टे करने लगा तथा शत्रुदल का कोई भी वीर, धर्मयुद्ध के नियमों को मानता हुआ, उसका सामना न कर सका तब जिन सात महारथियों ने एक साथ आक्रमण करके उस बालक-वीर को रथहीन और निहत्था किया तथा उसके प्राण लिये थे उनमें कर्ण भी था। यह काम कर्ण की कीर्ति-कौमुदी में कलङ्क-कालिमा है।

दुर्योधन को कर्ण पर जितना गहरा विश्वास था उतना कदाचित् ही किसी पर रहा हो। कर्ण ने भी दुर्योधन के लिए कुछ उठा नहीं रक्खा। वस्तुत: इसी के बल-बूते पर दुर्योधन ने युद्ध छेड़ा था। इसके मारे जाने पर दुर्योधन को जो मर्मान्तक क्लेश हुआ था, उसका पता महाभारत में दिये गये उसके करुण विलाप से चल जाता है। इसके मरते ही दुर्योधन की, रण में विजय प्राप्त करने की, आशा-लता पर—जो पितामह भीष्म जैसे मृत्युञ्जय युद्ध-विशारद और आचार्य द्रोण सरीखे दुर्धर्ष अस्त्र-वेत्ता के निहत होने पर भी हरी-भरी बनी रही—ऐसा पाला पड़ा कि वह बिलकुल सूख गई।

कुन्ती

पृथा (कुन्ती) महाराज शूरसेन की बेटी और वसुदेव की बहन थीं। शूरसेन के ममेरे भाई कुन्तिभोज ने पृथा को माँगकर अपने यहाँ रक्खा। इससे उनका नाम कुन्ती पड़ गया। कर्ण के जन्म-विवरण में यह लिखा जा चुका है कि पृथा को दुर्वासा ऋषि ने एक मन्त्र बतला दिया था जिसके द्वारा वे किसी भी देवता का आवाहन करके उससे सन्तान प्राप्त कर सकती थीं। समय आने पर स्वयंवर-सभा में कुन्ती ने पाण्डु को जयमाला पहनाकर पतिरूप से स्वीकार कर लिया।

आगे चलकर पाण्डु को शाप हो जाने से जब उन्हें सन्तान उत्पन्न करने की रोक हो गई तब कुन्ती ने उन्हें महर्षि दुर्वासा के वरदान का हाल सुनाया। यह सुनने से महाराज पाण्डु को सहारा मिल गया। उनकी अनुमति पाकर कुन्ती ने धर्मराज के द्वारा युधिष्ठिर को, वायु के द्वारा भीमसेन को और इन्द्र के द्वारा अर्जुन को उत्पन्न किया। इसके पश्चात् पाण्डु ने पुत्र उत्पन्न करने के लिए जब उनसे दुबारा आग्रह किया तब उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया। कह दिया कि अब ऐसा करना नियम-विरुद्ध और अनुचित होगा।

वास्तव में कुन्ती का वैवाहिक जीवन आनन्दमय नहीं हुआ। आरम्भ में उन्हें कुछ सुख अवश्य मिला; किन्तु इसके अनन्तर पति के शापग्रस्त होकर रोगी हो जाने और कुछ समय पश्चात् मर जाने से उनको बड़े क्लेश सहने पड़े। ऋषि लोग जब बालकों समेत विधवा कुन्ती को उनके घर-वालों को सौंपने हस्तिनापुर ले गये तब वहाँ उनका स्वागत तो हुआ नहीं; उलटा वे सन्देह की दृष्टि से देखी गईं। उनकी सन्तान को वैध सन्तति मानने में आपत्ति की गई। किसी प्रकार उनको रख भी लिया गया तो तरह-तरह से सताया जाने लगा। वे अपने पुत्रों के साथ 'वारणावत' भेजी गईं और ऐसे भवन में रक्खी गईं जो किसी भी घड़ी भभककर सबको भस्म कर देता। किन्तु हितैषी विदुर के कौशल से वे उस सङ्कट से पुत्रों समेत बचकर निकल गईं। जङ्गल में उन्होंने विविध कष्ट सहे। साथ में पुत्रों के रहने से उनके लिए बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ भी सरल हो गईं। इन्हीं कष्टों के सिलसिले में उनको पुत्रवधू द्रौपदी की प्राप्ति हुई। इससे उन्हें कुछ सन्तोष हुआ। इसी बीच उन्हें धृतराष्ट्र ने हस्तिनापुर में बुलाकर अलग रहने का प्रबन्ध कर दिया जिसमें कोई झगड़ा-बखेड़ा न हो। यही थोड़ा सा समय था जब कुन्ती को कुछ आराम मिला।

इसके बाद दुर्योधन ने युधिष्ठिर को जुए में हराकर शर्त के अनुसार वनवास करने को भेज दिया। इस वनवास के समय कुन्ती को अपने पुत्रों से अलग हस्तिनापुर में रहना पड़ा। उनके

लिए यह बहुत बड़ा सङ्कट था। उन्होंने हस्तिनापुर से युधिष्ठिर के पास वन में जो सँदेशा भेजा था वह उन जैसी वीरपत्नी और वीरमाता के अनुरूप था। वे नहीं चाहती थीं कि सङ्कट में पड़कर उनके पुत्र आत्मसम्मान को खो बैठें। सङ्कट सहते-सहते उन्हें सङ्कटों से एक प्रकार का प्रेम हो गया था। इसी से, एक बार श्रीकृष्ण के वरदान देने को तैयार होने पर कुन्ती ने कहा था कि यदि मैं धन-दौलत अथवा और कोई वस्तु माँगूँगी तो उसके फेर में पड़कर तुम्हें (भगवान् को) भूल जाऊँगी; इसलिए मैं ज़िन्दगी भर कठिनाइयों से घिरी रहना पसन्द करती हूँ। उनमें फँसे रहने से मैं सदा तुमको स्मरण किया करूँगी।

कुन्ती की सौत का नाम माद्री था। उसके साथ कुन्ती का बर्ताव बहुत ही अच्छा था। वह कुन्ती को अपने बेटे सौंपकर सती हो गई थी। उसने कुन्ती से कहा था कि मैं पक्षपात से बचकर अपने और तुम्हारे बेटों का पालन न कर सकूँगी। यह कठिन काम तुम्हीं करना। मुझे तुम पर पूरा-पूरा भरोसा है।

जेठ-जेठानी—धृतराष्ट्र और गान्धारी—के पुत्रों ने यद्यपि कुन्ती के लड़कों को कष्ट देने में कुछ कमी नहीं की थी फिर भी वे सदा जेठ-जेठानी का सत्कार किया करती थीं। पाण्डवों को राज्य प्राप्त हो जाने पर कुछ समय के बाद जब धृतराष्ट्र, गान्धारी के साथ, वन को जाने लगे तब कुन्ती भी उनके साथ हो गईं। धृतराष्ट्र आदि ने उनको घर रखने के लिए बहुत बहुत समझाया, वे रोये-गिड़गिड़ाये भी; किन्तु कुन्ती नहीं लौटीं। उन्होंने धर्मराज से स्पष्ट कह दिया कि 'मैंने अपने आराम के लिए तुमको युद्ध करने के लिए सन्नद्ध नहीं किया था; युद्ध कराने का मेरा उद्देश्य यह था कि तुम संसार में वीर की भाँति जीवन व्यतीत कर सको।' उन्होंने वन में जाकर अपने जेठ-जेठानी की सेवा-शुश्रूषा जी-जान से की। इस दृष्टि से उनका महत्त्व गान्धारी से भी बढ़ जाता है। गान्धारी को सन्तान-प्रेम था, वे अपने पुत्रों का भला चाहती भी थीं; यद्यपि दुर्योधन के पक्ष को न्याय-विरुद्ध जानकर उन्होंने उसे विजय का आशीर्वाद नहीं दिया था, फिर भी माता का हृदय कहाँ तक पत्थर का हो जाता! उन्होंने कुरुक्षेत्र का संहार देख अन्त में श्रीकृष्ण को शाप दे ही डाला था। किन्तु कुन्ती ने हज़ार कष्ट सहने पर भी ऐसा कोई काम नहीं किया जिससे उनके चरित्र का महत्त्व कम हो जाय। उनमें इतनी अधिक दया थी कि वे, एकचक्रा नगरी में रहते समय, अपने आश्रयदाता ब्राह्मण के बेटे के बदले अपने पुत्र भीमसेन को राक्षस की भेंट करने को तैयार हो गई थीं। यह दूसरी बात है कि उस राक्षस से भीमसेन इक्कीस निकले और उसे मारकर उन्होंने बस्तीवालों का सङ्कट काट दिया। कुन्ती इतनी उदार थीं कि उन्होंने हिडिम्बा राक्षसी को भी पुत्रवधू मानने में आपत्ति नहीं की।

कृतवर्मा

यह हृदिक का पुत्र बड़ा भारी शूर था। इसे श्रीकृष्ण ने महारथी और पितामह भीष्म ने अतिरथी माना है। पाण्डवों की ओर से समझौता कराने के लिए जिस समय श्रीकृष्ण कौरवों की सभा में गये थे उस समय यह भी उनके साथ गया था। इसे ले जाने का कारण यह था कि यदि उस समय दुर्योधन किसी प्रकार की उद्दण्डता कर बैठता तो साथ में रहने से यह उसकी

ख़बर लेता। कुरुक्षेत्र के युद्ध में इसने एक अक्षौहिणी सेना ले जाकर दुर्योधन का साथ दिया था और जमकर बड़ा विकट युद्ध किया था। एक दिन तो इसने ऐसी मार-काट मचाई थी कि पाञ्चालों के धुर्रे उड़ गये और भीमसेन तक को नीचा देखना पड़ा; किन्तु सात्यकि से यह पेश न पा सकता था। एक बार तो सात्यकि ने इसके घोड़ों को मारकर, निहत्था करके, इसे ऐसी मार मारी थी कि लोग इसके जीवन से निराश हो गये थे। किन्तु कृपाचार्यजी वहाँ फ़ुर्ती से पहुँच गये और इसे चटपट अपने रथ पर बिठाकर चलते हुए।

यह झगड़ालू स्वभाव का प्रतीत होता है। तभी तो इसने स्यमन्तक मणि को गायब करवा दिया था जिसके सिलसिले में सत्राजित् की जान गई थी। अश्वत्थामा ने जिस समय रात को सोती हुई पाण्डव-सेना का नाश किया था उस समय इसने और कृपाचार्य ने मिलकर उन लोगों को मार डाला था जो घबराकर प्राण बचाने के लिए डेरों से बाहर भाग रहे थे। इसके सिवा इसने डेरों में आग लगाकर आततायी का भी काम किया था। सात्यकि से इसकी लाग-डॉट रहती थी और उन्हीं से यह सीधा भी होता था। कुरुक्षेत्र के युद्ध में तो यह जीता बच गया किन्तु प्रभास तीर्थ में यादवों ने मदिरा पी-पीकर आपस मे जो उपद्रव किया था उसमें सात्यकि ने इसका सिर उतार लिया था।

कृपाचार्य

ये महर्षि शरद्वान् के पुत्र थे। इनकी बहन का नाम कृपी था। महर्षि शरद्वान्, गौतम मुनि के पुत्र होने के कारण, गौतम भी कहलाते थे। उन्होंने वेद की अपेक्षा धनुर्विद्या में अधिक पारदर्शिता प्राप्त की थी। धनुर्विद्या में उनकी विशेष पटुता देख इन्द्र ने, उनका महत्त्व कम कर देने के लिए, जानपदी नाम की एक देवकन्या को उनके पास भेज दिया। इसके गर्भ से शरद्वान् के एक कन्या और एक पुत्र उत्पन्न हुआ। माता-पिता ने बेटे-बेटी को, उत्पन्न होते ही, निर्जन वन में छोड़ दिया। एक दिन महाराज शान्तनु का कोई सैनिक उस जङ्गल में होकर निकला। उसकी दृष्टि इन बच्चों पर पड़ी तो वह इन्हें उठाकर महाराज के पास ले गया। उन्होंने 'कृपा'पूर्वक इन दोनों का पालन-पोषण किया था, इसी से बालक का नाम तो कृप और बालिका का कृपी पड़ गया।

कृपाचार्य अपने पिता शरद्वान् की भाँति धनुर्विद्या के विशेष रूप से ज्ञाता हो गये। कौरव-पाण्डवों को इन्होंने पहले धनुर्वेद की शिक्षा दी थी। आगे चलकर कुरुक्षेत्र के युद्ध में इन्होंने कौरवों की ओर से संग्राम किया था। कौरवों का नाश हो जाने पर उनके दल में जो तीन योद्धा बच रहे थे उनमे से एक ये भी थे। चिरजीवी होने के कारण ये मारे नहीं जा सकते थे। अन्त मे पाण्डवों को राज्य मिल जाने पर ये उन्हीं के यहाँ रहने लगे। इन्होंने परिक्षित् को अस्त्रविद्या सिखलाई थी।

कुरुक्षेत्र का महासंग्राम आरम्भ होने से पहले युधिष्ठिर ने अपने गुरुजनों के पास जा-जाकर उनसे युद्ध करने की अनुमति और विजय के लिए आशीर्वाद माँगा था। उस सिलसिले में वे कृपाचार्य के पास भी गये थे। तब इन्होंने कहा था कि यदि मैं कौरवों की नौकरी मे न होता तो तुम्हारी सहायता करता; क्योंकि तुम्हारा पक्ष न्यायानुमोदित है। मैं तुम्हें विजयी होने के लिए आशीर्वाद तो देता ही हूँ; साथ ही प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर ईश्वर से तुम्हारी विजय के लिए प्रार्थना भी किया करूँगा।

आचार्य ने अपने शिष्य से वही बातें कही हैं जो उनको कहनी चाहिए थीं और ऐसे अवसर पर उनकी सात्त्विक वृत्ति का ही परिचय मिलता है। उनके ऐसे ही धैर्य को हम उस सङ्कट के समय भी देखते हैं जब उनके बहनोई द्रोणाचार्य को धृष्टद्युम्न ने अन्याय से मार डाला था और अश्वत्थामा इसका बदला लेने के लिए रात को सोते हुए सैनिकों का संहार करने के लिए कटिबद्ध हो चुका था। उस समय कृपाचार्य ने उससे कहा कि जो सो रहा हो, जिसने शस्त्र रख दिया हो और रथ घोड़े आदि की सवारी छोड़ दी हो, जो यह कहे कि "हम तुम्हारे हैं", जो बाल खोलकर शरण में आवे और जिसका वाहन मर जाय, ऐसे शत्रु को मारना ठीक नहीं। आज थके हुए पाञ्चाल लोग बेख़बर सो रहे होंगे। इस दशा में उन पर जो धोखे से आक्रमण करेगा वह नरक में गिरेगा। कल सूर्योदय होने पर मेरे और कृतवर्मा के साथ चलकर तुम उन पर टूट पड़ना। या तो हम लोग शत्रुओं का संहार करके लौटेंगे, नहीं तो वीरगति पाकर स्वर्ग प्राप्त करेंगे।

ऐसे कठिन अवसर पर भी जिसने धैर्य को हाथ से नहीं जाने दिया और जो भानजे को धर्म-पथ पर दृढ़ रखने के लिए ऐसी दृढ़ता से तत्पर था वह अपने हठी भानजे का साथ देने को गया ही नहीं बल्कि उसने सोलहों आने उसके नीचता-पूर्ण कार्य में हाथ बँटाया। अश्वत्थामा की मार-काट से घबराये हुए बचे-खुचे निहत्थे सैनिक जब रात को डेरों से निकलकर भागने लगे तब इन्होंने और कृतवर्मा ने उन पर हाथ साफ़ किये तथा तीन ओर से छावनी मे आग लगा दी जिससे सब का संहार हो गया। इसके अतिरिक्त कृपाचार्य उस युद्ध में भी थे जिसमें छः-छः महारथियों ने मिलकर निहत्थे बालक अभिमन्यु को प्रहारों के द्वारा जर्जर कर मृत्यु-मुख में पहुँचा दिया था।

कहाँ तो कृपाचार्यजी का अश्वत्थामा को सोते हुओं पर आक्रमण न करने देने के लिए बढ़-बढ़कर धर्म की दुहाई देना और कहाँ न केवल उसका हाथ बँटाना, बल्कि बेधड़क आततायीपन कर बैठना—डेरों में आग लगा देना! यदि उनके हाथ से ये दो काम न हुए होते तो उनका चरित्र उनकी जाति और उनकी बातों के अनुकूल होता; किन्तु जब बुद्धि ही ठिकाने न हो तब भले कामों की आशा कैसे की जाय?

कृपी

ये महर्षि शरद्वान् की कन्या थीं। इनकी माता जानपदी नाम की एक देवकन्या थी। किन्तु इन्हें माता-पिता का रत्ती भर भी सुख प्राप्त नहीं हुआ; क्योंकि उन्होंने इन्हें और इनके भाई कृप को एक निर्जन वन में छोड़ दिया था। वहाँ से ये महाराज शान्तनु के यहाँ पहुँचाई गईं। वहीं इनका लालन-पालन हुआ। द्रोणाचार्यजी के साथ इनका विवाह हुआ था। प्रसिद्ध वीर अश्वत्थामा इन्हीं का पुत्र है।

इनके पति द्रोणाचार्यजी वीर और विद्वान् होने पर भी निर्धन थे। प्राचीन भारत में दो प्रकार का धन होता था—अन्नधन और गोधन। जान पड़ता है कि इनके पास इन दोनों की कमी थी; क्योंकि द्रोणाचार्यजी का जीवन त्यागमय था। इनकी निर्धनता का पता अश्वत्थामा की दूध के लिए मचल जाने की घटना से लगता है। ये किसी के लेन-देन में नहीं रहती थीं। जान

पड़ता है कि इनका जीवन अधिकतर क्लेश में ही बीता। देखिए न, जन्मते ही माता-पिता के स्नेह-पूर्ण लालन-पालन से वञ्चित हो गईं। दूसरे के यहाँ पाली-पोसी गईं। उन द्रोणाचार्यजी के साथ विवाह हुआ जिनके यहाँ बच्चे को दूध पिलाने के लिए एक गौ तक नहीं थी। पति के कौरवों की नौकरी कर लेने पर कदाचित् कुछ दिनों के लिए दिन फिरे तो अन्त में बेचारी को विधवा होना पड़ा [और यदि द्रौपदी की मातृ-वत्सलता का अनुभव न होता तो इन्हें कदाचित् एक और कष्ट—कुपुत्र की माता होने का दण्ड—भोगना पड़ता]। अश्वत्थामा ने पाण्डवों के सोते हुए पुत्रों की हत्या तो की ही थी, उसने उत्तरा के गर्भ का विनाश करने—पाण्डवों के वंश को निर्मूल कर डालने—के लिए ब्रह्मास्त्र का प्रयोग भी कर दिया था। इस संकट से पाण्डवों को श्रीकृष्ण ने बचा लिया। [अन्त में जब अश्वत्थामा बाँध लिया गया और द्रौपदी के सामने लाकर खड़ा किया गया तब उन्होंने अर्जुन से कहा कि यह अश्वत्थामा नहीं, साक्षात् गुरु द्रोणाचार्य हैं; क्योंकि है तो यह उन्हीं का पुत्र। इसके प्राण लेने से साध्वी कृपी को वैसा ही कष्ट भोगना पड़ेगा जैसा मैं भोग रही हूँ। अतएव इसको जीवित ही छोड़ दो। इस प्रकार द्रौपदी के अनुग्रह से कृपी पुत्रशोक का क्लेश भोगने से बच गई।—भाग०]

कृष्ण द्वैपायन

ब्रह्मशाप से अद्रिका नाम की अप्सरा यमुना में मछली हो गई थी। इसी अद्रिका के गर्भ से एक कन्या और एक पुत्र की उत्पत्ति हुई। कहारों को ये बच्चे मिले तो उन्होंने इन्हें ले जाकर अपने मुखिया दाशराज को सौंप दिया। दाशराज ने बेटे को तो अपने यहाँ रख लिया; किन्तु बेटी कहारों को लौटा दी। मछुओं के यहाँ पालित होने से इसका नाम मत्स्यगन्धा पड़ गया। आगे चलकर यह सत्यवती नाम से प्रसिद्ध हुई। यह अपने पिता की आज्ञा से नाव के द्वारा यात्रियों को यमुना नदी के पार पहुँचाया करती थी। इन लोगों का यह पेशा था।

पराशर ऋषि एक बार यमुना पार जाने को तट पर गये तो सत्यवती के रूप पर रीझ गये। उनके संयोग से सत्यवती के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। साँवले रङ्ग का होने से यह लड़का 'कृष्ण' और द्वीप में उत्पन्न होने से 'द्वैपायन' नाम से प्रसिद्ध हुआ। आगे चलकर कृष्ण द्वैपायन ने वेदों का विभाग करके वेदव्यास पदवी प्राप्त की। महाभारत इन्हीं की रचना है। अन्यान्य पुराणों के प्रणेता भी यही कहे जाते हैं।

आगे चलकर राजा शान्तनु की रानी होने पर सत्यवती के गर्भ से विचित्रवीर्य और चित्राङ्गद नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। राज्य के उत्तराधिकारी यही दोनों थे। किन्तु इनमे से एक तो अपने नाम के एक यक्ष के साथ युद्ध करके मारा गया और दूसरा क्षय रोग से मर गया। गद्दी ख़ाली हो गई। सत्यवती ने भीष्म को विवाह करके राज पाट सँभालने के लिए बहुतेरा समझाया, परन्तु वे अपनी प्रतिज्ञा तोड़ने को किसी तरह तैयार नहीं हुए। अन्त में लाचार होकर, वंश की रक्षा करने के लिए, सत्यवती को दूसरे मार्ग का अवलम्बन करना पड़ा। उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र कृष्ण द्वैपायन को याद किया। आने पर उन्हें अपने संकट की कथा सुनाकर उनसे विचित्रवीर्य के

क्षेत्र (पत्नी) में सन्तान उत्पन्न कर देने का अनुरोध किया। वेदव्यास अपनी माता की आज्ञा को कैसे टाल सकते थे ? किन्तु उन्होंने इसके लिए कुछ शर्तें लगा दीं। जिस समय ये गर्भाधान करने गये उस समय इन्होंने अपना रूप ऐसा बना लिया कि उसे देख डर के मारे अम्बिका रानी ने आँखें मूँद लीं। ऐसा करने का फल यह हुआ कि जो सन्तान उत्पन्न हुई, अन्धी हुई। यही बालक धृतराष्ट्र नाम से प्रसिद्ध हुआ। सत्यवती ने दुबारा कृष्ण द्वैपायन को बुलाकर कहा कि अन्धा पुत्र राज्य के किस काम का। इसलिए एक बार और चेष्टा करो। इस बार दूसरी रानी अम्बालिका ने ऋषि की उग्र गन्ध से घबराकर अपनी दासी को उनके पास भेज दिया। इस संयोग से दासी के गर्भ द्वारा विदुरजी उत्पन्न हुए। सब हाल जानकर सत्यवती ने तिबारा कृष्ण द्वैपायन को बुलाकर कहा कि बेटा, गद्दी पर दासीपुत्र नहीं बैठ सकता। इसलिए एक बार और प्रयत्न करो। इस बार अम्बालिका रानी ऋषिजी के पास गई अवश्य, किन्तु उनके रूप को देखकर डर के मारे पीली सी पड़ गई। अतएव इस गर्भ से उत्पन्न सन्तान पाण्डु वर्ण की हुई। इससे इस बालक का नाम पाण्डु रक्खा गया।

महर्षि कृष्ण द्वैपायन बड़े भारी योगी थे। वे सदा वन में रहते थे। अपनी माता के अनुरोध से ही उन्होंने विचित्रवीर्य के क्षेत्र में सन्तान उत्पन्न की थी; नहीं तो वे इस बखेड़े में क्यों पड़ने लगे। माता की आज्ञा को टालना उन्होंने उचित नहीं समझा। इसके सिवा उनके अनुग्रह से एक राजवंश की भी रक्षा हो गई। इस अवसर को छोड़ वे फिर कभी रानियों से नहीं मिले। अपने पुत्र की इस नियम-निष्ठा के भरोसे ही उससे सन्तान उत्पन्न कर देने का अनुरोध सत्यवती ने किया था।

धृतराष्ट्र के यहाँ कृष्ण द्वैपायन कई बार आये-गये हैं। धृतराष्ट्र अपने को उक्त महर्षि की सन्तान जानते और तदनुरूप उनका आदर-सत्कार भी करते थे; किन्तु महर्षि ने कभी राजा के यहाँ रहकर आराम करने की इच्छा नहीं की। करते कैसे ? उनकी दृष्टि में तो सभी ऐहिक सुख क्षणभङ्गुर थे। दुर्योधन के दौरात्म्य से जब आगे चलकर कुरुक्षेत्र के युद्ध की नौबत आई तब महर्षि ने धृतराष्ट्र से कहा कि यदि तुम्हें युद्ध की मार-काट देखने की इच्छा हो तो दर्शन-शक्ति दे दें। लेकिन जब धृतराष्ट्र को दुर्योधन के विजयी न होने की बात मालूम हुई तब उन्होंने दर्शन-शक्ति लेना अस्वीकार कर दिया। इस पर महर्षि कृष्ण द्वैपायन ने सञ्जय को वह दिव्य दृष्टि दे दी जिसके कारण वह घर बैठा-बैठा सब कुछ देख लिया करे और धृतराष्ट्र को युद्ध की ताज़ा से ताज़ा ख़बर सुनाता जाय। यह दिव्य दृष्टि सञ्जय के पास तभी तक रही जब तक युद्ध होता रहा। युद्ध समाप्त होते ही उसके पास से यह शक्ति चली गई। यह महर्षि कृष्ण द्वैपायन के योग की ही करामात थी। उन्होंने ऐसी ही करामात युद्ध का अन्त हो जाने पर भी दिखाई थी। युद्ध में मारे गये अपने स्वजनों के लिए सब लोग विलाप कर रहे थे। महर्षि ने बहुत समझाया कि शरीर तो नश्वर है, उसके लिए शोक कैसा ! परन्तु माया-ममता में फँसे हुए जीव को भला इससे सन्तोष हो सकता है ? अन्त में महर्षि ने ऐसा प्रबन्ध किया जिससे उक्त महासमर में मारे गये सभी शूरवीर आकर अपने स्वजनों से मिल भेट सकें। सन्ध्या होने पर सब लोग सरस्वती-तट पर पहुँचे। अब महर्षि ने मन्त्र पढ़कर मृत वीरों की आत्मा का आकर्षण किया तो वे लोग वहाँ पर स्थूल शरीर से प्रकट हो

गये। सब ने नदी के तट पर उन मृत वीरों से हिल-मिलकर बातें कीं, अपनी भूलों के लिए क्षमा माँगी, उनसे गले मिले और जिससे जो कुछ कहना-सुनना था वह कहा-सुना। इस प्रकार रात भर उस नदी-तट पर बड़ा मेला सा लगा रहा। प्रातःकाल होने के लक्षण देखकर महर्षि ने सब को सूचना दी कि सावधान हो जाओ। अब ये लोग वहाँ चले जायँगे, जहाँ से आये थे। बस, बात की बात में वह मेला उजड़ गया। सौति के मुख से इस सम्मिलन की कथा सुनकर राजा जनमेजय को अपने पिता और शमीक ऋषि आदि के दर्शन करने की इच्छा हुई। उन्होंने इसके लिए व्यासजी की प्रार्थना की तो उन्होंने राजा की कामना पूर्ण कर दी।

महर्षि की योग-विभूतियों के ये साधारण नमूने हैं। विभूतियों का कोई प्रदर्शन नहीं करता फिरता। आवश्यकता पड़ जाने पर, लोक-कल्याणार्थ, उनका उपयोग कर लिया जाता है।

योगी का जीवन संसार के भले के लिए होता है और कृष्ण द्वैपायन ने हर तरह से संसार का उपकार किया है। उनके ग्रन्थ हमारा अशेष कल्याण कर रहे हैं और करते रहेंगे।

कुरुवंश के प्रवर्तक और सिद्ध योगी होकर व्यासजी ने उसको विनष्ट होने से बचाया क्यों नहीं? इसका उत्तर यह हो सकता है कि उन्होंने जिस बात में यथार्थ कल्याण समझा उसी को होने दिया। इसके सिवा जीवों का अपना व्यक्तिगत प्रारब्ध भी तो कोई वस्तु है। यदि योगी संसार भर के प्रारब्ध को मेटता फिरे तब तो विधाता के विधान का कुछ भी महत्त्व न रह जाय। फलतः सब कुछ जानते हुए भी योगी को बहरे-गूँगे की भाँति कर्मचक्र का तमाशा देखते रहना पड़ता है।

गान्धारी

गान्धार देश के राजा सुबल के बेटे का नाम शकुनि और बेटी का नाम गान्धारी था। बेटा जैसा कुटिल, क्रूर और कपटी था बेटी वैसी ही सती-शिरोमणि थी। गान्धारी का विवाह धृतराष्ट्र के साथ हुआ था। ये भारतीय पातिव्रत की सजीव मूर्त्ति हैं। जिस समय इन्हें मालूम हुआ कि पतिदेव के आँखें नहीं हैं उसी समय इन्होंने अपनी आँखों पर पट्टी बँधवा ली। सोचा कि आँखों का सुख जब मेरे पति को प्राप्त नहीं है तब मैं ही इन आँखों का क्या करूँगी। इस प्रकार इन्होंने आँखों के रहते हुए भी उनका उपयोग करना बन्द कर दिया। धन्य इस त्याग को। संसार के किसी समाज में हमको इसकी समता करने की सामग्री नहीं मिलती। स्त्री को सन्तान पर बड़ी ममता होती है; किन्तु गान्धारी की प्रतिज्ञा को धन्य है। उन्होंने सन्तान का मुख देखने को भी आँखों की पट्टी नहीं हटाई।

एक राजकुमारी का अन्धे पुरुष को पतिरूप में स्वीकार करना साधारण साहस की बात नहीं है। गान्धारी ने अपने जीवन में कभी इस बात को मुँह पर आने तक नहीं दिया कि एक अन्धे के साथ गँठबन्धन करके उन्होंने अपना जीवन नष्ट कर डाला है। वे जीवन भर तन-मन से पति की सेवा करती रहीं। उनका हृदय भी उदार था। सन्तान के अनुचित आग्रह को उन्होंने न्याय्य नहीं माना।

एक बार भूखे-प्यासे व्यासजी गान्धारी के यहाँ पहुँचे तो उन्होंने महर्षि का ख़ासा आतिथ्य किया। महर्षि के प्रसन्न होकर वरदान माँगने के लिए कहने पर गान्धारी ने बलिष्ठ और गुणवान्

सौ पुत्र माँगे। कुछ दिनों में गान्धारी के गर्भ रह गया। दो वर्ष बीत जाने पर भी सन्तान न होने से गान्धारी चिन्तित थीं कि उन्हें कुन्ती के पुत्रवती होने की सूचना मिली। इससे खीझकर उन्होंने अपने पेट पर मुक्का दे मारा तो लोहे की भाँति कड़ा मांस का लोथड़ा बाहर निकल आया। योगी व्यासजी सब हाल जानकर वहाँ पर आ गये। उन्होंने जल्दबाज़ी के लिए गान्धारी को मीठी फटकार बतलाई। इसके बाद वे ऐसा प्रबन्ध कर गये जिससे उस लोथड़े के सौ पुत्र हो जायँ।

स्त्री-स्वभाव-सुलभ ईर्ष्या का रूप हमने गान्धारी में इसी अवसर पर देखा है। धृतराष्ट्र के अन्धे होने के कारण उनका राज्याधिकार मारा गया था। गान्धारी चाहती थीं कि कम से कम उनकी सन्तान तो ज्येष्ठ होकर गद्दी की हक़दार हो जाय। किन्तु कुन्ती के पुत्रवती हो जाने से गान्धारी के मनोरथ वृक्ष की जड़ उखड़ गई। इस अवसर के सिवा गान्धारी ने कभी कुन्ती से ईर्ष्या नहीं की।

गान्धारी ने बार-बार राजा धृतराष्ट्र को चेतावनी दी है कि पाण्डवों को उनका हिस्सा देकर कौरव-कुल की रक्षा कर लेने में ही कुशल है। दुर्योधन को कई बार उन्होंने ख़ासी फटकार बताई है। वह युद्धभूमि में जाने को तैयार हुआ तो माता से विजय का आशीर्वाद माँगने आया। बड़ा ही नाज़ुक समय था। और कोई स्त्री होती तो सोचती कि बड़ा लड़का—युवराज—संग्राम करने जा रहा है। क्या जाने, लौटेगा कि नहीं। सन्तान की भलाई चाहना ही माता का कर्तव्य है। अतएव यह कुपूत हो या सपूत, इसे आशीर्वाद देकर ही युद्धभूमि में भेजो। परन्तु वाह री गान्धारी माता, तूने ऐसे समय पर भी न्याय और धर्म का ही पक्ष लिया। साफ़ कह दिया कि बेटा, तेरा आशीर्वाद माँगना ठीक है; किन्तु धर्म के बन्धन ने मेरे मुँह में ताला लगा दिया है। मैं आशीर्वाद किस तरह दूँ ? मैं तुझे ज़रूर आशीर्वाद देती, अगर तूने मेरी बात मानी होती। मैं तुझे ज़रूर आशीर्वाद देती अगर पाण्डवों ने तेरे साथ कुछ अनुचित बर्ताव किया होता। किन्तु यहाँ तो बात ही उलटी है। मैं तुझे विजय का आशीर्वाद देकर शिष्ट-परम्परा को नहीं तोड़ सकती।

गान्धारी को ख़बरें मिलती थीं कि आज रणक्षेत्र में उनका अमुक पुत्र मारा गया, आज अमुक घायल हुआ। वे कलेजे पर पत्थर रखकर सब सुनतीं और सहन करती थीं। कैसे न करतीं। सत्य और धर्म की बेड़ियाँ जो उनके पैरों मे पड़ी हुई थीं। पुत्रों के मारे जाने से दुखी होकर यदि वे शाप दे डालतीं तो निस्सन्देह पाण्डवों का सत्यानाश हो जाता। किसी के करे-धरे कुछ न होता। किन्तु शाप देतीं किस तरह ? हर घड़ी तो उनकी दृष्टि के आगे पुत्रों की करनी का चित्र मौजूद रहता था। पर सहनशीलता की भी एक हद होती है। कुरुक्षेत्र का संग्राम समाप्त हो जाने पर जिस समय गान्धारी ने व्यासजी के वरदान से प्राप्त दूर-दृष्टि से कुरुक्षेत्र के वीभत्स निधन का भयावना दृश्य प्रत्यक्ष देखा उस समय उस सती के धैर्य का बाँध टूट गया। उसने अधीर होकर कहा—श्रीकृष्ण, क्या तुम इस गृह-कलह को शान्त नहीं करा सकते थे ? क्या यह काम तुम्हारी शक्ति से बाहर का था ? तुम तो अनन्त शक्तिशाली हो। तुम चाहते तो बापुरे दुर्योधन की तुम्हारे आगे एक न चलती। तुम्हारे प्रभाव में आकर वह तुम्हारी प्रत्येक बात को मानता। किन्तु तुमने उपेक्षा कर दी। इसी से यह सत्यानाश हुआ। गृह-कलह होने से जो दुर्दशा कौरव-पाण्डवों की हुई वही तुम यादवों की भी होगी।

देने को तो गान्धारी ने यह शाप दे दिया; किन्तु पीछे से वे पछतावा करने लगीं। शाप देने से धर्म की—तपस्या की—हानि होती है। इतने दिनों में उन्होंने बड़ी कठिनाई से जिस धर्म-धन का सञ्चय किया था उसका इस तरह अपव्यय हो जाने से वे बहुत ही दुखी हुईं। किन्तु विधाता के विधान को कौन उलट सकता है ? जिस सती ने कभी स्वप्न मे तक किसी का बुरा नहीं चेता उसका वचन क्योंकर ख़ाली जाता ? श्रीकृष्ण ने इस अभिशाप को नतमस्तक हो स्वीकार किया। इस अवसर पर यदि गान्धारी शान्त बनी रहतीं—क्रोध को पी जातीं—तो उनका मानव-चरित्र अपूर्ण रह जाता। मानव-स्वभाव-सुलभ दुर्बलता ने ही उनको देव-कोटि में जाने से बचा लिया है। इससे तनिक पहले उन्होंने भीमसेन से जवाब तलब किया है कि तूने अपने भाई दु:शासन का रक्त क्यों पिया, दुर्योधन को अधर्म-युद्ध में क्यों मारा और क्या मेरा ऐसा एक भी बेटा न था जिसका अपराध कम समझकर तू उसे जीता छोड़ देता। भीमसेन ने उत्तर दिया है कि दु:शासन का ख़ून मेरे हाथों और होठों में ही लगा रह गया, गले के नीचे नहीं उतरा; प्रतिज्ञा पूरी करने को मुझे ऐसा करना पड़ा। अधर्म-युद्ध किये बिना दुर्योधन को मैं जीत ही न सकता था। अस्तु, यदि व्यासजी पहले से पहुँचकर गान्धारी को समझा न देते तो वे युधिष्ठिर को शाप दिये बिना न रहतीं। आँखों पर बँधी हुई पट्टी से छनकर उनकी दृष्टि तनिक युधिष्ठिर के हाथों के नखों पर पड़ जाने से नाख़ूनों की रंगत काली पड़ गई थी। उस समय उनकी दृष्टि से कैसी ज्वाला बरस रही थी, यह इसी से समझा जा सकता है। व्यासजी के समझाने पर उन्होंने स्वीकार किया है कि दुर्योधन आदि की भाँति मुझे पाण्डवों पर भी कृपा रखनी चाहिए।

गान्धारी के सभी लड़के मारे गये, बेटी दु:शला विधवा हो गई, राज-पाट पाण्डवों के अधिकार में चला गया; फिर भी वे महलों में रहती हैं, अपने पति बूढ़े धृतराष्ट्र की सेवा-शुश्रूषा करती हैं और अतिथि-अभ्यागतों को दान-दक्षिणा देती हैं। यह ठीक है कि महाराज युधिष्ठिर की कृपा से उनको किसी बात की कमी नहीं है, प्रत्येक व्यक्ति उनकी आज्ञा का पालन करने को तैयार रहता है फिर भी गान्धारी यह कैसे भूल जायँ कि उनके सौ बेटे नहीं थे, राज-पाट पर उनका एकाधिपत्य नहीं था। इसको वे सोचती थीं, पर इसके लिए पाण्डवों को दोष नहीं देती थीं। दोष देती थीं अपने भाग्य को। भीमसेन की उद्दण्डता से दुखी होकर एक बार धृतराष्ट्र और गान्धारी ने भोजन करना बन्द कर दिया। व्यासजी की सलाह से अब वे घर-द्वार छोड़कर वनवास को जायँगे। यह ख़बर पाकर युधिष्ठिर बहुत घबराये। दौड़े-दौड़े चाचा-चाची के पास पहुँचे। उनके पैरों पर गिरकर गिड़गिड़ाये। युधिष्ठिर को उन्होंने समझाया कि तुम्हारे व्यवहार से मुझे रत्ती भर भी असन्तोष नहीं। तुमने ऐसा बर्ताव रक्खा है जिसमें हम लोगों को यह मालूम ही न होने पावे कि हम अनाथ हैं, हमारे बेटे मारे गये हैं और हमारा जीवन दूसरों की कृपा पर अवलम्बित है। किन्तु अब हमारा चौथापन है। इसलिए सबसे ममता छोड़कर भगवान् का भजन करने में ही हमारा कल्याण है। तुम्हारे कहने से हम भोजन करना आरम्भ किये देते हैं; किन्तु अब हम बस्ती में रहेंगे नहीं। उन्होंने यही किया। उनके साथ-साथ कुन्ती और विदुर भी गये। लोग दूर तक उन्हें पहुँचाने गये। जङ्गल में जाकर उन्होंने कठोर तप किया। वे कन्द मूल फल खाते और साधना

करते थे। ऐसा करते-करते दैवयोग से एक बार अग्निहोत्र की आग उस सूखे वन मे लग गई। चारों ओर धायँ-धायँ आग जलने लगी। उसी में जेठ-जेठानी के साथ कुन्ती भी भस्म हो गईं।

गान्धारी गान्धार में उत्पन्न हुईं, कुरुकुल में ब्याही जाकर सौ बेटों की माता हुईं। उन्होंने सब तरह के सुख भोगे, दान-पुण्य किये, किन्तु कुपूतों की करनी से उनके अन्तकाल के दिन इस तरह बीते।

अधिक सन्तानें होने से मनुष्य को सुख भी अधिक मात्रा में मिलना चाहिए; किन्तु कभी-कभी इसका उलटा देखा जाता है। राजा सगर के साठ हज़ार बेटे थे। जिस ओर इनका दल निकल जाता था, लोग देखकर घबरा जाते थे। किन्तु राजा सगर को इनसे रत्ती भर भी आराम नहीं मिला। जिस प्रकार अनायास इतने अधिक पुत्रों की उत्पत्ति हुई उसी प्रकार अकल्पित रूप से उन सबका—प्रलय-काल के जीवों की तरह—संहार भी हो गया। राजा सगर हाथ मलते रह गये। संसार का इतना उपकार अवश्य हुआ कि उन्हीं सगर-सुतों के उद्धारार्थ धरातल पर, भगीरथ के प्रयत्न द्वारा, भगवती गङ्गा का आगमन हुआ। यही हाल गान्धारी के बेटों का हुआ। यदि वे धर्मपथ पर चलते तो अपने जनक-जननी को सुख देने के साथ-साथ संसार का भी हित-साधन करते। किन्तु जिस प्रकार एकाएक उनकी उत्पत्ति हुई थी उसी प्रकार धड़ाधड़ उनका बंटाढार भी हो गया। बेचारी गान्धारी के लिए यह एक स्वप्न सा हो गया।

घटोत्कच

हिडिम्बा राक्षसी के गर्भ से भीमसेन के द्वारा इसकी उत्पत्ति हुई थी। घट = हाथी का मस्तक + उत्कच = केशहीन। इसका मस्तक हाथी के मस्तक जैसा और केश-शून्य होने के कारण यह घटोत्कच नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह असल में मिश्र सन्तान था, इस कारण इसमें मनुष्यों और राक्षसों की विशेषताएँ विद्यमान थीं। भीमसेन के साथ हिडिम्बा का संयोग वन में हो गया था और वहीं घटोत्कच का जन्म हुआ था। फलत: पाण्डवों को राज्य की तथा सन्तान की प्राप्ति होने से पहले इसकी प्राप्ति हो गई थी। वनवास के समय पाण्डवों को इससे और इसके जाति-भाइयों से बड़ी सहायता मिली थी। यह पाण्डवों को अपना आत्मीय समझता था और वे भी इस पर पुत्र जैसा स्नेह रखते थे। कुरुक्षेत्र के महासमर में इसने जब कौरवों की सेना के छक्के छुड़ा दिये और शत्रुदल में हाहाकार मच गया तब कौरवों ने घबराकर कर्ण की शरण ली। इसने कर्ण को भी त्रस्त कर डाला। कर्ण के पास इन्द्र की दी हुई एक ऐसी 'शक्ति' थी जो कभी व्यर्थ नहीं हो सकती थी। वह 'शक्ति' कर्ण को बड़ी महँगी मिली थी। वह बड़े संकट के समय भी उसका प्रयोग न करके अर्जुन के प्राण लेने के लिए उसे सँभालकर रक्खे हुए था। किन्तु घटोत्कच ने जब उससे नाकों चने चबवाये तब उसने लाचार होकर वही शक्ति चलाकर घटोत्कच को ठण्डा कर दिया। कर्ण के पास जब तक उक्त 'शक्ति' थी तब तक उसने अर्जुन से भिड़ने की बहुत चेष्टाएँ कीं; किन्तु श्रीकृष्ण ने उसका मनोरथ सफल नहीं होने दिया। वे उसको टालते ही रहे। श्रीकृष्ण की सलाह से घटोत्कच को कर्ण से भिड़ा दिया गया था। वे जानते थे कि कर्ण यदि 'शक्ति' का लोभ करेगा तो घटोत्कच

उसे ले डालेगा और यदि 'शक्ति' चला देगा तो शक्तिहीन हो जाने के कारण उसे अर्जुन मार गिरावेंगे। अन्त में यही हुआ। 'शक्ति' खो बैठने के कारण कर्ण अपने को वैसा तेजस्वी न मानता था।

घटोत्कच के मारे जाने का पाण्डवों को बेहद शोक हुआ। वह उनके लिए ढाल का काम देता था। उन लोगों के बहुत विलाप करने पर श्रीकृष्ण ने कहा कि यह अच्छा हुआ कि वह शत्रु के हाथों मारा गया। यदि वह जीता बच जाता तो मेरे हाथों मारा जाता। इससे जान पड़ता है कि वह बहुत उद्दण्ड हो गया था। घटोत्कच के बेटे का नाम अञ्जनपर्वा था। वह भी बड़ा योद्धा था।

जनमेजय

यह अर्जुन के पौत्र परिक्षित् का बेटा था। राजा परिक्षित् एक बार शिकार खेलने जाकर एक ऋषि का अपराध कर बैठे। इसके फल-स्वरूप उन्हें साँप से डसे जाकर मरने का शाप मिला। शाप का हाल सुनकर काश्यप नामक एक सर्प-विष-चिकित्सक (ओझा) राजा से मिलने को चला। उसने सोचा कि राजा को, साँप के डसते ही, मैं मन्त्र और ओषधि के द्वारा चङ्गा करके मालामाल हो जाऊँगा। रास्ते में उससे तक्षक की भेट हो गई। उसने ओझा के मन्त्र की परीक्षा की और उसे ठीक पाया। तब उसने काश्यप से कहा कि राजा का विष उतारने के झगड़े में तुम क्यों पड़ते हो। तुम्हें सम्पदा चाहिए सो मैं यहीं दिये देता हूँ। तक्षक ने बहुत सी सम्पत्ति देकर काश्यप को लौटा दिया और जाकर राजा को डस लिया।

जनमेजय को ऋषि के शाप से किसी प्रकार की कुढ़न न थी। उन्हें दुःख इस बात का था कि दुष्ट तक्षक ने काश्यप को रास्ते से ही क्यों लौटा दिया। उसके इस अपराध से चिढ़कर जनमेजय ने सारी सर्पजाति को नष्ट कर देने के लिए सर्पयज्ञ का अनुष्ठान ठान दिया। अब क्या था, लगातार सर्प आ-आकर हवन-कुण्ड में गिरने लगे। अपराधी तक्षक डर के मारे इन्द्र की शरण में पहुँचा। अन्त में अपनी रक्षा न देख इन्द्र ने भी उसका साथ छोड़ दिया। इधर वासुकि नाग ने जब अपने भानजे, जरत्कारु मुनि के पुत्र, आस्तीक से नाना के वंश की रक्षा करने का अनुरोध किया तब वे जनमेजय के यज्ञस्थल में जाकर यज्ञ की बेहद प्रशंसा करने लगे। इससे प्रसन्न होकर राजा ने उनको मुँहमाँगी वस्तु देने का वचन दिया। इस पर आस्तीक ने प्रार्थना की कि अब आप इस यज्ञ को यहीं समाप्त कर दें। ऐसा होने पर सर्पों की रक्षा हुई। राजा जनमेजय की रानी का नाम वपुष्टमा था। यह काशिराज सुवर्णवर्मा की राजकुमारी थी।

वास्तव में अपराधी तक्षक नाग था, उसी को दण्ड देना राजा जनमेजय का कर्तव्य था। किन्तु क्रोध में आकर उन्होंने सारी सर्पजाति को नष्ट कर देने का बीड़ा उठाया जो अनुचित था। एक के अपराध के लिए बहुतों को दण्ड देना ठीक नहीं। जिसने अपराध किया था और जिसे दण्ड देने के लिए इतनी तैयारियाँ की गई थीं वह तक्षक अन्त में बेदाग़ बच गया। यह आश्चर्य की बात है।

जयद्रथ

यह सिन्ध के राजा वृद्धक्षत्र का पुत्र था। दुर्योधन की बहन दुश्शला इसे ब्याही गई थी। जिस समय पाण्डव लोग वनवास कर रहे थे उस समय यह द्रौपदी को, अकेली पाकर, ले भागा

था। आश्रम में लौटने पर इस दुर्घटना की ख़बर पाते ही भीमसेन प्रमुख पाण्डवों ने लपककर द्रौपदी का उद्धार किया और दुष्ट जयद्रथ को बाँधकर क़ैद कर लिया। अन्त में युधिष्ठिर ने बहन दु:शला के लिहाज़ से इसे छुड़वा दिया; लेकिन लोगों में अपमानित कराने के लिए इसका मुण्डन करा दिया। जयद्रथ इस अपमान का बदला लेने की घात में लगा रहता था। कुरुक्षेत्र के महायुद्ध मे इसने व्यूह के द्वार की रक्षा पर नियुक्त होकर युधिष्ठिर, भीमसेन, नकुल और सहदेव को परास्त करके भगा दिया था। सात महारथियों ने मिलकर अकेले अभिमन्यु को मार डाला था। उस समय अर्जुन संशप्तकों के युद्ध में उलझे हुए थे। उन्होंने अभिमन्यु के मारे जाने का हाल सुनकर प्रतिज्ञा की थी कि या तो दिन डूबने से पहले जयद्रथ की जीवन-लीला समाप्त कर देंगे नहीं तो आग में कूदकर अपने प्राण दे देंगे। यह ख़बर पाकर जयद्रथ ने रणभूमि से भाग जाने में कुशल समझी; किन्तु कौरवों ने दिलासा देकर उसे रोक लिया। अन्त में श्रीकृष्ण के कौशल के आगे कौरवों का सारा प्रयत्न निष्फल हो गया। अर्जुन ने सूर्यास्त से पहले ही जयद्रथ का सिर उतारकर प्रतिज्ञा पूरी कर ली।

जयद्रथ के पिता वृद्धक्षत्र को यह वरदान मिला था कि जो कोई उसके बेटे जयद्रथ का सिर काटकर पृथ्वी पर गिरावेगा उसके सिर के टुकड़े-टुकड़े हो जायँगे। इसी लिए अर्जुन ने जयद्रथ के सिर को काटकर बाण के द्वारा वृद्धक्षत्र की ही गोद में गिरा दिया। वह उस समय समन्तपञ्चक तीर्थ में तपस्या कर रहा था। वृद्धक्षत्र की गोद से ज्योंही जयद्रथ का मस्तक पृथ्वी पर गिरा त्योंही वृद्धक्षत्र के प्राण निकल गये।

जयद्रथ पाण्डवों से व्यर्थ जलता था। उसके तो जैसे रिश्तेदार कौरव थे वैसे ही पाण्डव भी थे। पाण्डवों ने उसका कुछ अनिष्ट भी नहीं किया था। ऐसी दशा में उसका विपन्न पाण्डवों की स्त्री को ले भागना और भी अनुचित था। वह वीर भी प्रतीत नहीं होता; क्योंकि पाण्डवों से लोहा लेकर द्रौपदी को प्राप्त करने की उसकी हिम्मत नहीं थी। इसके सिवा अभिमन्यु की मृत्यु का बदला लेने की अर्जुन की प्रतिज्ञा को सुनते ही वह, कौरवों की छावनी से, भाग खड़ा हुआ था। यदि वह वीर होता तो ऐसा करके उपहासास्पद न बनता। कौरवों ने उस दिन के युद्ध में जयद्रथ को सब महारथियों के पीछे इस उद्देश्य से रक्खा था कि न तो अर्जुन दिन भर में इतने महारथियों को मार सकेंगे और न जयद्रथ के पास तक पहुँच सकेंगे। फलत: अपनी प्रतिज्ञा के अपूर्ण रह जाने से वे आत्महत्या कर लेंगे और अर्जुन के न रहने पर फिर युधिष्ठिर युद्धभूमि में ठहरने के नहीं। वे सब छोड़-छाड़कर वन में तप करने चले जायँगे। किन्तु श्रीकृष्ण के आगे कौरवों की एक न चली और दु:शला के विधवा होने की ख़बर पाकर धृतराष्ट्र को अपार शोक करना पड़ा। जयद्रथ का लड़का भी कायर था।

जरासन्ध

यह मगध के महीपाल बृहद्रथ का पुत्र था। बृहद्रथ ने काशिराज की जुड़वाँ (यमज) बेटियों से विवाह किया था। उनके बहुत दिनों तक सन्तान नहीं हुई। एक दिन राजा को ख़बर मिली कि काक्षीवान् गौतम के पुत्र महात्मा चण्डकौशिक मगध की राजधानी के पास ही एक वृक्ष के नीचे ठहरे हुए हैं। यह ख़बर पाते ही राजा बृहद्रथ अपनी दोनों रानियों को साथ ले उनकी शरण में पहुँचे। राजा

की सन्तान-सम्बन्धी प्रार्थना सुनते समय ऋषि की गोद मे अकस्मात् पेड़ से एक आम टपककर गिरा। महर्षि ने राजा को वह आम देकर कहा कि इस फल को खाने से तुम्हारी रानियाँ गर्भवती हो जायँगी। महल में पहुँचने पर राजा ने वह आम रानियों को दे दिया। दोनों ने आधा-आधा फल खा लिया। यथासमय उन दोनों के एक विचित्र सन्तान उत्पन्न हुई। अर्थात् आधे सिर, एक हाथ, आधे पेट और एक पैर का ढाँचा एक रानी के गर्भ से निकला और इतने का ही ढाँचा दूसरी के गर्भ से। रानियों की आज्ञा से दासी इस अद्भुत सन्तान को एक चौराहे पर रख आई। अकस्मात् उस रास्ते से जरा नाम की एक राक्षसी निकली। इस विलक्षण सन्तान को कौतुक से देखकर उसने योंही दोनों हिस्सों को जोड़ दिया तो वह सलोना बालक बन गया। जरा ने राजा के पास जाकर वह बालक उन्हें सौंप दिया। बालक को 'जरा' ने 'सन्धित' (संयुक्त) किया था, इससे उसका नाम जरासन्ध पड़ा।

समय आने पर बृहद्रथ अपने बेटे को राज-पाट सौंपकर तप करने चले गये। जरासन्ध थोड़े ही समय में बड़ा प्रभावशाली हो गया। उसकी दो राजकुमारियाँ थीं। उनका विवाह मथुरा के राजा कंस के साथ हुआ था। ससुर की सहायता पाकर ही कंस ने अपने पिता उग्रसेन को क़ैद करके उससे राजगद्दी छीन ली थी। श्रीकृष्ण के हाथों कंस के मारे जाने पर जरासन्ध ने अपने चतुर मन्त्री हंस और डिम्भक की सहायता से श्रीकृष्ण पर आक्रमण किया था। उस समय श्रीकृष्ण ने चतुराई से काम लिया। वे भागकर द्वारका नगरी में चले गये। तभी से जरासन्ध के साथ उनकी शत्रुता हो गई। जरासन्ध ने मथुरा पर लगातार सत्रह हमले किये थे। राजा युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ करने से पहले जरासन्ध को परास्त करने का विचार किया। इसके लिए श्रीकृष्ण, भीमसेन और अर्जुन ने मगध की राजधानी में पहुँचकर अपने को स्नातक ब्राह्मण बतलाया। उन लोगों ने नगर में पहुँचते ही तीन प्रसिद्ध नक़्क़ारों को तोड़-फोड़ डाला।

जब ये लोग महल में पहुँचे तब जरासन्ध ने पाद्य, अर्घ्य आदि के द्वारा इनका स्वागत करके कुशल-प्रश्न किया। उस समय अर्जुन और भीमसेन चुप हो रहे। उनको मौनी बतलाकर श्रीकृष्ण ने कहा कि ये आधीरात के बाद मौन तोड़ेंगे। इस पर जरासन्ध इन लोगों को यज्ञशाला में ठहराकर अन्त:पुर में चला गया। आधी रात को आकर उसने जो इन लोगों का विचित्र वेष देखा तो उसे बड़ा अचम्भा हुआ। इसके लिए उसने इन लोगों को उलहना दिया। श्रीकृष्ण ने जरासन्ध के किये हुए आक्षेपों का उत्तर देकर अपना वास्तविक परिचय दिया।

बैठे-बिठाये झगड़ा मोल लेने का कारण पूछने पर श्रीकृष्ण ने कहा कि तुम अपने को सबसे श्रेष्ठ योद्धा समझते हो, अर्थात् अभिमानी हो। इसके अलावा तुमने बहुत से राजाओं को बलिदान करने के लिए क़ैद कर रक्खा है। यह सुनकर जरासन्ध युद्ध करने के लिए तैयार हो गया। उसने अपने बेटे का अभिषेक करके प्रजा की रक्षा का कार्य उसको सौंप दिया और इन लोगों से कहा कि मेरी सेना से अपनी फ़ौज को लड़ाना चाहो तो वैसा करो और मुझसे लड़ना चाहो तो मुझसे लड़ो। चाहे तीनों; चाहे कोई एक। अन्त में भीमसेन उससे भिड़ने को खड़े किये गये।

कार्तिक बदी प्रतिपदा से लेकर लगातार चौदह दिन-रात तक युद्ध होता रहा। इस दोनों में से न तो किसी ने कुछ खाया-पिया और न विश्राम ही किया। अन्तिम रात के समय

जरासन्ध को थकावट मालूम हुई। उसने थोड़ी देर के लिए युद्ध रोककर विश्राम करना चाहा तो श्रीकृष्ण ने भीमसेन को ऐसा करने से संकेत द्वारा रोक दिया। थक जाने से जरासन्ध पहले की भाँति युद्ध न कर सकता था। यह देख भीमसेन ने उसे घुमाकर पछाड़ दिया और उसकी रीढ़ की हड्डी तोड़ने के बाद उसकी टाँग पकड़कर, चीरकर, दो टुकड़े कर दिये।

जरासन्ध के मर जाने पर तीनों योद्धा गिरिव्रज की उस खोह में गये जहाँ विजित राजा लोग क़ैद किये गये थे। उन लोगों को छुटकारा देकर वे गिरिव्रज से बाहर आये। अब सभी लोग हस्तिनापुर गये। जरासन्ध के मारे जाने की सूचना पाकर युधिष्ठिर बहुत प्रसन्न हुए।

जरासन्ध जैसा कुशल प्रजापालक था वैसा ही साहसी योद्धा था। उसकी प्रजा चैन की बंसी बजाती थी। नगरी की रक्षा इतने अच्छे ढँग से की जाती थी कि शत्रु उस पर आक्रमण नहीं कर सकता था। इसी से श्रीकृष्ण और भीमसेन आदि राजमार्ग होकर बस्ती के भीतर नहीं गये। यदि वे राजधानी के फाटक में होकर भीतर जाते तो यहीं से पूछ-ताछ होने लगती और आश्चर्य नहीं कि जरासन्ध से भेंट होने के पहले ही मार-काट मच जाती। इस दशा में सरलता से जरासन्ध को मार लेना कदाचित् सम्भव न होता। फिर श्रीकृष्ण को तो उसकी वीरता का अनुभव था भी। इसी से वे बग़ल से बस्ती में घुस गये। जरासन्ध ने श्रीकृष्ण को जैसा आड़े हाथों लिया है उससे प्रकट होता है कि वह नीति-निपुण नरेश था। श्रीकृष्ण ने उसको उत्तर दिया है सही, किन्तु वह उनके उपयुक्त और सारगर्भ नहीं है। श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को क्षत्रियों की रक्षा का ज़िम्मेदार बतला-कर कहा है कि हम लोग उनकी आज्ञा से उन राजाओं को छुटकारा देने आये हैं जिनको जीतकर तुमने क़ैद कर रक्खा है और जिनका तुम बलिदान करना चाहते हो। इस प्रसङ्ग में श्रीकृष्ण ने नरबलि की निन्दा करके जरासन्ध को ऐसे क्रूर कर्म का आयोजन करने के लिए ख़ासी फटकार बतलाई है।

जरासन्ध ने अपने पक्ष के समर्थन में कहा है कि मैंने उन्हीं राजाओं को क़ैद किया है जिनको मैं परास्त कर चुका हूँ। यह तो विजेता की मर्ज़ी है कि वह पराजित के साथ चाहे जैसा बर्ताव करे।

इस प्रसङ्ग पर न तो अर्जुन से ही कुछ बातचीत करते बन पड़ी है और न भीमसेन से ही। हस्तिनापुर से चलते समय श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा ही था कि मेरी हिकमत और भीमसेन के बल से ही जरासन्ध मारा जायगा। वही हुआ। उत्तर-प्रत्युत्तर श्रीकृष्ण ने किया और मार-धाड़ के लिए भीमसेन मौजूद रहे।

जान पड़ता है कि उस युग में नर-बलि की प्रथा थी। ऐसा न होता तो जरासन्ध जैसा चतुर राजा इतने राजाओं का बलिदान करके शङ्कर भगवान् को सन्तुष्ट करने की इच्छा क्यों करता? नर-बलि का अनौचित्य प्रमाणित करने पर वह श्रीकृष्ण को युक्तिसङ्गत उत्तर दे भी नहीं सका। ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीकृष्ण के बदले यदि कोई दूसरा व्यक्ति जरासन्ध से क़ैदी राजाओं के छोड़ देने का प्रस्ताव करता तो कदाचित् वह मान भी जाता; क्योंकि नर-बलि का औचित्य प्रमाणित करने को वह कोई बढ़िया दलील नहीं दे सका। किन्तु एक तो श्रीकृष्ण से उसकी पुरानी शत्रुता चली आ रही थी, दूसरे अब तक उसने किसी से नीचा नहीं देखा था, तीसरे उसको धमकाकर क़ैदी छोड़

देने के लिए कहा गया था। इसमें उसका हेठो समझना ठीक ही जान पड़ता है। इस समय उसके सामने दो ही मार्ग थे। वह या तो कैदी राजाओं को छुटकारा देकर अपने पुराने शत्रु श्रीकृष्ण की बात मानता या फिर डटकर लोहा लेता। सो उसने दूसरे मार्ग को ही पसन्द किया। उसे काफ़ी आत्मविश्वास था; क्योंकि आज तक उसने किसी से हार नहीं मानी थी। किन्तु इस युद्ध मे हमें उसकी कुछ कमज़ोरी देख पड़ती है। इसका कारण शायद उसकी अधिक अवस्था है। अब उसके आत्मविश्वास में न्यूनता न आ गई होती तो वह अपने बेटे का अभिषेक क्यों कर देता। कुछ भी हो, वह वीर और शिष्टाचार-परायण था। अपनी प्रजा के सुख-स्वाच्छन्द्य की ओर दृष्टि रखता था।

दुर्योधन

यह धृतराष्ट्र के सौ लड़कों में सबसे बड़ा था। दुर्योधन और उसके भाई दुश्शासन, दुःसह तथा दुश्शल प्रभृति बड़े ही कुटिल और क्रूर थे। धृतराष्ट्र के लड़के और पाण्डु के बेटे बचपन में साथ-साथ खेलते-कूदते थे। इनमें कोई भी भीमसेन की बराबरी नहो कर पाता था। इससे दुर्योधन पाण्डवों से कुढ़ने लगा। एक बार उसने भीमसेन को मिठाई में मिलाकर विष खिला दिया। किन्तु इससे भीमसेन के प्राण जाने के बदले उनका उपकार ही हुआ।

भीष्म पितामह ने कौरवों और पाण्डवों की अस्त्रशिक्षा का भार द्रोणाचार्यजी को सौंपा। वहाँ इन लोगों के साथ-साथ आचार्य से औरों ने भी यह विद्या सीख ली। अर्जुन को अस्त्रशिक्षा में सबसे अधिक सफलता प्राप्त करते देख दुर्योधन पाण्डवों से और भी लाग-डाँट रखने लगा। अन्त में जब कुमारों की अस्त्रशिक्षा की परीक्षा हुई और उसमें अर्जुन को ही सफलता मिली तब दुर्योधन को बहुत दुःख हुआ। उस समय उसने कर्ण को खड़ा करके अर्जुन को नीचा दिखाना चाहा किन्तु कृपाचार्य ने उस अवसर को टाल दिया। इसके एक वर्ष बाद धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को युवराज बना दिया। अब पाण्डवों ने उस यवनराज सौवीर को युद्ध मे मार गिराया जिसको महाराज पाण्डु भी पराजित नहीं कर पाये थे। इसके बाद उन लोगों ने अनेक देशों को जीता और वहाँ से बहुत सा धन लाकर कुरुराज के अर्पण किया। इससे धृतराष्ट्र को प्रसन्न होना चाहिए था; किन्तु हुए वे मन में खिन्न। इधर दुर्योधन आदि कौरव लोग पाण्डवों की उन्नति देख-देखकर कुढ़ते और उनका अनिष्ट करने की घात में लगे रहते थे। अब दुर्योधन, शकुनि, दुश्शासन और कर्ण ने एक तदबीर सोची और धृतराष्ट्र से सलाह करके पाण्डवों को कुन्ती समेत घर मे फूँक देने का मन्सूबा बाँधा। सारी तैयारी बड़ी होशियारी से की गई; किन्तु विदुर की चतुराई से पाण्डव साफ़ बच गये। मकान में आग ज़रूर लगाई गई जिसमें दुर्योधन का विश्वस्त कर्मचारी पुरोचन स्वाहा हो गया किन्तु पाण्डव लोग सुरङ्ग की राह वहाँ से निकल भागे और माँगते खाते महाराज द्रुपद के राज्य में जा निकले जहाँ उनको अपूर्व सुन्दरी द्रौपदी की प्राप्ति हो गई। इससे उनके भाग्य का पासा पलट गया।

जासूसों के द्वारा पाण्डवों के जीवित बच जाने की ख़बर पाकर धृतराष्ट्र मन में तो दुखी हुए; पर दिखाने को उन्होंने प्रसन्नता प्रकट की। विदुर की सलाह मानकर उन्होंने बहू समेत पाण्डवों

को बुला भेजा। उन्होंने राज्य के दो हिस्से कर दिये और युधिष्ठिर से कहा कि तुम खाण्डवप्रस्थ में अपनी राजधानी बना लो। युधिष्ठिर ने अपने राज्य का भली भाँति प्रबन्ध कर लेने के बाद राजसूय यज्ञ करने का आयोजन किया। पाण्डवों ने इस यज्ञ के उपलक्ष में दिग्विजय करके बहुत सा धन एकत्र किया। बड़ी धूम-धाम से यज्ञ किया गया। यज्ञ में पाण्डवों की अपूर्व सम्पत्ति और उनका दबदबा देखने से दुर्योधन को बड़ा क्लेश हुआ। न तो उसको भोजन अच्छा लगता था और न नींद ही आती थी। अब ये लोग ऐसा उपाय सोचने लगे जिससे पाण्डवों की सारी सम्पत्ति और प्रभुता पर इनका अधिकार हो जाय। अन्त में शर्त बदकर जुआ खेलने की ठानी। इसमें युधिष्ठिर की हार हुई। युधिष्ठिर दाँव में जिस चीज़ को रखते थे उसी को हार जाते थे। कुछ न रहने पर उन्होंने अपनी पत्नी द्रौपदी को दाँव पर लगाया तो उसे भी खो बैठे। जुए में जीती गई द्रौपदी को सभा में बुलवाकर उसका अपमान करने में दुर्योधन ने कोई बात उठा नहीं रक्खी। अन्त मे यह तय पाया कि पाण्डव लोग बारह वर्ष तक तो वनवास करें और एक वर्ष छिपकर रहें। यदि अज्ञातवास के समय उनका पता लग जाय तो फिर वनवास का सिलसिला शुरू हो जाय। इस प्रकार दोनों दलों के बीच मनोमालिन्य घटने के बदले बढ़ता ही गया।

वनवास मे पाण्डवों ने बड़ी कठिनाइयाँ झेलीं। अन्त में एक वर्ष तक अज्ञातवास भी किया। राजा विराट के यहाँ छिपकर रहते समय भीमसेन ने राजा के दुर्दान्त सेनापति कीचक को खपा दिया। इस समाचार से उत्साहित हो कौरवों ने राजा विराट पर छापा मारकर उनका गोधन छीन लिया। मतलब यह था कि यदि वहाँ पाण्डव होंगे तो राजा की ओर से उन्हें अवश्य युद्ध करना पड़ेगा। इस तरह अज्ञातवास में पकड़े जाने से उन्हें दुबारा वनवास करना पड़ेगा और यदि वहाँ पाण्डव न हुए तो विराट का गोधन हाथ लगेगा। क्योंकि कीचक के न रहने से कोई कौरवों का सामना करनेवाला वहाँ नहीं रह गया था। किन्तु कौरवों को पराजित होकर अपना सा मुँह ले भाग जाना पड़ा। अपने यहाँ पाण्डवों के रहने की सूचना पाकर विराट ने उन लोगों का ख़ासा स्वागत किया। उन्होंने अपनी बेटी उत्तरा का विवाह अभिमन्यु के साथ कर दिया। द्रौपदी के सम्बन्ध से पाण्डवों को महाराज द्रुपद की सहायता पहले से ही प्राप्त थी, अब उत्तरा का सम्बन्ध हो जाने से उन्हें विराट का भी बल मिल गया।

पाण्डवों ने अब धृतराष्ट्र से अपना राज्य वापस माँगा तो दुर्योधन आग-बबूला हो गया। उसने कहा, युद्ध के बिना मैं उतनी भी धरती नहीं दूँगा जितनी सुई की नोक पर आ सकती है। अन्त में युद्ध छिड़ा जिसमें भीमसेन के हाथ से दुर्योधन के सभी भाई मारे गये। अपने पक्ष का विनाश हो जाने पर दुर्योधन भाग खड़ा हुआ और पूर्व दिशा के द्वैपायन ह्रद में जाकर छिप रहा। किन्तु पता लगाकर पाण्डव वहीं जा पहुँचे। वहाँ भीमसेन ने उसको, जाँघें तोड़कर, मार गिराया। पापी दुर्योधन को इस प्रकार उसकी करनी का फल मिल गया।

दुर्योधन शरीर से बड़ा हृष्ट-पुष्ट था। उसका नाभि से ऊपर का भाग वज्र की भाँति कठोर था और नाभि से नीचे का भाग कोमल था। शायद कोई बीमारी रही हो। गदायुद्ध उसने बलदेवजी से सीखा था। भीमसेन ने भी यह विद्या उन्हीं से सीखी थी। पाण्डवों के वनवास के समय

भीमसेन को गदायुद्ध का अभ्यास करने का सुभीता नहीं था; किन्तु दुर्योधन ने भीम की लोहे की मूर्ति बनवाकर उस पर गदा की चोटें जमाते रहकर अपना हाथ खूब जमा लिया था। इसका उसे अभिमान भी था और बलदेवजी ने कहा भी था कि अभ्यास की दृष्टि से दुर्योधन भीमसेन की अपेक्षा बीस पड़ेगा। युद्ध के समय यदि भीमसेन गदायुद्ध के नियम का उल्लंघन करके दुर्योधन की टाँगें न तोड़ देते तो उसको जीत न पाते। किन्तु इस नियम का तोड़ा जाना अनिवार्य था। एक तो भीमसेन कौरव-सभा में द्रौपदी की धर्षणा के समय दुर्योधन की जाँघ तोड़ने की प्रतिज्ञा कर चुके थे, दूसरे उसे इस विषय का शाप भी मैत्रेय मुनि से मिल चुका था। वह देवताओं की पूजा और हवन आदि किया करता था। उसको मन्त्र की सिद्धि थी जिसके बल पर वह कई बार करामातें दिखा चुका था। वह प्रज्वलित अग्नि को मन्त्र-बल से शान्त कर सकता, फटी हुई पृथ्वी अथवा गिरिशृङ्गों को जोड़ सकता और आँधी-पानी को रोककर प्रजा का भला कर सकता था। उसने बड़ी शान के साथ कहा है—"मैं पानी को रोक देता हूँ तो उसके ऊपर से फ़ौज मज़े में जा सकती है। मैं अक्षौहिणी सेना लेकर काम से जिन देशों में जाता हूँ वहाँ, जहाँ चाहता हूँ वहीं जल प्रकट हो जाता है। मेरे राज्य में साँप आदि भयकर जीव नहीं देख पड़ते। मेरे मन्त्र-बल से रक्षित प्राणियों को हिंसक जीव नहीं सताते। मेरे राज्य में सदा समय पर वर्षा होती है। मेरी प्रजा अपने धर्म का पालन करती है।"

दुर्योधन जैसा शरीर से शक्तिशाली था वैसा ही देवताओं का भक्त, प्रजा-रक्षक और चतुर भी था। नकुल और सहदेव के मामा मद्रराज शल्य अपनी सेना लेकर पाण्डवों की सहायता करने को मंज़िलें तय करते चले जा रहे थे। किन्तु दुर्योधन ने चतुराई से रास्ते में सब मंज़िलों पर उनकी खातिरदारी कराई और उन्हें स्वप्न में भी यह न मालूम होने दिया कि यह सेवा किसकी ओर से की जा रही है। अन्त में पता चलने पर शल्य को खेद हुआ कि क्यों उन्होंने विपक्षी का नमक खा लिया। इस प्रकार दुर्योधन ने पाण्डवों के एक नामी योद्धा को फोड़ लिया था। उसकी यह भी चाल थी कि किसी तरह युधिष्ठिर को क़ैद कर लेने से लड़ाई तो बन्द हो जायगी किन्तु पाण्डवों को कुछ न मिलेगा। इसके लिए उसने भरपूर प्रयत्न भी किया था किन्तु सफल नहीं हो सका। वह बड़ा निडर योद्धा था। युद्ध उसके लिए एक खेल था। हम तो यह समझते हैं कि वह पाण्डवों की अपेक्षा न तो निर्बल था और न बुद्धिहीन। हाँ, उसमें विवेक की मात्रा अवश्य कम थी। उसके साथियों में भी कोई श्रीकृष्ण जैसा दूरन्देश नहीं था। जो बड़े-बूढ़े लोग उसे अच्छी सलाह देते थे उसको वह पाण्डवों के पक्षपात से परिपूर्ण समझकर अग्राह्य कर देता था। यह ठीक है कि वह महत्त्वाकांक्षी और अभिमानी था। किन्तु राजा में यदि ये दोनों बातें, विशेष परिमाण में, न हों तो उसका राज्य बर्बाद हो जाय। क्या पाण्डवों मे महत्त्वाकांक्षा न थी, क्या भीमसेन ने डींगें नहीं हाँकी हैं? यह ऐसा दोष है जो, किसी न किसी रूप में, सब में होता है। इसके लिए दुर्योधन को दोष नहीं दिया जा सकता। कहा जाता है कि उसने पाण्डवों को पाँच गाँव मात्र देकर समझौता क्यों नहीं कर लिया। तो वह ऐसी भूल कैसे करता? वह एक बार देख चुका था कि पाण्डवों ने राज्य का हिस्सा पाते ही कैसी क्या उन्नति कर ली थी। सारे राजाओं पर उन्हीं का सिक्का जम गया था। धन-दौलत भी काफ़ी हो गई थी और इसी की ऐंठ में आने के कारण भीमसेन को

दुर्योधन से यह कहने का साहस हुआ था कि अन्धे का बेटा अन्धा ही होता है। उसी पुरानी स्मृति को याद करके उसने यह निश्चय कर लिया था कि या तो पाण्डव ही राज्य करेंगे या मैं।

अपने भाइयों के साथ दुर्योधन बड़ा अच्छा बर्ताव करता था। फिर भी ऐसा भाव रखता था जिसमें वे उसके आज्ञावाहक बने रहें—कोई उद्दण्डता न कर बैठें। समय से पहले अधिकार पा जाने के कारण वह हठी अवश्य हो गया था और भूल करने पर भी आँखें नहीं खोलता था। माता-पिता समझा-समझाकर थक जाते थे, ऋषि-मुनि उपदेश दे-देकर हार मान बैठते थे और वंश के मुखिया पितामह भीष्म और आचार्य द्रोण के उपदेश भी उस पर कारगर नहीं होते थे। यदि उसमें यह दोष न होता, यदि उसमें थोड़ी सी सहनशीलता भी होती, तो उसका जीवन आज हमें दूसरे ही रूप मे मिलता। मरते दम तक उसने हठ नहीं छोड़ा। धृतराष्ट्र और गान्धारी ने उसे समझाया कि सभी सेना मर-खप गई तो इसकी चिन्ता नहीं, सब भाई मार डाले गये तो उसकी भी कुछ परवा नहीं, तू हमारी बात मानकर युधिष्ठिर से समझौता कर ले। हम लोगों की बात को युधिष्ठिर कभी न टालेंगे। तुझे शान्ति के लिए प्रार्थना न करनी पड़ेगी। यह भार हम लेते हैं। यह सुनकर दुर्योधन ठठाकर हँसा। उसने कहा कि मेरे हठ की रक्षा करने को सैकड़ों राजा लोग मर मिटे, मेरे भाई मारे गये और अभिन्नहृदय मित्र कर्ण भी जीवित नहीं रहा। मैंने सदा जिनको नाकों चने चबवाये हैं उन पाण्डवों से दबकर मैं अब राज्य करूँगा! यह श्मशान का राज्य उन्हीं को मुबारक हो। अपने सगे-सम्बन्धियों की विधवाओं का रुदन सुन-सुनकर वे ही प्रसन्न हों। मैं तो अपनी टेक पर प्राण देनेवाला हूँ। पीछे पैर रखना मैंने सीखा ही नहीं। जिन्होंने मेरे लिए प्राण दिये हैं उनके बिना इस लोक में मुझे अच्छा नहीं लगता। वे मेरी मैत्री का स्मरण करके मुझे बुला रहे हैं। मैं उनका साथ नहीं छोड़ सकता।

दुर्योधन के लिए हमको दुःख है तो यही कि उसके कारण उसके माता-पिता का जीवन नीरस हो गया। नहीं तो वह जब तक जिया, आनन्द से रहा। उसके मित्रों तक ने उसकी बदौलत सुख लूटे। उसने अपने शत्रुओं को ऐसा छकाया कि जिसका नाम और मरा तो स्वर्ग में भी उसने ऐसा सुन्दर स्थान प्राप्त किया जिसको देखकर युधिष्ठिर को कुढ़न हुई और देवताओं को समझाना पड़ा कि महाराज, यह स्वर्ग है, यहाँ पर मानव-स्वभावोचित ईर्ष्या-द्वेष आदि को अपने हृदय मे स्थान देना ठीक नहीं।

द्रुपद

राजा द्रुपद (यज्ञसेन) आराम से राज्य कर रहे थे। उन्हें किसी ओर से किसी प्रकार की आशङ्का न थी। ऐसे ही समय कौरव-राजकुमारों ने, अपने आचार्य को प्रसन्न करने के लिए, पाञ्चालराज पर आक्रमण कर दिया। अपने भाई-भतीजों और सैनिकों को साथ लेकर राजा ने शत्रु को मार भगाया। वे कदाचित् विजयी होकर मन में प्रसन्न हो रहे होंगे कि इसी समय उन पर एक और टुकड़ी टूट पड़ी। पहले तो उन्होंने इस टुकड़ी की कुछ परवा नहीं की; किन्तु पीछे से उन्हें पता चला कि ये लोग संख्या में कम होने पर भी बहुत प्रबल हैं। जब तक वे इन लोगों से भिड़ने को भली भाँति

घर बैठे आफ़त मोल लेता है ! झगड़ा लोभ के कारण हुआ। एक राज्य माँगता था, दूसरा नाहीं करता था। अन्त मे "जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाली लोकोक्ति चरितार्थ हुई।

राजा द्रुपद अच्छे योद्धा थे। युद्ध में उन्होंने अपने अनुरूप वीरता दिखलाई। उनके नाती-पोतों ने भी डटकर युद्ध किया। किन्तु यह स्वीकार करना पड़ेगा कि द्रुपद की अपेक्षा द्रोणाचार्य शक्तिशाली थे, इसी कारण युद्ध में उनके हाथ से मारे जाकर राजा द्रुपद ने वीर-गति पाई। कुरुक्षेत्र के युद्ध में द्रुपद का महत्त्व न तो शूरता दिखाने में है और न पाण्डवों की सहायता करने में ही। उनका महत्त्व तो इसलिए है कि वे धृष्टद्युम्न जैसे प्रधान सेनापति तथा द्रौपदी जैसी मनस्विनी महिला के जनक थे। शिखण्डी भी उन्हीं का पुत्र था जिसके कारण भीष्म पितामह की मृत्यु हुई। यदि वे अपनी धुन के पक्के न होते, यदि उन्होंने निश्छल भाव से ब्राह्मणों की सेवा करके अनुष्ठान न कराया होता, तो किसी भी दशा में अपने विपक्षी द्रोणाचार्य से बदला लेने में उन्हें सफलता न मिलती। द्रोणाचार्य और द्रुपद के झगड़े मे हमें ब्राह्मण-क्षत्रिय के उस विद्वेष की झलक नहीं देख पड़ती जो विश्वामित्र और वशिष्ठ के विवाद में विद्यमान है। यह तो दो मित्रों का लोभमूलक झगड़ा है।

द्रोणाचार्य

घृताची अप्सरा को नग्न रूप में देखने से भरद्वाज ऋषि के मन मे जो विकार उत्पन्न हुआ उसी के फल-स्वरूप द्रोण का जन्म हुआ। ऋषि-पुत्र होने के कारण आश्रम में ही इनके सब संस्कार हुए। महर्षि अग्निवेश्य से इन्होंने और राजकुमार द्रुपद ने धनुर्विद्या सीखी। इस दृष्टि से ये दोनों गुरुभाई थे। थी भी उस समय इनमें गाढ़ी मित्रता।

समय बदल गया। राजा पृषत के मरने से द्रुपद को राजपाट सँभालना पड़ा और ऋषि भरद्वाज के न रहने पर द्रोण के ऊपर आश्रम का उत्तरदायित्व आ पड़ा। द्रोण ने बहुत समय तक अध्ययन और तप किया। इसके पश्चात् उन्होंने अपने पिता की इच्छा के अनुसार, सन्तान उत्पन्न करने के लिए, कृपाचार्य की बहन कृपी के साथ विवाह कर लिया। अब उनके एक पुत्र भी हो गया। उसका नाम अश्वत्थामा था। द्रोणाचार्य के पास कुछ धन-सम्पत्ति न थी। वे ग़रीबी से जीवन बिताते थे। एक दिन इनके बेटे ने अन्य ऋषि-कुमारों को दूध पीते देखा तो वह घर आकर दूध के लिए मचल गया। उस समय उसे किसी प्रकार बहलाकर द्रोण ने किसी अग्निहोत्री से यथाविधि गोदान पाने के लिए बहुत चेष्टा की, परन्तु गौ न मिली, न मिली। इधर अश्वत्थामा दूध के लिए हठ किया करता था। तब उन्होंने एक युक्ति से काम लिया। चावलों को पीसकर पानी में घोल देने से पानी दूध सा सफ़ेद हो जाता है। वही पानी अश्वत्थामा पी लेता और ख़ुशी से उछलता तथा कहता कि हमने दूध पिया है। यह देखकर पड़ोसियों ने द्रोण की निर्धनता की निन्दा की। इससे दुखी होने पर उन्हें बाल्यबन्धु द्रुपद की याद आई।

इसी बीच ख़बर मिली कि परशुरामजी अपना सर्वस्व ब्राह्मणों को दान कर रहे हैं। यह ख़बर पाते ही द्रोणाचार्य अपने ब्रह्मचारी शिष्यों को साथ ले महेन्द्राचल पर पहुँचे। द्रोणाचार्य के अपना परिचय दे चुकने पर परशुरामजी ने उनसे कहा कि आपने देर कर दी। मैंने सब कुछ दे

डाला। अब तो शरीर और अस्त्रों के सिवा मेरे पास कुछ नहीं बचा। द्रोणाचार्य को परशुरामजी से उत्तम अस्त्र प्राप्त करने का यह अच्छा अवसर मिल गया। उन्होंने प्रयोग, उपसंहार और रहस्य सहित सब अस्त्र प्राप्त कर लिये। अब भूमण्डल पर द्रोणाचार्य के जोड़ का कोई भी अस्त्रज्ञ नहीं रह गया। इसके अनन्तर ही वे राजा द्रुपद के यहाँ धन की इच्छा से गये। उन्होंने सोचा कि वहाँ जाने से कामना पूर्ण हो जायगी। उत्तर-पाञ्चाल की राजधानी में पहुँचकर उन्होंने राजा को अपना परिचय देते हुए जो मिलने के लिए भुजाएँ फैलाईं तो ख़ासी फटकार सुननी पड़ी। राजा द्रुपद ने साफ़ कह दिया कि तुममें अब तक लड़कपन बना हुआ है, तभी तो मुझे अपना मित्र बताते हो। किसी निर्धन के साथ कहीं राजा की मित्रता हो सकती है? मैं तुमको कोई रियासत नहीं दे सकता। हाँ, एक दिन अच्छी तरह इच्छा-भोजन करा सकता हूँ।

इस अपमान से कुढ़े हुए द्रोण वहाँ से चलकर हस्तिनापुर में आये और अपने साले कृपाचार्य के यहाँ गुप्त रूप से रहने लगे। कृपाचार्य उस समय कौरव-पाण्डवों को शिक्षा दिया करते थे। एक बार विलक्षण रीति से भीष्म पितामह के साथ द्रोणाचार्य का परिचय हो गया। वे राजा के यहाँ बड़े सम्मान के साथ अस्त्र-शिक्षक नियुक्त कर लिये गये। उन्होंने उस समय भीष्म से सेवा-वृत्ति की बड़ी निन्दा करके कहा है कि मैं निर्धन रहना पसन्द कर लेता, किन्तु प्रतिहिंसा से प्रेरित होकर ही नौकरी करने को उद्यत हुआ हूँ।

अस्त्र-शिक्षा देते समय द्रोणाचार्य अपने पुत्र अश्वत्थामा को भी धनुर्वेद सिखलाते जाते थे और उसे बहुत अच्छे प्रयोग सिखलाने के लिए उन्होंने मौक़ा भी ढूँढ़ लिया। वे अपने छात्रों को पानी भर लाने के लिए घाट पर भेज देते थे। सबको तो जल लाने के लिए एक-एक कमण्डलु देते थे जिसका मुँह छोटा होने से देर में जल भरता था और अश्वत्थामा को घड़ा देते थे जिसमें पानी झटपट भर जाता था। इसलिए वह सबसे पहले पहुँचता और एकान्त में ऐसे-ऐसे श्रेठ प्रयोग सीख लेता था जिन्हें और शिष्य नहीं जानते थे। इस बात को अर्जुन ने जल्दी ताड़ लिया। इसलिए वे वारुणास्त्र द्वारा झटपट अपना कमण्डलु भरकर अश्वत्थामा के साथ ही गुरु के पास पहुँच जाते थे। इस कारण विशेष अस्त्रों की शिक्षा में वे अश्वत्थामा से पीछे नहीं रहे।

कौरव-पाण्डवों को धनुर्वेद की शिक्षा दे चुकने पर आचार्य ने अन्त में अपने छात्रों से गुरु-दक्षिणा माँगी। और लोग तो दक्षिणा की स्वीकृति देते अकचकाये पर अर्जुन तैयार हो गये। द्रोणाचार्य ने गुरु-दक्षिणा में न धन-दौलत माँगी, न राज-पाट। उन्होंने कहा कि राजा द्रुपद को पकड़कर मेरे पास ले आओ। अब सभी छात्र, गुरु को प्रसन्न करने के लिए, अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित होकर द्रुपद पर चढ़ दौड़े। घोर संग्राम हुआ। इस आक्रमण के कारण द्रुपद की प्रजा की भी बड़ी हानि हुई। द्रुपद को पकड़ने की प्रबल चेष्टा पहले कौरवों ने की; किन्तु कोई भी राजा की मार के आगे टिक न सका। कर्ण आदि सभी के छक्के छूट गये। प्रजा ने भी, जिसको जो लाठी सोंटा मूसल आदि मिला वही लेकर, अपने विपक्षियों को मारा पीटा। जब कौरवों के किये कुछ न हुआ तब पाण्डवों ने गुरु से आशीर्वाद लेकर द्रुपद पर हमला बोला। अधिक लोगों से युद्ध करते-करते द्रुपद और उनके साथी थक चुके थे, इसके सिवा विजय प्राप्त होने की प्रसन्नता ने भी उन्हें कुछ शिथिल कर दिया था

कि इसी समय पाण्डवों ने प्रबल आक्रमण कर दिया। द्रुपद ने युद्ध तो जमकर किया, किन्तु अर्जुन ने अन्त में उन्हें पकड़कर अपने गुरु द्रोणाचार्य के आगे ला खड़ा किया। इसे होनहार ही कहना चाहिए कि जिन द्रुपद को हराकर अर्जुन ने बाँध लिया था उन्हीं की बेटी द्रौपदी पाण्डवों की पत्नी हुई और जिन द्रोण के हित के लिए पाण्डवों ने इतना प्रयत्न किया वही उनके विपक्ष में होकर लड़े।

पराजित राजा द्रुपद को अपने सामने देखकर द्रोणाचार्य ने उनसे कहा—मैंने तुम्हारा नगर लूट लिया है, तुम्हारा राज्य भी छीन लिया है। इस समय तुम मेरे अधीन हो। पुरानी मित्रता के लिहाज़ से तुम इस समय मुझसे क्या चाहते हो? फिर कहा कि तुम डरो मत; मैं तुम्हारे प्राण नहीं लेने का। क्षमाशील ब्राह्मण प्राण ले भी तो नहीं सकता। मैं तुमसे वही लड़कपन की मित्रता जोड़ना चाहता हूँ। किन्तु यह तभी हो सकता है जब मेरे पास भी राज्य हो; क्योंकि तुम ब्राह्मण से नहीं, राजा से मित्रता रखने का दम भरते हो। इसलिए मैं तुम्हारा आधा राज्य लिये लेता हूँ। गङ्गा के दक्षिण किनारे का राज्य तुम करो; उत्तर ओर मेरी दुहाई फिरेगी। अब द्रोणाचार्य लौट गये और अहिच्छत्र का शासन करने लगे।

द्रोणाचार्यजी कौरवों के यहाँ नौकर थे। फिर भी वे अन्याय को अन्याय ही मानते थे। उनको जब अवसर मिला तभी उन्होंने दुर्योधन को उसकी भूल दिखलाने की चेष्टा की। कौरवों की अपेक्षा वे अपने प्रिय शिष्य अर्जुन को बहुत चाहते और मानते थे। अर्जुन ने शिक्षा प्राप्त करने में बहुत अधिक मन लगाया था इसी से आचार्य उनको बहुत मानते थे और शस्त्रास्त्रों की जो विशेषताएँ उन्होंने अपने पुत्र अश्वत्थामा को बतलाई थीं क़रीब-क़रीब वे सभी अर्जुन को भी बतला दी थीं। यही कारण है कि वे अपने प्रिय शिष्य के प्रति किये गये अनुचित बर्ताव को बुरा समझते थे। उनके इस भाव की निन्दा कौरव-पक्ष किया करता और उन पर पक्षपात का दोष लगाता था। आचार्य ने बहुत चाहा कि कौरव-पाण्डवों के बीच युद्ध न छिड़ने पावे; किन्तु उनकी एक न चली। अपने पुत्र-सदृश प्रिय शिष्य के विरुद्ध हथियार उठाने से बढ़कर क्लेशकर और क्या हो सकता है? किन्तु द्रोणाचार्य को वही करना पड़ा। यदि वे युद्ध से अलग हो जाते तो लोग यही कहते कि ब्राह्मण-जाति युद्ध के अयोग्य होती है; दूसरे इतने दिनों से जिस पक्ष का उन्होंने अन्न खाया था उसको, युद्ध से अलग रहने में, धोखा देना होता। यही सब सोचकर वे युद्ध-क्षेत्र में तो उतर पड़े; किन्तु उन्होंने दुर्योधन से स्पष्ट कह दिया कि हृदय हमारा पाण्डवों की ओर रहेगा, शरीर तुम्हारी ओर से मार-काट करता रहेगा। युधिष्ठिर के उनसे आशीर्वाद माँगने पर भी उन्होंने शारीरिक सहायता देने मे अपनी असमर्थता प्रकट करके बार-बार उनको आशीर्वाद दिया है। परन्तु रणक्षेत्र में युद्ध करते समय उन्होंने पाण्डवों का रत्ती भर भी लिहाज़ नहीं किया। बड़ी निर्दयता से चोटें की हैं। उनकी समर-निपुणता देखकर युधिष्ठिर तो एक प्रकार से विजय की आशा छोड़ चुके थे। आचार्य ने दुर्योधन के कहने से युधिष्ठिर को गिरफ़्तार करने की चेष्टा में क्या कुछ उठा रक्खा था। हम तो यह कहेंगे कि आचार्य ने कौरवों की ओर से युद्ध करते समय न्याय और धर्म तक की परवा नहीं की। यदि उन्हें न्याय और धर्म का भय होता तो अभिमन्यु की मार से कौरवों को त्रस्त देख वे कर्ण को यह सलाह कदापि न देते कि "हिकमत से इसके धनुष और प्रत्यञ्चा को काट डालो। अभीषु, रथ के घोड़ों और पार्श्व-

रक्षक सारथि को मार डालो। अभिमन्यु को निहत्था करके प्रहार करो। जब तक इसके हाथ में धनुष है, तब तक देवता और दैत्य मिलकर भी इसे नहीं मार सकते।" वृद्ध आचार्य के मुँह से ऐसी सलाह सुनकर खेद हुए बिना नहीं रह सकता। कर्ण ने वही किया जो आचार्य ने बताया था। आचार्य ने ऐसी सलाह तो दी ही, साथ ही उस अधर्म-युद्ध मे सम्मिलित हो उन्होंने अभिमन्यु के खड्ग की मूठ भी काट डाली। इस प्रकार उन्होंने जैसा करने की सलाह कर्ण को दी थी वैसा ही स्वयं कर दिखाया! बात यह है कि मनुष्य जब तक अधर्मपूर्ण कार्य से अलग रहता है तभी तक वह अधर्म को हेय समझता है; उसमें सम्मिलित होते ही उसकी विवेक-बुद्धि कुण्ठित हो जाती है।

आचार्य ने लगातार पाँच दिन युद्ध करके पाण्डवों की सेना के धुर्रे उड़ा दिये थे। अर्जुन उनको पूज्य समझते थे इस कारण उन पर दृढ़ता के साथ प्रहार नहीं करते थे। यह सब देख युधिष्ठिर घबरा गये। अन्त में आचार्य के ही पास जाकर उनका पराभव करने की युक्ति पूछने का निश्चय हुआ। पूछे जाने पर उन्होंने बतला दिया कि जब तक मेरे हाथ मे धनुष-बाण और जीवन का मोह रहेगा तब तक मुझको जीतना सम्भव नहीं। तब एक जाल रचा गया। सोचा कि आचार्य को पुत्र अश्वत्थामा ही सबसे अधिक प्रिय है। इसलिए उसके मरने की ख़बर उड़ा दो। आचार्य सोचेंगे कि जब बेटा ही न रहा तब युद्ध करने से क्या लाभ। दूसरे दिन भीमसेन ने अश्वत्थामा नाम के एक हाथी को मारकर अश्वत्थामा के मारे जाने की ख़बर फैला दी। पहले तो आचार्य को विश्वास ही न हुआ; किन्तु जब चारों ओर यही बात सुनाई पड़ी तब उन्होंने कहा कि युधिष्ठिर इसका समर्थन कर दें तो मान लें। बड़ी कठिनाई से युधिष्ठिर इसके लिए प्रस्तुत किये गये। उन्होंने बहकावे में आकर कह दिया "नरो वा कुञ्जरो वा"—ज़ोर से तो कहा "अश्वत्थामा" और धीरे से कहा 'इस नाम का हाथी' मारा गया। युधिष्ठिर की सत्यवादिता का सिक्का जमा हुआ था। उनके मुँह से अश्वत्थामा के मरने की ख़बर सुनते ही आचार्य ने धनुष-बाण रखकर प्राणायाम करके योगक्रिया से शरीर छोड़ने का विचार किया। इसी समय धृष्टद्युम्न ने लपककर उनका सिर उतार लिया। उस समय आचार्य ८५ वर्ष के थे। धृष्टद्युम्न के इस काम की चारों ओर निन्दा हुई। बात यह है कि द्रोण ने तो सभी को धनुर्विद्या सिखाई थी। गुरु भले ही अन्याय करे, पर शिष्य तो ऐसा करने से रहे। इसी कारण अर्जुन ने भी अपने साले धृष्टद्युम्न के इस काम की निन्दा की है। किन्तु कोई कुछ भी क्यों न कहा करे, धृष्टद्युम्न को तो वही काम करना था जिसके लिए वह उत्पन्न हुआ था। यदि वह द्रोण का विनाश न करता तो जिस विधि से वह उत्पन्न किया गया था उसका कुछ महत्त्व ही न रह जाता। आख़िर द्रोणाचार्य ने धृष्टद्युम्न के पिता द्रुपद राजा की क्या काम मिट्टी पलीद की थी। उनको बँधवा मँगाया, उनकी भर्त्सना की और उनका राज्य तक छीन लिया। फिर कुरुक्षेत्र के युद्ध में उन्होंने द्रुपद के प्राण भी ले लिये। तो इतना सब करके द्रोणाचार्यजी साफ़ कैसे बच सकते थे! जो यह कहा जाय कि निहत्थे पर शस्त्र चलाकर धृष्टद्युम्न ने अधर्म किया तो इसके अगुआ तो आचार्य स्वयं अभिमन्यु की हत्या करने में बन चुके हैं। अश्वत्थामा की निन्दा करते समय कर्ण ने कहा था कि अगर तेरे बाप को जप-तप ही करना था तो क्या उसके उपयुक्त स्थान रणक्षेत्र था? कर्ण की है तो यह कटूक्ति, किन्तु उसमें जो तथ्य है वह सर्वथा उपेक्षणीय नहीं।

कैसा अच्छा होता कि द्रोणाचार्य युद्ध में योग देने के बदले दूर से ही दोनों दलों को आशीर्वाद देते। उनका बड़प्पन अस्त्रशिक्षा देने में था, प्रत्यक्ष युद्ध करने में नहीं। किन्तु जो निर्धनता से बचने को राज्य माँगने जाकर अपदस्थ हुआ, उस लज्जा से बचने को जिसने छात्रों की सेना ले जाकर बाल्यबन्धु के प्राण अपनी मुट्ठी में कर लिये और ख़ासा राज्य प्राप्त कर लिया वह अधर्म से और दुर्जनों से कहाँ तक दूर रह सकता था ?

उस प्राचीन युग में भी अपने पक्ष को लाभ पहुँचानेवाले समाचार के प्रचार का महत्त्व लोगों को मालूम था। इसी से तो पाण्डवों ने अश्वत्थामा के मारे जाने की ख़बर फैलाई और उससे लाभ उठाया। प्रश्न यह है कि ऐसा करना कहाँ तक उचित था। इसका उत्तर समय दे रहा है। आज-कल के, 'सभ्यता' के, युग में तो झूठे समाचारों की रचना करने के लिए अच्छे से अच्छे मस्तिष्क मोल ले लिये जाते हैं और ऐसे समाचारों के आधार पर ही लोकमत तैयार करके संघटित दल अथवा राज्य विजय तक प्राप्त कर लेते हैं। अतएव मानना पड़ेगा कि मिथ्या समाचारों का प्रचार करके अपना कार्य सिद्ध कर लेना सदा से लाभ का काम समझा जाता रहा है। उसकी उपयोगिता जैसी पिछले दिनों में थी उससे अधिक आज है। ऐसे समाचारों के फैलने पर जनता यह निश्चय नहीं कर पाती कि कौन सी बात सच है और कौन सी झूठ। जो बात ज़्यादा फैल जाती है उसी को लोग सच समझ बैठते हैं।

द्रौपदी

कुरुकुल के पराभव में जिसकी अनुपम शक्ति संयुक्त हुई उस द्रौपदी की उत्पत्ति भी विचित्र रूप से हुई है। वह किसी की कोख से नहीं—यज्ञवेदी से उत्पन्न हुई है। अलौकिक रीति से उत्पन्न हुई उस कुमारी के विवाह का इतिहास भी विलक्षणता से भरा हुआ है। पाँच पतियों की पत्नी होने का वरदान उसे पिछले जन्म में मिल चुका था। इसी से कुन्ती के मुँह से ऐसी बात निकल गई कि द्रौपदी को पाँचों भाइयों ने अपनी परिणीता बना लिया था। एक पतिवाली स्त्री की भी यदा-कदा पति से खटपट हो जाया करती है किन्तु प्रशंसा करनी पड़ेगी द्रौपदी के व्यवहार की कि पाँचों में से एक पति से भी उसका मनोमालिन्य नहीं हुआ। अपनी सौतों के साथ भी वह अच्छा व्यवहार किया करती थी। उसने कौरवों के साथ भी कोई दुर्व्यवहार नहीं किया था जिससे कुढ़कर उन लोगों को उसका अपमान करने के लिए प्रेरणा मिली हो।

इसे दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि ऐसी साध्वी को कौरवों ने, वीर होकर, अपमानित करने में कुछ उठा नहीं रक्खा। उन्हें अपने प्रतिद्वन्द्वी पाण्डवों से बदला लेना चाहिए था, न कि उनकी पत्नी से। अपनी धर्षणा के समय द्रौपदी ने कहा भी था कि एक पति की पत्नी की ओर कोई आँख उठाकर देख तक नहीं सकता; किन्तु कैसे परिताप की बात है कि मैं पाँच नाथों के होते हुए भी अनाथ हो रही हूँ। यदि उसे अपनी सतीत्वरक्षा के सम्बन्ध मे शङ्का न होती तो, सम्भव है, वह दासी बनकर पवित्रता के साथ कौरवों की सेवा करके धर्मराज की शर्त को पूरा कर देती। आख़िर सुदेष्णा की सेवा उसने की ही थी और वहाँ पर उस पर जैसी कुछ बीती वह कीचक-वध की दुर्घटना से प्रकट ही है। किन्तु वहाँ तो बात ही दूसरी थी।

पाण्डवों की पत्नी होने पर द्रौपदी को थोड़े ही समय तक सुख मिल पाया, नहीं तो उसका सारा जीवन सङ्कटों का सामना करने में ही बीता। प्रत्येक पति से उसके एक एक पुत्र हुआ था; किन्तु वे पाँचों के पाँचों सोते में मार डाले गये। उसे शत्रुओं के कटु वचन सुनने पड़े और, शत्रुओं से बदला लेने के लिए धर्मराज को बार-बार उत्तेजित करने का अप्रिय कार्य तक करना पड़ा। शत्रुओ के मर-खप जाने पर उसे रानी बनने का अवसर अवश्य मिला, किन्तु जिसके पाँच-पाँच बेटे मारे गये हों; जिसके भाई-बन्धुओं और पिता के प्राण, उसी के हित की चेष्टा मे, लियें गये हों उसे भला राज्य का कौन सा सुख आनन्दप्रद हो सकता है ? वह एक विशिष्ट कार्य करने के लिए उत्पन्न हुई थी, उसके करने में उसने अपनी सारी शक्ति लगा दी और उसके पूर्ण होने पर उसने वीरों की भाँति संसार से प्रस्थान कर दिया। उसका चरित्र बहुत ही उदात्त है। उसे शत्रुओं के उत्कर्ष से चिढ़ थी, लेकिन इसे असहिष्णुता नहीं कहा जा सकता। उसके विपक्षियों तक को उसकी निन्दा करने के लिए कोई अवसर नहीं मिला। महाभारत में उसकी कार्य-परम्परा भरी पड़ी है, अतएव यहाँ विशेष लिखना अनावश्यक है। इस पुस्तक में भी, अनेक अवसरों पर, उसका उल्लेख हुआ है।

बलराम

ये श्रीकृष्ण के बड़े भाई थे। इनके नाम बलदेव, बलभद्र और हलधर भी हैं। वाह्लीक की बेटी रोहिणी के गर्भ से इनका जन्म हुआ था। सुभद्रा (चित्रा) इनकी बहन और सारण, शठ, दुर्दम, दमन, श्वभ्रु (शुभ्र), पिण्डारक तथा उशीनर इनके भाई थे। ये गदायुद्ध करने में अद्वितीय थे। इन्होंने जरासन्ध को गदायुद्ध में कई बार पराजित किया था। श्रीकृष्ण का पुत्र साम्ब दुर्योधन की बेटी लक्ष्मणा का हरण करने जाकर जब पकड़ लिया गया तब बलरामजी ने दुर्योधन के पक्षवालों को परास्त करके अपने भतीजे का उद्धार किया। इसी प्रकार बाणासुर के यहाँ अनिरुद्ध के क़ैद हो जाने पर बलराम ने श्रीकृष्ण के साथ जाकर असुर को परास्त किया और पौत्र को क़ैद से छुड़ाया। उन्होंने प्रलम्बासुर को घूँसा मारकर मार गिराया था।

बलराम के साथ श्रीकृष्ण स्यमन्तक मणि छीनने के लिए गये। शतधन्वा का वध करने पर भी जब मणि न मिली तब श्रीकृष्ण के इस कार्य से असन्तुष्ट हो बलराम विदेहपुरी को चले गये। वहाँ पर दुर्योधन ने उनसे गदायुद्ध सीखा। तीन वर्ष हो जाने पर बभ्रु और उग्रसेन आदि यादव वहाँ जाकर उन्हें लिवा लाये।

कौरव-पाण्डवों का युद्ध आरम्भ होने से पूर्व बलराम ने श्रीकृष्ण को समझाया कि दोनों ही दल हमारे सम्बन्धी हैं अतएव किसी एक ओर होने से हम लोग पक्षपाती कहलावेंगे। इससे हम लोगों को तटस्थ ही रहना चाहिए। श्रीकृष्ण के न मानने पर बलराम तीर्थयात्रा करने चले गये। उनकी अनुपस्थिति में कुरुक्षेत्र का युद्ध हुआ। कौरवों का क्षय हो जाने पर जिस समय भीमसेन और दुर्योधन का गदायुद्ध होने को था उसी समय बलराम एकाएक वहाँ पहुँच गये। उनको देखने से पाण्डवों समेत श्रीकृष्ण को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने बलराम को प्रधान के पद पर बिठाकर कहा कि ये दोनों आपके शिष्य हैं। इनका युद्ध देखिए। बलराम ने कहा कि बड़ा अचम्भा है। मुझे

घर छोड़े आज बयालीस दिन हो गये। आज श्रवण नक्षत्र है, मैं पुष्य नक्षत्र मे यात्रा को गया था। ठीक समय पर मैं कैसे आ गया ! सरस्वती-यात्रा से लौटने पर मुझसे ब्राह्मणों ने कहा कि अभी तक युद्ध समाप्त नहीं हुआ है। इसी से मैं यहाँ आ गया। अच्छा, युद्ध होने दो।

युद्ध करने से प्रथम दुर्योधन और भीमसेन दोनों ने, नियमानुसार, बलरामजी के पैर छुए। फिर वैर का अन्त करने के लिए दोनों बड़े क्रोध से भिड़ गये। उनकी टक्करें बड़े ज़ोरों की होती थीं। युद्ध करते-करते थोड़ी देर तक उन्होंने विश्राम किया और मित्रता के नाते आपस में अभिवादन भी; किन्तु इसके अनन्तर फिर भयङ्कर युद्ध छेड़ दिया। दुर्योधन के पास न तो सेना रह गई थी और न दूसरा आश्रय ही था। इसलिए वह सब ओर से निराश हो, प्राणों की होड़ लगाकर, युद्ध कर रहा था। इसके सिवा वह लगातार बारह साल तक गदायुद्ध का अभ्यास कर चुका था। इन कारणों से वह युद्ध में भीमसेन से इक्कीस पड़ता था। यही देखकर श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि दुर्योधन की अपेक्षा बलवान् रहने पर भी भीमसेन इसे धर्मपूर्वक नहीं जीत सकते। देवताओं तक ने असुरों को माया से ही जीता है। मायावी दुर्योधन के साथ माया करनी चाहिए। फिर भीम ने दुर्योधन की जाँघ तोड़ने की प्रतिज्ञा भी तो कर रक्खी है।

यह सुनकर अर्जुन ने भीमसेन को दिखाकर अपनी जाँघ पर हाथ मारा। यह इशारा पाकर भीमसेन ने दुर्योधन की जाँघों पर उस समय गदा की भरपूर चोट कर दी जिस समय वह युद्ध करते-करते, वार से बचने के लिए, ऊपर को उछला था। इससे उसकी जाँघें चकनाचूर हो गईं। वह चिल्लाकर नीचे गिर पड़ा। उस समय अशकुन होने लगे। सभी को दुःख हुआ। भीमसेन ने उसके पास जाकर कहा कि "एकवस्त्रा द्रौपदी को तू गाय-गाय कहकर हँसता था, उसका बदला ले"। फिर उन्होंने दुर्योधन के मुकुट-संयुक्त माथे को लतियाकर ज़मीन मे रगड़ा भी।

यह देखकर बलराम आपे से बाहर हो गये। वे भीमसेन के मारने को मूसल ताने और धिक्कार देते हुए झपटे। तब श्रीकृष्ण ने लपककर उनको अपनी गोल-गोल भरी हुई भुजाओं के भीतर भर लिया। उनको समझाते हुए श्रीकृष्ण ने कहा—पाण्डव लोग हमारे सहज मित्र हैं। शत्रु ने इन्हें बुरी तरह सता रक्खा था। फिर प्रतिज्ञा को पूर्ण करना क्षत्रियधर्म है। द्रौपदी की धर्षणा के समय भीमसेन ने दुर्योधन की जाँघ तोड़ने की जो प्रतिज्ञा की थी उसको वे किस तरह पूर्ण करते? मुझे इसमें कुछ दोष नहीं देख पड़ता। आप भी क्षमा कर दें। इस पर बलराम ने कहा कि तुम कुछ भी क्यों न कहो, दुर्योधन को अधर्म से मारने के कारण संसार में भीम कपट-योद्धा कहलावेगा और नियमानुसार युद्ध करनेवाले दुर्योधन को स्वर्ग-प्राप्ति होगी। अब मैं यहाँ नहीं ठहर सकता। बस, वे द्वारका को चल दिये। जब यादवों का अन्तकाल उपस्थित हुआ तब बलरामजी ने भी, प्रभासक्षेत्र में, इहलोक-लीला संवरण कर ली।

बलरामजी बड़े बलवान् थे। सीधे सच्चे आदमी थे, परन्तु स्वभाव के उग्र थे। सुरा का सेवन करते रहने से उनकी आँखें आरक्त बनी रहती थीं। ज़रा सी बात में बिगड़ पड़ते थे। सब लोग उनको डरते थे। एक बार उन्होंने कौरवों को बुरी तरह नीचा दिखाया था। वे अपने छोटे भाई श्रीकृष्ण को बहुत मानते थे। उनके समझाने से ही बलराम ने अर्जुन को, सुभद्रा-हरण के अवसर पर,

क्षमा कर दिया और श्रीकृष्ण के समझाने-बुझाने से ही भीमसेन के सिर का सङ्कट टला। जो सीधे स्वभाव का होता है वह अक्सर क्रोधी होता है। यह बात बलराम के चरित में भी सोलहों आने देख पड़ती है। वे किसी की लल्लो-चप्पो में नहीं रहते थे। खरी-खरी बातें सुना देते थे और क्रुद्ध हो जाने पर अपने अस्त्र—हल-मूसल—लेकर मारने को दौड़ पड़ते थे।

भीमसेन

ये कुन्ती के द्वितीय पुत्र हैं। इनके पेट में वृक नामक तीक्ष्ण अग्नि होने के कारण इनका एक नाम वृकोदर भी है। इनका जन्म वायु देवता के संयोग से हुआ था। इनका जन्म होने पर यह आकाशवाणी हुई थी कि यह बड़े-बड़े बलवानों से भी श्रेष्ठ होगा। गोद मे बालक भीम सो रहा था कि व्याघ्र को देखकर कुन्ती हड़बड़ाकर भागने को उठ बैठीं। उन्हें यह स्मरण ही न रहा कि गोद में बच्चा सो रहा है। इससे भीम गोद से चट्टान पर गिर पड़े। उनकी देह वज्र की तरह कड़ी थी। उसके लगने से चट्टान टूट गई। भीमसेन बचपन से ही बड़े बलवान् थे। वे अकेले ही दुर्योधन प्रभृति सौ भाइयों का नाक में दम कर देते थे। इसी से वे इनसे कुढ़े रहते थे। एक बार कौरव और पाण्डव मिलकर गङ्गातट पर एक बगीचे में खेलने-कूदने को गये। वहाँ पर दुर्योधन ने भीमसेन को खपा देने का एक उपाय किया। उसने मीठी-मीठी बातों में भुलाकर भोले-भाले भीमसेन को विष मिली हुई मिठाई खिला दी। अब वे जलक्रीड़ा करने लगे। तैरते-तैरते जब भीमसेन पर विष का असर हुआ तब वे बेहोश हो गये। बस, दुर्योधन ने चटपट उन्हें एक लता से बाँध-बूँधकर बहा दिया। भीमसेन इस दशा में डूबकर नागभवन में नाग-कुमारों के ऊपर गिरे तो उन्होंने इन्हें डस लिया। इस प्रकार एक विष के प्रभाव को दूसरे विष ने उतार दिया। होश में आने पर भीमसेन नाग-कुमारों को मारने-पीटने लगे। उन्होंने भागकर नागराज वासुकि को यह हाल जा सुनाया। भीमसेन को पहचान लेने पर नागराज ने उनकी ख़ासी आव-भगत की। फिर नागों के दिये हुए अमृत को पीकर भीमसेन वहाँ आठ दिन तक सोते रहे। जागने पर वे अपने भाइयों के पास पहुँच गये।

यह उपाय निष्फल होने पर दुर्योधन ने, अस्त्र-परीक्षा के बहाने, गदायुद्ध में भीमसेन को ठण्डा कर देना चाहा किन्तु उसमें भी उसके दाँत खट्टे हुए। इसके पश्चात् लाक्षागृह में पाण्डवों के भस्म करने का जो जाल फैलाया गया था उसमें से भागते समय भीमसेन ने माता को कन्धे पर बिठा लिया, नकुल-सहदेव को बग़ल में ले लिया और युधिष्ठिर तथा अर्जुन को हाथ से उठा लिया। वे इसी दशा में सबको लेकर भाग गये थे। अब ये लोग एक सरोवर के तट पर पहुँचे। वहाँ एक बड़ा भारी बरगद का पेड़ था। उस पर हिडिम्ब नामक राक्षस, अपनी बहन हिडिम्बा के साथ, रहता था। कुन्ती और अन्य चारों पाण्डव तो थककर सो रहे पर भीमसेन पहरा देने लगे। इस समय हिडिम्बा राक्षसी, सुन्दर स्त्री का रूप रखकर, भीमसेन के पास पहुँची और उनसे पत्नी बनाने का अनुरोध करने लगी। भीमसेन ने उसकी बात मान ली और हिडिम्ब राक्षस को मार गिराया। इस राक्षस के मारने से भीमसेन के साथ अन्य राक्षसों की शत्रुता हो गई। आगे चलकर उन्होंने कई अवसरों पर भीमसेन से बदला

लेने की कोशिश की किन्तु सभी मारे गये। हिडिम्बा के गर्भ से भीम के घटोत्कच नाम का लड़का पैदा हुआ। यह पाण्डवों के बड़े काम आया। इसमें भीमसेन का बल और राक्षसों की माया थी।

एकचक्रा नगरी में रहते समय भीमसेन ने वक राक्षस को मारकर वहाँवालों का सङ्कट काटा था। उक्त नगरी में रहते समय ही पाण्डवों को द्रौपदी के स्वयंवर की सूचना मिली थी।

श्रीकृष्ण, भीमसेन और अर्जुन—स्नातक का रूप रखकर—गिरिव्रज में गये थे। वहाँ भीमसेन ने युद्ध करके जरासन्ध को पछाड़ा था। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ की इच्छा करने पर भीमसेन ने पाञ्चाल, विदेह, गण्डक और दशार्ण प्रभृति देशों पर विजय प्राप्त करके पुलिन्द नगर के अधिपति सुकुमार, चेदिराज शिशुपाल, कुमार राज्य के स्वामी श्रेणिमान्, कोशल देश के राजा बृहद्बल, अयोध्या-नरेश दीर्घयज्ञ और काशिराज सुबाहु प्रभृति से 'कर' वसूल किया था। फिर उत्तर दिशा पर चढ़ाई करके मोदागिरि और गिरिव्रज आदि के राजाओं को तथा शक, बर्बर और समुद्रतट-निवासी म्लेच्छ आदि को वश में कर लिया था।

यज्ञ हो चुकने पर जब युधिष्ठिर शकुनि के साथ जुआ खेलने में सर्वस्व गवाँ चुके और दुर्योधन ने अपनी जाँघ दिखलाकर जब द्रौपदी का अपमान किया तब भीमसेन ने उस दरबार में ही उस जाँघ को तोड़ने—बदला लेने—की प्रतिज्ञा की थी। राज-पाट छिन जाने पर वन को जाते हुए भीमसेन को दुःशासन ने तरह-तरह से चिढ़ाया था; उनको मकुना, खोखला तिल और बैल कहा था। इससे क्रुद्ध होकर भीमसेन ने प्रतिज्ञा की थी कि युद्धक्षेत्र में मारकर तेरा रक्तपान करूँगा।

पाण्डव लोग जिस समय काम्यक वन में दिन बिता रहे थे उस समय बक राक्षस के भाई किर्मीर ने बदला लेने के लिए भीमसेन पर हमला किया था। भीमसेन ने उसे युद्ध में मार डाला था।

वनवास के समय एक दिन द्रौपदी के पास, हवा से उड़कर, एक फूल आ गिरा। उसकी विलक्षण सुगन्ध देख जब द्रौपदी ने भीमसेन से वैसे ही फूल ला देने को कहा तब वे उस ओर गये जिधर से वह फूल आया था। रास्ते मे हनुमान्‌जी से भेट हो गई। जान-पहचान तो थी नहीं, इससे भीमसेन ने उन्हें मामूली बन्दर समझ कुछ उलटी-पलटी बातें कह दीं। अन्त में परिचय पाने पर खेद प्रकट किया। जिस रूप को धारण करके हनुमान्‌जी समुद्र पार गये थे वह रूप उन्होंने भीमसेन को, प्रार्थना करने पर, दिखला दिया। फिर हनुमान्‌जी से उस पुष्प के उत्पत्तिस्थान—कुबेर के उपवन—का पता पाकर भीमसेन उसी ओर गये। वे बगीचे से फूल तोड़ने लगे तो कुबेर के सेवकों ने रोका और कुबेर को सूचना दी।

इसके पश्चात् यथास्थान लौट जाने पर एक दिन जटासुर जब द्रौपदी को ले भागा तब भीमसेन ने उसको मारकर द्रौपदी की रक्षा की। काम्यक वन में रहते समय ही एक दिन पाण्डव लोग घूमते-फिरते कुबेर की नगरी में जा निकले। वहाँ झगड़ा हो गया जिसमें बहुत से यक्ष, राक्षस आदि भीमसेन के हाथों से मारे गये। द्वैतवन में रहते समय एक बार भीमसेन एक अजगर की चपेट में आ गये। बात यह थी कि राजा नहुष, ऋषियों के शाप से, अजगर होकर वहाँ पड़े रहते थे। उस अजगर के पंजे से छूटने के लिए भीमसेन ने बड़ा ज़ोर लगाया; पर कुछ न हुआ। अन्त में युधिष्ठिर ने अजगर-रूपी नहुष के अनेक प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर देकर भाई को बचाया। द्रौपदी को जब

जयद्रथ ले भागा था तब अर्जुन के साथ भीमसेन ने उसको हराकर द्रौपदी को बचाया था। युधिष्ठिर न रोकते तो भीमसेन जयद्रथ के प्राण लिये बिना न मानते। वे एक बार ऐसे सरोवर में पानी भरने और पीने को पहुँच गये जिस पर यक्ष का अधिकार था। रोके जाने पर भी वे पानी में उतर पड़े। इससे निर्जीव हो गये। इस बार भी युधिष्ठिर ने यक्ष के प्रश्नों का ठीक-ठीक उत्तर देकर भीमसेन के प्राण बचाये थे। पाण्डवों ने वेष बदलकर राजा विराट के यहाँ अपना अज्ञातवास का समय बिताया था। भीमसेन उस समय राजा के रसोइया बने हुए थे। उन्होंने अपना नाम बल्लव रख लिया था। वहाँ रहते समय, राजा के सेनापति और साले, कीचक ने द्रौपदी को बहुत तङ्ग कर रक्खा था। अन्त में लाचार होकर द्रौपदी ने जब भीमसेन के आगे अपना दुखड़ा रोया तो बल्लव-नामधारी भीम ने कीचक को कुचल डाला। उसके मारे जाने की ख़बर पाकर त्रिगर्तराज सुशर्मा, विराट का गोधन छीनने को, चढ़ दौड़ा। सामना करने जाकर राजा विराट पकड़ लिये गये। तब भाइयों सहित भीम ने जाकर विराट को छुड़ाया और सुशर्मा को ऐसी मार मारी कि जिसका नाम।

कुरुक्षेत्र का युद्ध छिड़ने पर भीमसेन ने, सेनापति की हैसियत से, युद्ध करके सारे कौरवों और उनके सेनापतियों का वध किया था। उन्होंने दुश्शासन का रक्त पीकर और दुर्योधन की जाँघें तोड़कर अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर ली। युद्ध शान्त हो जाने पर जब सब लोग हस्तिनापुर में पहुँचे तब धृतराष्ट्र ने, सान्त्वना देने के बहाने, भीमसेन को अपने हृदय से लगाना चाहा। धृतराष्ट्र के मन की बात को श्रीकृष्ण पहले से जानते थे। अतएव आलिङ्गन करने के लिए उन्होंने भीमसेन की लोहे की मूर्ति, जो पहले ही से तैयार रक्खी थी, उनके आगे करवा दी। धृतराष्ट्र ने उस मूर्ति को इतने ज़ोर से दबाया कि उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये।

द्रौपदी के गर्भ से भीमसेन का जो पुत्र उत्पन्न हुआ था उसका नाम सुतसोम था। उसे अश्वत्थामा ने मार डाला था। काशिराज-पुत्री बलन्धरा से उत्पन्न इनके पुत्र का नाम सर्वग था।

भीमसेन में जिस प्रकार अत्यधिक मात्रा में बल था उसी प्रकार उनमे बुद्धि की कमी थी। यदि वे बुद्धिमान् होते तो जरासन्ध के जीतने के लिए उन्हें श्रीकृष्ण की बुद्धि की अपेक्षा न रहती। फिर भी वे निरे बुद्धिहीन न थे। क्रोधी तो वे बहुत बड़े थे। अकेले उन्होंने अपने चाचा धृतराष्ट्र के सौ बेटों को खपा डाला। पुत्रों के मारे जाने पर धृतराष्ट्र जब युधिष्ठिर के आश्रय में रहकर जी खोलकर दानपुण्य किया करते थे तब भीमसेन कभी-कभी एक-आध लगती हुई बात कह दिया करते थे। कैसे न कहते? अपने चचेरे भाइयों से उन्हें जैसा कुछ दुःख मिला था उसे वे क्योंकर भूल सकते थे? यदि वे उसे भूल जाते तो कहना पड़ता कि उनमें नाम लेने को भी समझ नहीं है।

भीमसेन अपने भाइयों को बहुत मानते थे। युधिष्ठिर का तो वे बहुत अधिक आदर करते थे। पर जुए में द्रौपदी को हार जाने के कारण वे युधिष्ठिर पर बुरी तरह बिगड़ खड़े हुए। उन्होंने कहा—भाई साहब, राजा लोग आपको भेंट में जो धन दे गये थे वह सब आपने हार दिया। सवारियों, हथियारों और साम्राज्य को ही आपने नहीं गँवाया, प्रत्युत हम लोगों को भी दाँव पर रख दिया। इस सबको मैंने चुपचाप सह लिया। कारण यह था कि बड़े भाई होने से आप ही सारी सम्पत्ति के और हमारे स्वामी थे; परन्तु द्रौपदी को दाँव में बदकर हार जाना अक्षम्य है। इसे मैं सहन नहीं

कर सकता। जुआरियों के घर में जो वेश्याएँ होती हैं उन्हें भी वे दाँव पर नहीं लगाते। अपनी स्त्री की तो बात ही अलग है। आपके ही कारण द्रौपदी कौरवों द्वारा अपमानित और लाञ्छित हो रही हैं। इससे मुझे बड़ा क्रोध चढ़ आया है। इसे मैं आप पर ही उतारूँगा। जिन हाथों से आपने बेढङ्गा जुआ खेला है उन्हें मैं अभी आग मे जला दूँगा। सहदेव, झटपट आग लाओ।

भीमसेन के सम्बन्ध में धृतराष्ट्र की यह उक्ति सुनने लायक़ है—"भीमसेन के भय के मारे मुझे रात को नींद नहीं आती। इन्द्रतुल्य तेजस्वी भीम का सामना कर सकनेवाला एक आदमी भी मुझे अपनी ओर नहीं देख पड़ता। वह बड़ा उत्साही, क्रोधी, उद्दण्ड, टेढ़ी नज़र से देखनेवाला और कड़ी आवाज़वाला है। न तो वह हँसी-दिल्लगी करता है और न वैर को भूलता है। वह बहुत अधिक परिमाण में भोजन करता और एकाएक काम कर बैठता है। उसके हाथों सताये हुए मेरे लड़के बचपन में थर-थर काँपते थे। झगड़े के समय ही भीमसेन ने मेरे लड़कों को छोड़ दिया, यही बड़ा लाभ है। भीमसेन बचपन में भी कभी मेरे कहे में नहीं रहा। इस समय तो मेरे बेटों ने उसे तरह-तरह से कष्ट दिये हैं, भला अब वह मेरी बात मानने लगा? व्यासजी ने मुझे बतलाया है कि अद्वितीय शूर और बली भीमसेन गोरे रङ्ग का तथा ताड़ के पेड़ जैसा ऊँचा है। वह अर्जुन से भी मुट्ठी भर ऊँचा है। वह वेग में घोड़े से और बल में हाथी से भी बढ़कर है।

"जरासन्ध ने तमाम राजाओं को जीत लिया था। दैवयोग से केवल कुरुगण भीष्म के प्रभाव से और यादव लोग नीति के बल से जरासन्ध के क़ाबू में नहीं हुए थे। उसी जरासन्ध को भीम ने अस्त्र-शस्त्र से नहीं, केवल बाहुबल से मार डाला। भला उससे मेरे बेटों को कौन बचावेगा?"

द्रोणाचार्य का सामना करनेवाले योद्धा थे ही कितने? किन्तु एक दिन भीमसेन ने उनको भी ख़ूब हैरान किया था। जिस दिन जयद्रथ को मारकर अर्जुन अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करनेवाले थे उस दिन बड़ा घमासान युद्ध हो रहा था। देर तक अर्जुन की कुछ ख़बर न मिलने से युधिष्ठिर बड़े चिन्तित हुए। युद्ध पर जाने से पूर्व अर्जुन युधिष्ठिर की रक्षा का भार भीम को सौंप गये थे। इसलिए उन्हें अर्जुन की ख़बर लाने को जाने की इच्छा न होती थी पर बड़े भाई के आग्रह को कहाँ तक टालते। अन्त में धृष्टद्युम्न के यह ज़िम्मा लेने पर, कि मैं इन्हें द्रोणाचार्य के चङ्गुल से बचाये रहूँगा, भीमसेन भाई की ख़बर लाने को रवाना हुए और विपक्ष की सेनाओं को मारते-काटते आगे बढ़े तो द्रोणाचार्य ने बाणवर्षा करके उन्हें रोक दिया। आचार्य की मार-काट से क्रुद्ध हो भीमसेन रथ से कूदकर दौड़े। उन्होंने आचार्य के रथ को उठाकर पटक दिया। यदि आचार्य फ़ुर्ती से कूदकर अलग न हो जाते तो रथ के साथ उनकी भी हड्डी-पसली एक हो जाती। आचार्य बार-बार नये रथ पर बैठते और भीमसेन उसको बात की बात में पटककर तोड़ डालते थे। इस प्रकार उन्होंने आचार्य के आठ रथों को तोड़-ताड़कर लोगों को अचम्भे में डाल दिया था।

भीष्म पितामह

राजा शान्तनु के बड़े बेटे भीष्म आठ वसुओं में से थे। एक बार अपनी गृहिणी के कहने से द्युनामक वसु ने वशिष्ठ ऋषि की कामधेनु का हरण कर लिया। इससे वशिष्ठ ऋषि ने द्यु से कहा

कि ऐसा काम तो मनुष्य किया करते हैं, इसलिए तुम मनुष्य हो जाओ। अन्त में आठों वसुओं ने वशिष्ठजी की प्रार्थना की तो उन्होंने यह सहूलियत कर दी कि अन्य वसु तो वर्ष का अन्त होने पर मेरे शाप से छुटकारा पा जायँगे, किन्तु द्यु को अपनी करनी का फल भोगने के लिए एक जन्म तक मनुष्य-लोक में रहना पड़ेगा।

यह सुनकर वसुओं ने गङ्गाजी के पास जाकर उन्हें वशिष्ठजी के शाप का ब्योरा सुनाया और यह प्रार्थना की कि "आप मृत्युलोक में अवतार लेकर हमें गर्भ में धारण करें और ज्योंही हम जन्म लें, हमें पानी में डुबो दे।" गङ्गाजी ने स्वीकार कर लिया। वे युक्ति से शान्तनु राजा की पत्नी बन गईं। शान्तनु के जन्म से पहले गङ्गा के गर्भ से जो सात पुत्र पैदा हुए थे उन्हें उत्पन्न होते ही गङ्गाजी ने पानी में डुबो दिया था। पत्नी के इस व्यवहार को शान्तनु राजा अच्छा नहीं समझते थे; किन्तु वे कुछ रोक-टोक नहीं कर सकते थे। कारण यह था कि गङ्गाजी ने उनसे ऐसे कामों में बाधा न देने का वचन आरम्भ में ही ले लिया था। अन्त में आठवीं सन्तान उत्पन्न होने पर जब गङ्गाजी ने उसे भी डुबाना चाहा तब राजा ने उनको ऐसी निष्ठुरता करने से रोका। गङ्गाजी ने राजा की बात मानकर वसुओं को वशिष्ठ के शाप का सब हाल कह सुनाया। फिर वे राजा को वह तुरन्त का उपजा हुआ बालक सौंपकर अन्तर्धान हो गईं। यही बालक द्यु-नामक वसु था जो आगे भीष्म नाम से प्रसिद्ध हुआ। शान्तनु ने इसका नाम देवव्रत रक्खा था।

राजा शान्तनु एक बार शिकार करने गये थे। वहाँ उन्होंने दाशराज की बेटी सत्यवती को देखा तो उस पर रीझ गये। दाशराज से उसके विवाह का प्रस्ताव किया तो उसने यह शर्त लगाई कि मेरी बेटी की सन्तान को गद्दी मिले तो मैं तैयार हूँ। इस शर्त को शान्तनु ने नहीं माना। मानते कैसे? घर में बड़ा बेटा जो बैठा था। वे उदास होकर राजधानी को लौट गये। पिता के दुःख का कारण मालूम होने पर देवव्रत दाशराज के पास पहुँचे। उन्होंने उससे कहा कि मेरे पिता के साथ अपनी बेटी का विवाह कर दो; उसे किसी प्रकार का दुःख न होने पावेगा। उन्होंने उससे यह भी कह दिया कि गद्दी का मालिक सत्यवती का बेटा ही होगा। किन्तु दाशराज को इतने में भी सन्तोष नहीं हुआ। उसने कहा कि एक तुमने गद्दी का दावा छोड़ दिया तो क्या हुआ, तुम्हारे लड़के-बच्चे मेरे नाती से गद्दी न छीन लेंगे, इसका क्या भरोसा? वास्तव में वह अपनी लड़की की सन्तान को हर तरह से बेखटके कर देना चाहता था। यह देखकर देवव्रत ने दाशराज से कहा कि यदि तुम मेरे पिता के साथ अपनी बेटी का ब्याह कर दोगे तो मैं, तुम्हारी चिन्ता दूर कर देने के लिए, जन्म भर क्वारा रहने को तैयार हूँ। यह सुनते ही दाशराज ने बड़ी प्रसन्नता से शान्तनु को सत्यवती सौंप दी। पिता को सुखी करने के लिए देवव्रत की ऐसी भीषण प्रतिज्ञा सुनते ही देवताओं ने अन्तरिक्ष से पुष्पवर्षा करके उनका नाम भीष्म रख दिया।

सत्यवती के गर्भ से शान्तनु के दो बेटे हुए—चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य। शान्तनु का देहान्त हो जाने पर भीष्म ने, सत्यवती की सलाह से, चित्राङ्गद को गद्दी पर बिठा दिया। किन्तु कुछ समय पश्चात् जब वह अपने नामराशि एक गन्धर्व के हाथों मारा गया तब विचित्रवीर्य को राजा बनाकर भीष्म, अभिभावक बनकर, राज-काज करने लगे। काशिराज की तीन कुमारियों के

स्वयंवर की ख़बर पाकर भीष्म वहाँ पहुँचे और उनका हरण कर लाये। वहाँ पर एक भी राजा भीष्म का सामना करने में सफल नहीं हो सका। बड़ी राजकुमारी अम्बा शाल्वराज पर अनुरक्त होने से छोड़ दी गई। अन्य दोनों का विवाह विचित्रवीर्य के साथ कर दिया गया। अभी इसके कोई सन्तान नहीं हुई थी कि यह चल बसा। गद्दी फिर ख़ाली हो गई।

अब सत्यवती ने भीष्म से बार-बार अनुरोध किया कि पिता के वंश की रक्षा करने के लिए तुम विवाह करके राज-पाट सँभालो; परन्तु भीष्म टस से मस नहीं हुए। अन्त में सत्यवती ने भीष्म की अनुमति लेकर वेदव्यास के द्वारा अम्बिका और अम्बालिका के गर्भ से यथाक्रम धृतराष्ट्र और पाण्डु नाम के पुत्रों को उत्पन्न कराया।

युधिष्ठिर ने इन्द्रप्रस्थ में राजसूय यज्ञ किया था। उसमें भीष्म आदि सभी बड़े-बूढ़े सम्मिलित हुए थे। भीष्म की सलाह से ही युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण को सबसे पहले अर्घ्य दिया था। इससे शिशुपाल आपे से बाहर हो गया और श्रीकृष्ण के हाथों मारा गया।

भीष्म के लिए जैसे कौरव थे वैसे ही पाण्डव, फिर भी उन्होंने दुर्योधन की ओर से युद्ध इसलिए किया था कि वे अपने को कौरवों के अधीन समझते थे। उन्होंने दुर्योधन को बार-बार समझाया था कि पाण्डवों को उनका हिस्सा दे दे, पर उसने उनकी बात नहीं मानी।

कुरुक्षेत्र का युद्ध आरम्भ होने पर प्रधान सेनापति की हैसियत से भीष्म ने दस दिन तक घोर युद्ध किया था। इसमें उन्होंने पाण्डवों के बहुतेरे सेनापतियों और सैनिकों को मार गिराया था। इतने पर भी दुर्योधन उनसे कहा करता था कि पाण्डवों के साथ पक्षपात करने के कारण आप जी खोलकर युद्ध नहीं करते। इससे खिन्न होकर उन्होंने दुर्योधन को धिक्कार देते हुए कहा कि अपने भुजबल के भरोसे पर पाण्डवों को तो एक दिन विजय मिलेगी ही। उनके क्रोधानल में भस्म होने से तुमको एक भी महारथी न बचा सकेगा। यह सच है कि पाण्डवों पर पितामह की कृपादृष्टि थी; किन्तु इसका यह मतलब नहीं कि वे दुर्योधन के साथ दग़ा कर रहे थे। उन्होंने युद्ध करने में रत्ती भर भी लिहाज़ नहीं किया; ऐसी मार मारी कि पाण्डवों के छक्के छूट गये। प्रतिदिन भीष्म के हाथों बहुत से सेनापतियों और सैनिकों का विनाश होते देख युधिष्ठिर ने अपने भाइयों और श्रीकृष्ण से पूछा कि क्या करने से पितामह को युद्ध से अलग किया जाय। युद्ध छिड़ने से प्रथम श्रीकृष्ण ने प्रतिज्ञा की थी कि हम समरभूमि में रहकर भी हथियार न छुएँगे; किन्तु इस समय यह कठिनाई देखकर उन्होंने कहा कि तो फिर हमीं भीष्म से लोहा लेंगे—प्रतिज्ञा को तोड़ेंगे। युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण को ऐसा न करने देकर कहा कि पितामह भले ही दुर्योधन की ओर से युद्ध करते रहें, पर वे हमारे भले की सलाह देने से न चूकेंगे। इसके लिए वे मुझे वचन दे चुके हैं। इसलिए चलो, उन्हीं से उपाय पूछें। युद्ध में हम उन्हीं के बताये उपाय से काम लेंगे। अब पाण्डव लोग श्रीकृष्ण को साथ लेकर पितामह के पास पहुँचे और प्रणाम करके बोले कि आपने अब तक जिस दृढ़ता से युद्ध किया है वैसा ही आप करते रहेंगे तो हम लोग विजयी नहीं हो सकते। अतएव ऐसा उपाय बतलाइए जिससे हम, आप पर विजय प्राप्त करके, अपना राज्य पा जायँ। आपके जीवित रहते हमें विजय मिलने से रही; अतएव कृपा करके बतलाइए कि आपका वध कैसे हो सकता है।

भीष्म ने कहा—मैं जिस समय हाथ में अस्त्र लेकर युद्ध करता हूँ उस समय मुझे देवता तक जीत नहीं सकते। मेरे हथियार रख देने पर ही वे मुझ पर विजय पा सकते हैं। जिसके पास शस्त्र कवच और ध्वजा नहीं है, जो गिर पड़ा हो, भाग रहा हो अथवा डर गया हो उस पर मैं हाथ नहीं उठाता। इसके सिवा स्त्री-जाति, स्त्री-सदृश-नामधारी, अङ्गहीन, एकमात्र पुत्र के पिता तथा शरणागत व्यक्ति के साथ भी मैं युद्ध नहीं करता। अमङ्गल-चिह्न-युक्त ध्वज को देखकर भी युद्ध न करने का मैंने नियम किया था। तुम्हारी सेना में एक महारथी शिखण्डी है। वह पहले स्त्री था, पीछे से पुरुष बन गया है। उसको आगे करके अर्जुन मेरे ऊपर प्रहार करे। शिखण्डी से मैं युद्ध करूँगा नहीं और अर्जुन की चोटें मेरे ऊपर कारगर हो जायँगी। बस, विजय-प्राप्ति का यही उपाय है।

अगले दिन से श्रीकृष्ण ने इसी उपाय का प्रयोग कराया। अर्जुन के ऊपर भीष्म इस डर से प्रहार नहीं करते थे कि कहीं शिखण्डी पर वार न हो जाय और उधर शिखण्डी तथा अर्जुन दोनों ही कसकर चोटें कर रहे थे। इन लोगों की मार से भीष्म की देह में ऐसा दो अङ्गुल स्थान भी नहीं बचा जहाँ घाव न हों। बेतरह घायल हो जाने पर भीष्म दसवें दिन, दिन डूबने से कुछ पहले, पूर्व की ओर मस्तक करके शरशय्यागत हो गये। इस युद्ध में उन्होंने अवश्य ही शिखण्डी पर शस्त्र नहीं चलाया; किन्तु कौरवों के अन्यान्य महारथियों ने उनकी रक्षा करने के यत्न में कुछ कसर नहीं की थी। भीष्म का पतन होने पर स्वर्ग और मर्त्यलोक में हाहाकार होने लगा। भीष्म का पूरा शरीर तो बाणों पर रक्खा हुआ था; केवल मस्तक—कोई सहारा न रहने से—नीचे की ओर लटक रहा था। इस समय सूर्य को दक्षिणायन में देखकर भीष्म ने उचित अवसर की प्रतीक्षा में प्राणों को रोक लिया। गङ्गाजी के कहने से मानस-सरोवर-निवासी ऋषि लोग, हंस का रूप धारण करके, इस समय भीष्म के पास आये थे। उनको पितामह ने यही उत्तर दिया था कि सूर्य जब तक दक्षिणायन में रहेंगे तब तक मैं शरीर नहीं छोड़ूँगा; उत्तरायण आने पर ही मैं अपने प्राचीन पद को प्राप्त करूँगा। पिता से मुझे स्वेच्छा-मृत्यु का वरदान मिला है, उसी के प्रभाव से मुझे मृत्यु पर अधिकार मिला हुआ है। मैं जब तक इच्छा न करूँगा, मरने का नहीं। शरशय्या पर पड़े हुए भीष्म पितामह, योग का अवलम्बन करके, जप करने लगे।

भीष्म के पतन की ख़बर फैलने पर कौरवों की सेना मे हाहाकार मच गया और पाण्डवों के यहाँ ख़ुशी मनाई जाने लगी। दोनों दलों के सैनिक और सेनापति लोग युद्ध करना छोड़कर भीष्म के पास एकत्र हो गये। उनसे, यथायोग्य अभिवादन करके, भीष्म ने कहा कि राजन्यगण! मेरा सिर नीचे लटक रहा है। मुझे उपयुक्त तकिया चाहिए। राजा लोग मूल्यवान् तरह-तरह के तकिये ले आये। किन्तु भीष्म ने उनमें से एक को भी न लेकर, मुसकुराकर, कहा कि ये तकिये इस वीरशय्या के काम में आने योग्य नहीं हैं। फिर अर्जुन की ओर देखकर कहा कि बेटा, तुम क्षात्रधर्म के जानकार हो। मुझे उपयुक्त तकिया दो। आज्ञा पाते ही अर्जुन ने उनको अभिवादन कर बड़ी तेज़ी से ऐसे तीन बाण मारे जो उनके माथे में छिदकर पृथ्वी में जा लगे। बस, माथे को सहारा मिल गया। इन बाणों का आधार मिल जाने से सिर के लटकते रहने की पीड़ा जाती रही। इससे प्रसन्न होकर भीष्म ने अर्जुन से कहा कि जो तुम ऐसा तकिया न देते तो मैं क्रुद्ध

होकर शाप दे देता। फिर उन्होंने राजाओं से कहा कि उत्तरायण आने तक मैं इसी शरशय्या पर रहूँगा। मेरे चारों ओर खाई खुदवा दो। मैं सूर्य की उपासना करता रहूँगा। अब तुम लोग वैर-विरोध छोड़कर युद्ध बन्द कर दो।

इसी समय, अपना सब सामान लिये हुए, शल्य निकालनेवाले चतुर चिकित्सक लोग आ गये। उनको देखकर भीष्म ने दुर्योधन से कहा कि मुझे तो क्षत्रियों की परम गति मिल चुकी है। अब चिकित्सकों की क्या आवश्यकता ? मैं तो इन सब बाणों समेत जलाया जाऊँगा। इन चिकित्सकों को पुरस्कार देकर आदर के साथ बिदा कर दो। पितामह की ये बातें सुनकर और उनका धर्मसङ्गत व्यवहार देखकर राजा लोग उनको प्रणाम और प्रदक्षिणा कर-करके अपनी-अपनी छावनियों में लौट गये।

अगले दिन सबेरा होने पर फिर क्षत्रिय योद्धा लोग आये। उनके साथ-साथ हज़ारों क्षत्रिय-कन्याएँ भी आईं। बाजे बजानेवाले, नट, नर्तक और कारीगर आदि पितामह के पास आये और उनके चारों ओर चुपचाप खड़े हो गये। अस्त्रों की चोटों के कारण भीष्म को बड़ी पीड़ा हो रही थी। उन्होंने राजाओं से पीने के लिए ठण्डा पानी माँगा तो लोग चारों ओर से तरह-तरह की खाने की वस्तुएँ और घड़ों में ठण्डा पानी ले-लेकर दौड़ पड़े। इस पर भीष्म ने कहा—"भूपतियो ! शर-शय्या पर लेट जाने से अब मैं मनुष्य-लोक से अलग हो चुका। मैं तो केवल सूर्य के परिवर्तन-काल की बाट जोह रहा हूँ। आप लोग मेरे लिए यह क्या ले आये !" अब उन्होंने अर्जुन को देखना चाहा। आज्ञा पाते ही अर्जुन भीष्म के आगे नम्रता के साथ जा खड़े हुए। भीष्म ने उनसे कहा कि तुम्हारे बाणों से छिदा हुआ मेरा शरीर मानो जला जा रहा है। मर्मस्थानों में पीड़ा हो रही है। मुँह सूख रहा है। मैं बहुत व्याकुल हो रहा हूँ। तुम समर्थ हो, मुझे पानी पिलाओ।

अर्जुन ने चटपट रथ पर सवार होकर गाण्डीव के ऊपर प्रत्यञ्चा चढ़ाई। फिर भीष्म की प्रदक्षिणा करके विधिपूर्वक पर्जन्यास्त्र का प्रयोग किया और भीष्म की दहनी ओर पृथ्वी में बाण मारा। बात की बात में वहाँ से अमृत-तुल्य, सुगन्धित, बढ़िया जल की धारा निकलने लगी। उस पानी को पीकर भीष्म तृप्त हो गये। उन्होंने अर्जुन की बहुत प्रशंसा की और दुर्योधन को बार-बार समझाया कि हमारी यह गति देखकर सँभल जाओ। युद्ध बन्द करके वंश की रक्षा कर लो।

अगले दिन पितामह के पास कर्ण गया। उसे भी भीष्म ने युद्ध रोकवा देने की सलाह दी। उसके अस्वीकार करने पर उन्होंने कहा कि यदि तुम वैर-विरोध छोड़ना नहीं चाहते तो सदाचार-परायण होकर, अपने उत्साह और शक्ति के अनुसार, दुर्योधन का काम सँभालो और धर्मयुद्ध करके क्षत्रियों के लोकों को प्राप्त करो। सन्धि कराने की चेष्टा करने मे मैंने कुछ उठा नहीं रक्खा; किन्तु मुझे सफलता नहीं मिली।

पितामह से विवाद हो जाने के कारण उनके सेनापतित्व में कर्ण ने यद्यपि एक चींटी को भी नहीं मारा था, फिर भी उन्हें धराशायी देखकर वह विकल हो गया। आश्चर्य नहीं कि उसे झगड़ा कर लेने के लिए पछतावा भी हुआ हो। उसने बार-बार पितामह की शूरता की सराहना की। सच है, वीर का आदर वीर के सिवा और कौन कर सकता है ? उसने स्वीकार किया कि आप के बिना हम सब की शोचनीय दशा हो गई है। अब वह अस्त्र-शस्त्रों से सज्जित होकर युद्ध करने को तैयार हुआ।

कुरुक्षेत्र के संग्राम में विजयी होने के पश्चात् युधिष्ठिर को इस बात का बड़ा पश्चात्ताप हुआ कि उन्हीं के कारण उनके सगे-सम्बन्धियों और पुत्रों के प्राण गये। इससे उदास हो उन्होंने जीते हुए राज्य को छोड़-छाड़कर संन्यासी होने का विचार कर लिया। पाण्डवों समेत श्रीकृष्ण ने और वेदव्यास प्रभृति हितैषियों ने उन्हें तरह-तरह से समझाया। फिर उन्होंने पितामह के पास उपदेश पाने के लिए इन्हें भेजा। भीष्म यद्यपि शरशय्या पर पड़े हुए थे फिर भी उन्होंने—श्रीकृष्ण के कहने से—युधिष्ठिर का शोक दूर करने के लिए राजधर्म, मोक्षधर्म और आपद्धर्म आदि का मूल्यवान् उपदेश बड़े विस्तार के साथ दिया। इस उपदेश को सुनने से युधिष्ठिर के मन से ग्लानि दूर हो गई।

सूर्य के उत्तरायण होने पर युधिष्ठिर आदि सगे-सम्बन्धी, पुरोहित और अन्यान्य लोग भीष्म के पास पहुँचे। उन सब से पितामह ने कहा कि इस शरशय्या पर मुझे अट्ठावन दिन हो गये। मेरे भाग्य से माघ महीने का शुक्ल पक्ष आ गया। अब मैं शरीर त्यागना चाहता हूँ। इसके पश्चात् उन्होंने सब लोगों से प्रेमपूर्वक बिदा माँगकर शरीर छोड़ने के लिए योग की क्रिया आरम्भ कर दी। प्राणवायु को रोककर वे उसे जिस-जिस अङ्ग के ऊपर चढ़ाते जाते थे उसी-उसी अङ्ग से बाण निकल जाते और घाव भर जाते थे। थोड़ी ही देर मे उनके शरीर के सब घाव भर गये और प्राण वायु ब्रह्मरन्ध्र को फोड़कर निकल गया।

भीष्म पितामह ने जब विवाह ही नहीं किया तब उनके सन्तान होने का प्रश्न ही नहीं रहा। और जिसके सन्तान नहीं उसका श्राद्ध और तर्पण कौन करेगा? प्राचीन भारत में यह एक कठिन समस्या थी। इससे पार पाने के लिए उस समय विवाह करना परम आवश्यक माना जाता था। जरत्कारु का उपाख्यान इस समस्या पर काफ़ी प्रकाश डालता है। किन्तु भीष्म के लिए इस श्रेणी के नियम कुछ ढीले हो गये थे। जिसने अनुपम त्याग द्वारा अपने पिता को सन्तुष्ट करके मृत्यु को भी वश में कर लिया था उसके लिए श्राद्ध-तर्पण की समस्या कुछ कठिनता नहीं रखती। फिर भीष्म के तो भाई-भतीजे मौजूद थे। उन्होंने उनका क्रियाकर्म किया और बड़े अच्छे ढँग से किया। इसके सिवा हिन्दुओं ने भी बड़ी अच्छी तरह से उनका सत्कार किया। उन लोगों ने तो अपनी तर्पण-विधि में ही भीष्म का नाम दर्ज कर लिया।

युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में अर्घ्यपूजा के अवसर पर भीष्म पितामह ने सब राजाओं को ललकार कर कहा था कि मुझे जो ठीक जान पड़ा वही करने की सलाह मैंने दी। अब जिससे जो बन पड़े, कर ले। मैं सब के सिर पर यह पैर रखता हूँ। इससे पहले वे काशिराज की स्वयंवर-सभा से उनकी कन्याओं का हरण करते समय राजाओं को पराजित कर ही चुके थे। उन्होंने कुरुक्षेत्र का युद्ध छिड़ने से पूर्व दुर्योधन से कहा था कि एक अर्जुन ही मेरे जैसा योद्धा है। इन सब बातों से सिद्ध हो जाता है कि वे अद्वितीय योद्धा थे।

वे खरी बात कहने से नहीं चूकते थे। जिस समय श्रीकृष्ण समझौता कराने के लिए कौरवों के यहाँ जानेवाले थे उससे पहले दुर्योधन ने श्रीकृष्ण को क़ैद कर लेने की सलाह की थी। उसको सुनकर भीष्म इतने कुपित हुए थे कि सभा को छोड़कर चले गये थे। अन्य अवसरों पर भी उन्होंने दुर्योधन की आँखें खोलने की चेष्टा की है। किन्तु उन्होंने द्रौपदी की दुर्दशा के समय

ऐसी चुप्पी साधी कि देखकर विस्मय होता है। उस अत्याचार को उन्होंने कैसे सह लिया ? फिर द्रौपदी को उत्तर दिया भी तो गोलमोल। सभा के बीच द्रौपदी के विवस्त्र किये जाते समय भीष्म के चुप्पी साध लेने की सफ़ाई में कहा जाता है कि पुरुष चाहे किसी भी स्थिति में क्यों न हो, स्त्री पर उसका अधिकार रहता है। अतः जुए में हारे हुए युधिष्ठिर को दाँव पर द्रौपदी को बद देने का अधिकार था। और, इसी कारण, द्रौपदी के इस सम्बन्ध में प्रश्न करने पर भीष्म ने साफ़ कह दिया है कि मैं इसका ठीक उत्तर नहीं दे सकता। न दीजिए, कोई ज़बर्दस्ती नहीं करता। पर मनुष्यता को तो हाथ से न जाने दीजिए। माना कि कौरवों ने पाण्डवों के साथ-साथ द्रौपदी को भी जीत लिया, दासी बना लिया, तो इसका अर्थ क्या यह हुआ कि उसे सभा में, बड़े-बूढ़ों के आगे, लाकर नङ्गा किया जाय ? क्या ऐसा करने से ही द्रौपदी पर अधिकार सिद्ध होता ? इसके लिए क्या दूसरा उपाय नहीं था ? ऐसा सभ्यता-विगर्हित कार्य भीष्म के सामने दिन-दहाड़े किया जाय और वे कान मे तेल डाले बैठे रहें ! इस घटना से जान पड़ता है कि उस समय लोगों की मनोवृत्ति ही दूसरी थी। जिस काम को आज हम बुरा समझते हैं वह कदाचित् उस ज़माने में उतना बुरा न समझा जाता रहा हो।

पितामह ने प्रतिज्ञा कर ली थी कि मैं पाण्डवों के प्राण न लूँगा और यदि उन्होंने मुझे मार न डाला तो प्रतिदिन उनके पक्ष के दस हज़ार योद्धाओं का नाश किया करूँगा। उन्होंने अपनी यह प्रतिज्ञा सोलहों आने पूरी की।

भीष्म ने दाशराज के आगे आजन्म अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा की थी। इस प्रतिज्ञा का पालन केवल विवाह से बचे रहने से ही पूरा-पूरा नहीं हो सकता था। इसका पालन तो सोलहों आने ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करने से ही हो सकता था। अतएव भीष्म ने वही किया। उन्होंने स्त्री-विषयक सभी प्रकार की इच्छाओं को त्याग दिया। वे योगारूढ़ होकर ब्रह्म का चिन्तन और भगवान् का भजन किया करते थे। उनके आगे श्रीकृष्ण कल के बच्चे थे, फिर भी वे उनको ईश्वर का अवतार समझते और उनकी भक्ति किया करते थे। भीष्म की कृष्णभक्ति का उदाहरण प्रसिद्ध ही है। श्रीकृष्ण ने निहत्थे रहकर अर्जुन का रथ हाँकने की प्रतिज्ञा की थी, किन्तु भीष्म ने उनसे शस्त्र ग्रहण कराने का प्रण कर लिया। इस सम्बन्ध में सूरदासजी का पद प्रसिद्ध है—"आजु जौ हरिहिं न सस्त्र गहाऊँ। तौ लाजौं गङ्गा जननी कौं, सन्तनु-सुत न कहाऊँ।" अन्त में भक्त की लाज रखने को जब श्रीकृष्ण चक्र (रथ का पहिया) लेकर दौड़ पड़े तब भीष्म ने हथियार रख दिये और श्रीकृष्ण के हाथ से मारे जाने में अपना अहोभाग्य समझा। ऐसा करके उन्होंने श्रीकृष्ण के अस्त्र धारण न करने की प्रतिज्ञा की भी रक्षा कर ली।

श्रीयुत वैद्य महाशय ने हिसाब लगाकर बतलाया है कि कुरुक्षेत्रवाले युद्ध में भीष्म डेढ़ सौ वर्ष के थे। फिर भी वे युवकों की भाँति फ़ुर्ती से युद्ध करते थे। इसमें कुछ अचम्भा नहीं है। बुड्ढे हिंडनबर्ग आदि ने भी तो यही कर दिखाया है। सन् ईसवी से लगभग ३०० वर्ष पहले सिकन्दर ने भारतवर्ष पर आक्रमण किया था। उस समय के यूनानियों को भारत में दो-दो सौ वर्ष की आयुवाले लोग मिले थे। फिर महाभारत-युद्ध के समय भीष्म जैसे बड़ी उम्रवाले लोगों के युद्ध

करने में अचम्भा ही क्या रह जाता है? इस युद्ध के समय अर्जुन पचपन वर्ष के थे। वे जिस समय हिमालय से हस्तिनापुर में आये उस समय पाँच वर्ष के माने जायँ तो मानना पड़ेगा कि पाण्डु चालीस वर्ष की आयु में और उनके पिता विचित्रवीर्य ३० वर्ष की उम्र में मरे होंगे। इस दृष्टि से मालूम होता है कि जिस समय हस्तिनापुर में अर्जुन आदि आये उस समय भीष्म को राज-काज सँभालते सत्तर वर्ष हो गये थे अर्थात् उस समय भीष्म सौ वर्ष के थे। उन्होंने कोई एक सौ बीस वर्ष तक निर्लिप्त रहकर राज-काज सँभाला था। इस कारण राजनीति के दाँव-पेंच समझने में उनसे अधिक कुशल और कौन हो सकता था? इसी कारण व्यासजी ने सारी राजनीति का उपदेश भीष्म के मुँह से ही दिलवाया है और सौति ने भी तत्त्वज्ञान का उपदेश उन्हीं से दिलवाना ठीक समझा। एक प्रश्न यह है कि जब दुर्योधन ने भीष्म का उपदेश नहीं माना तब भीष्म ने उसकी ओर से युद्ध क्यों किया। वास्तव में उनका काम राजा को उसकी भूल सुझा देना भर था। अन्तिम निर्णय तो राजा ही कर सकता है। राजा को देवता का अंश मानने की धारणा हमारी बहुत पुरानी है। फिर जिसका नमक इतने दिनों से खाया था उसको छोड़कर कैसे जा सकते थे? यदि यह कहा जाय कि इन्होंने किसी दूसरे का नमक नहीं खाया, अपना ही खाया था, तो यह भी ठीक नहीं। क्योंकि एक बार जब ये अपना राजगद्दी का अधिकार छोड़ चुके तब इनका प्रभुत्व रही कहाँ गया? यदि यह कहें कि कौरव-पाण्डवों का बँटवारा होते समय नई राजधानी स्थापित होने पर ये पाण्डवों के यहाँ क्यों न चले गये तो इसका उत्तर यह है कि पुराना स्थान छोड़ने की आवश्यकता ही क्या थी? उस समय यही कहाँ निश्चय हुआ था कि कौरव लोग ऐसे हठी और अधर्मी हैं? अतएव अकारण पुराने आश्रय को छोड़ नये की खुशामद करने की झञ्झट कौन मोल लेता? फिर युद्ध तो उन्हें उस ओर से भी करना ही पड़ता। हाँ, तब यह कहने को होता कि उन्होंने अत्याचार और अन्याय के विरुद्ध हथियार उठाया।

माद्री

मद्र-महीपाल शल्य की बहन माद्री का विवाह पाण्डु के साथ हुआ था। यह उनकी दूसरी रानी थी। पंजाब का, रावी और चनाब के बीच का, भूभाग ही मद्रदेश है। माद्री का वास्तविक नाम नहीं मिलता। माद्री का अर्थ है मद्र देश की। यह बड़ी सुन्दरी थी। इसको प्राप्त करने के लिए शल्य के पास स्वयं भीष्म गये थे और उन्हें बहुत सा सुवर्ण, आभूषण, रत्न, हाथी-घोड़े, मणि-मोती और वस्त्र आदि देकर माद्री को हस्तिनापुर ले गये थे। वहीं पर विवाह-संस्कार हुआ था। कुछ समय तक माद्री ने बड़ा सुख पाया। इसके बाद एक दुर्घटना हो गई। राजा पाण्डु ने वन में रमण करते हुए मृग के जोड़े पर बाण छोड़ दिया। असल में वह किन्दम नाम का मुनि था जो मृग बनकर अपनी स्त्री के साथ विहार कर रहा था। उसने मरते समय पाण्डु को यह शाप दे दिया कि जिस समय तुम स्त्री से सहवास करना चाहोगे उसी समय मर जाओगे।

इस शाप के कारण राजा पाण्डु बड़े दुखी रहते थे। दो-दो रानियों के रहते भी वे स्त्री-सहवास के सुख से वञ्चित थे। इस कारण वे राज-पाट छोड़-छाड़कर वन में तपस्वी का जीवन बिताने लगे। वहाँ कुन्ती ने एक विद्या के प्रभाव से तीन देवताओं को बुलाकर उनके द्वारा तीन पुत्र

उत्पन्न कर लिये। इसके लिए पाण्डु ने उससे बार-बार अनुरोध किया था। यह देखकर एक बार माद्री ने एकान्त में पाण्डु से प्रार्थना की कि यदि कुन्ती मेरे लिए भी जननी बनने का प्रबन्ध कर दें तो मेरी इच्छा पूरी हो जाय। पाण्डु के कहने से कुन्ती ने अपनी सौत पर कृपा कर दी। उससे कहा—कि तू जिस देवता को बुलाना चाहे उसका ध्यान कर, मैं मन्त्र पढ़ती हूँ। माद्री ने अश्विनीकुमारों का ध्यान किया। उन देवताओं से संयोग से उसके दो (यमज) पुत्र—नकुल और सहदेव—हुए।

वन में एक बार राजा पाण्डु को होनहार ने घेर लिया। कहाँ तो वे ऋषि के शाप से डरे रहकर सदा उदास बने रहते थे और कहाँ वसन्त ऋतु में माद्री को एकान्त मे पा उसकी सुन्दरता पर रीझ—उसके बार-बार ऋषि के शाप की याद दिला-दिलाकर रोकने पर भी—उससे लिपट गये। इस घटना के होते ही उनके प्राण-पखेरू उड़ गये। माद्री रोती-चिल्लाती रह गई। रोना-चिल्लाना सुनकर वहाँ कुन्ती पहुँचीं। उन्होंने इस काम के लिए माद्री की भर्त्सना की। पर उस बेचारी का क्या अपराध था? अन्त में वह पाण्डु के साथ सती हो गई। उसने कुन्ती से कहा कि मेरे शरीर-सुख के लिए ही राजा के प्राण गये हैं; इस कारण मैं ही इनके साथ सती हूँगी। दूसरी बात यह है कि आप जिस प्रकार बिना पक्षपात के बच्चों का पालन कर लेंगी उस प्रकार कदाचित् मै न कर सकूँ, इससे मैं अपने बच्चे आप ही को सौंपकर सुख से मर सकूँगी।

माद्री का सती हो जाना उसके पक्ष में अच्छा ही हुआ। यदि वह जीती रहती तो उसे कौरवों के दिये हुए क्लेश सहने पड़ते और अन्त में अपने भाई-बन्धुओं तथा नाती-पोतों का विनाश देखना पड़ता। सती हो जाने से वह इन सब बखेड़ों से बच गई। कुन्ती और माद्री के बीच कैसा क्या पारस्परिक बर्ताव था, इसका विशेष विवरण नहीं मिलता। किन्तु इतना स्पष्ट है कि दोनों मे सौतिया डाह नहीं था। होता ही कैसे? शाप लगने से पति उदास बना रहता था। उसी की चिन्ता दोनों को रहती थी। फिर कुन्ती की ही कृपा से सन्तान-प्राप्ति होने के कारण माद्री उनके निकट कृतज्ञता-पाश में बँधी हुई थी। इसके सिवा कुन्ती में पक्षपात नहीं था—वे अपने और माद्री के बेटों के साथ एक सा बर्ताव करती थीं। इसी भरोसे पर माद्री को अपने बालक कुन्ती को सौंपने में रत्ती भर भी दुविधा नहीं हुई।

मद्रराज के यहाँ बिना शुल्क लिये बेटी ब्याहने का दस्तूर नहीं था। इस बात को शल्य ने साफ़-साफ़ कह दिया और भीष्म ने भी उनके आचार को बुरा नहीं बतलाया, उलटे प्रशंसा ही की है। इसके लिए वे पहले से ही तैयार भी थे। तभी तो उनकी भेंट करने को तरह-तरह की पचासों चीज़ें साथ ले गये थे। न ले जाते तो ख़ाली लौटना पड़ता।

युधिष्ठिर

ये पाण्डु के बड़े बेटे थे। इनका जन्म धर्मराज के संयोग से कुन्ती के गर्भ द्वारा हुआ था। वयस्क होने पर इन्होंने कौरवों के साथ द्रोणाचार्य से धनुर्वेद सीखा। समय आने पर जब इनको युवराज-पद मिला तब इन्होंने अद्भुत धैर्य, दृढ़ता, सहनशीलता, नम्रता, दयालुता और प्राणिमात्र पर कृपा आदि गुणों का परिचय देते हुए प्रजा का पालन उत्तम रीति से किया। इसके पश्चात् दुर्योधन

आदि के षड्यन्त्र से ये अपने भाइयों और माता समेत वारणावत भेज दिये गये। वहाँ पर ये जिस भवन में ठहराये गये थे वह भड़क उठनेवाली वस्तुओं से बनाया गया था, अतएव उससे निकल भागने को इन्होंने गुप्त रीति से सुरङ्ग खुदवाई और भवन मे पुरोचन के आग लगाने से पहले ही ये लोग स्वयं आग लगाकर उस सुरङ्ग की राह निकल भागे। फिर ये लोग व्यासजी के सलाह से एकचक्रा नगरी मे जाकर रहने लगे। यह नगरी इटावा से १६ मील दक्षिण-पश्चिम में है। यहाँ रहते समय ही भीमसेन ने बक राक्षस को मारा था। यहाँ से दूसरे स्थान को जाते समय रास्ते में अङ्गारपर्ण गन्धर्वराज के साथ अर्जुन की मुठभेड़ हुई थी। अन्त मे, युधिष्ठिर की कृपा से, अङ्गारपर्ण को छुटकारा मिला था।

उत्कोचक तीर्थ में पहुँचने पर पाण्डवों ने धौम्य मुनि को अपना पुरोहित बनाया। फिर ये लोग द्रुपद राजा की स्वयंवर-सभा में पहुँचे। वहाँ अर्जुन के लक्ष्यभेद करने पर द्रौपदी की प्राप्ति हुई। कुन्ती ने भिक्षा मे मिली हुई वस्तु को देखे बिना ही आज्ञा दे दी कि पाँचों भाई बाँट लो। अन्त में सब हाल मालूम होने पर कुन्ती बड़े असमञ्जस मे पड़ीं तब युधिष्ठिर ने कहा कि माता के मुँह से जो बात निकल गई है उसी को हम लोग मानेंगे। विवाह हो चुकने पर पाण्डव लोग दुबारा हस्तिनापुर पहुँच गये। उन लोगों को खाण्डवप्रस्थ हिस्से में मिला। वहीं राजधानी बनाकर वे निवास करने लगे।

मय दानव बड़ा होशियार इंजिनियर था। उसने अर्जुन के कहने से युधिष्ठिर के लिए राजधानी इन्द्रप्रस्थ में बड़ा सुन्दर सभाभवन बना दिया। इसके कुछ समय पीछे युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ करने का विचार किया। श्रीकृष्ण ने उनके इस सङ्कल्प का अनुमोदन किया। इधर तो इन्द्रप्रस्थ मे धूमधाम से यज्ञ की तैयारी की जाने लगी और उधर चारों भाई नाना देशों में जा-जाकर राजाओं से कर वसूल करने लगे। उनके लौट आने पर यज्ञ किया गया। निमन्त्रण पाकर दुर्योधन प्रभृति कौरव भी यज्ञ में सम्मिलित हुए। ठीक समय पर ब्राह्मणों ने युधिष्ठिर को यज्ञ की दीक्षा दी। इस यज्ञ के उत्सव में उस समय के प्राय: सभी नरेश एकत्र हुए थे। यज्ञ में निमन्त्रित होकर जानेवालों के ठहरने आदि के लिए अलग-अलग भवन बनाये गये थे। उन लोगों की ख़ासी ख़ातिर की गई और उन्हें यथायोग्य बिदाई भी दी गई। यज्ञ के अन्त में भीष्म की सलाह से युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण को अर्घ्य दिया। इसके सिलसिले में चेदि-नरेश शिशुपाल से झगड़ा हो गया। उसे श्रीकृष्ण ने मार डाला। शुभ अवसर पर इसे अशुभ घटना कहना चाहिए। यज्ञ पूरा हो चुकने पर दुर्योधन आदि हस्तिनापुर को लौट गये। वहाँ बेटों के मुँह से पाण्डवों के ऐश्वर्य का हाल सुनकर धृतराष्ट्र के मन में कुढ़न हुई। अन्त में दुर्योधन की बातों में आकर पाण्डवों को जुआ खेलने का निमन्त्रण दिया गया। पाण्डवों के पहुँचने पर धृतराष्ट्र ने कपट-प्रीति दिखलाई और शकुनि के साथ जुआ खेलने का प्रबन्ध किया। युधिष्ठिर को जुआ खेलना पसन्द नहीं था किन्तु बुलाये जाने पर न जाना नियम-विरुद्ध समझकर वे उस व्यसन में लिप्त हो गये। इस जुए ने उनको कहीं का न रक्खा। एक-एक करके वे अपनी सब वस्तुएँ खो बैठे। हाथ में कुछ न रह जाने पर वे अपने चारों भाइयों को, अपने को और द्रौपदी को भी, दाँव में लगाकर, हार गये। इस सिलसिले में द्रौपदी तक की धर्षणा की गई। अन्त में धृतराष्ट्र ने आगा-पीछा सोचकर पाण्डवों को, उनकी सम्पत्ति देकर, और समझा-बुझाकर बिदा कर दिया।

किन्तु इस व्यवस्था को दुर्योधन आदि ने ठीक न समझा। युधिष्ठिर दुबारा जुआ खेलने को बुला भेजे गये। वे भी सब कुछ जान-बूझकर लौट आये। इस बार शर्त यह लगाई गई कि हारनेवाला बारह वर्ष तक वनवास करके एक वर्ष अज्ञातवास करे और यदि अज्ञातवास में उसका पता लग जाय तो दुबारा यही सिलसिला शुरू हो। कहना अनावश्यक है कि जुए में पाण्डवों की हार हुई। मृगछाला पहनकर पाण्डव लोग, द्रौपदी के साथ, वनवास करने गये। वहाँ पर उनके रिश्तेदार मिलने-भेटने को अक्सर जाते थे। पाण्डवों ने वन में बारह वर्ष बिता दिये। वन के क्लेशों से ऊबकर द्रौपदी ने युधिष्ठिर को कौरवों से बदला लेने के लिए बहुत उभाड़ा परन्तु उन्होंने तरह-तरह से उपदेश देकर द्रौपदी को समझाया और अवसर की प्रतीक्षा करने के लिए कहा। वनवास के समय महर्षि धौम्य इन लोगों के साथ ही थे। वहाँ पर जो ऋषि-मुनि और साधु-महात्मा पाण्डवों से मिलने आते थे उनके उपदेश से युधिष्ठिर आदि ने अनेक तीर्थों की यात्रा की। वनवास की अवधि में ही अर्जुन, अस्त्रों की प्राप्ति के लिए, तपस्या करने गये थे।

एक बार वन में घूमते-फिरते भीमसेन एक अजगर के शिकञ्जे में फँस गये। उनके लौटने में बहुत देर होने पर युधिष्ठिर पता लगाने को निकले तो उनको अजगर की लपेट में पाया। युधिष्ठिर ने अजगर से भीमसेन को छोड़ देने के लिए प्रार्थना की तो उसने कहा कि यदि मेरे प्रश्नों का ठीक-ठीक उत्तर दे दोगे तो छोड़ दूँगा। युधिष्ठिर सहमत हो गये। अजगर ने युधिष्ठिर से धर्म तथा समाज-नीति के सम्बन्ध में बहुतेरे प्रश्न किये। उन सबका ठीक-ठीक उत्तर पाकर अजगर ने भीमसेन को छोड़ दिया। एक बार मार्कण्डेयजी ने भी कृपा करके पाण्डवों को दर्शन और उपदेशों के द्वारा कृतार्थ किया था। पाण्डवों के वनवास का समाचार दुर्योधन को मिलता रहता था। वह कर्ण और शकुनि आदि के कहने से, उन लोगों के साथ, वन में पाण्डवों को सताने की इच्छा से पहुँचा। किन्तु दैवयोग से ऐसी घटना हो गई जिसमें उसे लेने के देने पड़ गये। बात यह हुई कि उसके नौकरों से गन्धर्वों की मुठभेड़ हो गई। इसी सिलसिले में गन्धर्वराज चित्रसेन ने दुर्योधन और कर्ण आदि को पराजित करके बन्दी कर लिया। यह ख़बर पाकर युधिष्ठिर के कहने से अर्जुन ने चित्ररथ को परास्त करके अपने विरोधी दुर्योधन आदि को छुटकारा दिलाया।

एक दिन युधिष्ठिर ने पीने को पानी लाने के लिए नकुल को भेजा। उनके लौटने में देर होने पर सहदेव को पता लगाने के लिए भेजा। उनके भी न लौटने पर भीमसेन और अर्जुन को भेज दिया। जब कोई भी न लौटा तब युधिष्ठिर स्वयं ढूँढ़ने निकले। उन्होंने जाकर देखा कि चारों भाई सरोवर के तट पर मरे पड़े हैं। वहाँ पर एक यक्ष को देखकर उन्होंने अपने भाइयों की इस विपत्ति का कारण उससे पूछा। उसने बतलाया कि तुम्हारे भाइयों ने मेरी बात न मानकर पानी पी लिया, इसी से उनकी यह दशा हुई है। यदि तुम मेरे प्रश्नों का ठीक-ठीक उत्तर दिये बिना पानी पी लोगे तो तुम्हारा भी यही हाल होगा। युधिष्ठिर के उत्तर देने को तैयार होने पर यक्ष ने सन्तुष्ट होकर उनसे बहुत से प्रश्न किये और सबका ठीक-ठीक उत्तर पाया। तब उसने युधिष्ठिर से कहा कि इनमें से तुम जिस एक को चाहो वह जीवित हो सकता है। इस पर युधिष्ठिर ने नकुल को जीवित कर देने का अनुरोध किया। यक्ष ने विस्मित होकर पूछा कि भीमसेन और अर्जुन जैसे

महारथियों को जीवन-दान देने की प्रार्थना न करके तुम नकुल को क्यों जीवित देखना चाहते हो। युधिष्ठिर ने इसका बहुत उत्तम उत्तर दिया। उन्होंने कहा कि हमारी दो माताएँ हैं। अपनी माता कुन्ती के पुत्र हम जीवित हैं ही, अब सौतेली माता माद्री का भी एक बेटा बच जायगा तो हमारी दोनों माताओं की सन्तान बनी रहेगी। यह उत्तर पाकर यक्ष इतना प्रसन्न हुआ कि उसने युधिष्ठिर के चारों भाइयों को जीवित कर दिया।

बारह वर्ष बीत जाने पर पाण्डवों को एक वर्ष तक छिपकर रहना था। इसके विषय मे पाँचों भाइयों ने मिलकर सलाह की। उन लोगों ने निश्चय किया कि रूप बदलकर हम लोग मत्स्यराज विराट के यहाँ यह समय बिता देंगे। युधिष्ठिर ने कहा कि हम उक्त राजा के दरबार में अक्षक्रीड़ा-कुशल ब्राह्मण बनकर रहेंगे। बस, पाण्डव लोग वेष बदल-बदलकर राजा विराट के यहाँ जाकर रहने लगे। इस रूप में वहाँ युधिष्ठिर ने अपना नाम कङ्क रख लिया था। इन लोगों के वहाँ रहते समय एक यह दुर्घटना हो गई कि राजा का सेनापति कीचक बल्लव (भीमसेन) के हाथों मारा गया। उसके मारे जाने की खबर पाकर त्रिगर्तराज सुशर्मा ने विराट का गोधन छीनने के लिए आक्रमण कर दिया। किन्तु उसे छद्मवेषधारी पाण्डवों की सहायता से बलवान् विराट के आगे हार माननी पड़ी। इस विजय से राजा विराट इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने कङ्क को ही राजगद्दी पर बिठाना चाहा। युधिष्ठिर ने राजा के इस प्रस्ताव को धन्यवादपूर्वक अस्वीकार कर दिया; क्योंकि समय दूसरा था। इसी समय कौरवों ने दूसरी ओर से गोधन हरण करने को चढ़ाई की तो बृहन्नला बने हुए अर्जुन ने राजा विराट के पुत्र उत्तर को सारथि बनाकर उस आपत्ति से मत्स्य राज्य की रक्षा की। इसी समय उत्तर को, अर्जुन के बतलाने से, मालूम हुआ कि उसके यहाँ पाण्डव लोग छिपे हुए हैं। जिस समय ये लोग युद्ध में विजयी होकर राजधानी में पहुँचे उस समय राजा विराट अपने मुसाहब कङ्क के साथ जुवा खेल रहे थे। उसी दशा में अपने कुमार उत्तर की वीरता की प्रशंसा करते हुए उन्होंने कहा कि मेरे बेटे ने कौरवों को मार भगाया। इस पर कङ्क ने कहा कि भीष्म और द्रोण जैसे महारथियों को बृहन्नला के सिवा और कोई परास्त नहीं कर सकता। इस उत्तर से क्रुद्ध होकर विराट ने कङ्क के मुँह में पाँसे मार दिये। इस चोट से युधिष्ठिर की नाक से रक्त निकलने लगा। पीछे विराट को उत्तर से मालूम हुआ कि वास्तव में बृहन्नला ने ही कौरवों के दाँत खट्टे किये हैं। इससे अपने अपराध के लिए खिन्न होकर विराट ने कङ्क से क्षमा माँगी। अन्त में पाण्डवों का प्रकृत परिचय पाने पर राजा विराट ने उन लोगों से अपनी भूल-चूक क्षमा करने के लिए प्रार्थना की। उन्होंने पाण्डवों को उनका राज्य दिलाने के लिए अपनी शक्ति भर सहायता देने का वचन दिया।

युधिष्ठिर ने आरम्भ में बिना ही लड़ाई-झगड़े के अपना हिस्सा पाने की भी पूरा चेष्टा की; किन्तु जब दुर्योधन ने इसका निर्णय युद्ध की हार-जीत पर ही टाला तब लाचार होकर उनको युद्ध की तैयारी करनी पड़ी। कुरुक्षेत्र के मैदान में लड़ने के लिए तैयार कौरवों की अपार सेना और भीष्म आदि की बनाई हुई व्यूह-रचना को देखकर युधिष्ठिर घबरा गये। अर्जुन और श्रीकृष्ण के समझाने पर उनके हृदय से आतङ्क दूर हुआ। इसके पश्चात्, युद्ध छिड़ने से पहले, युधिष्ठिर ने रथ से उतरकर, पैदल जाकर, भीष्म आदि गुरुजनों की वन्दना करके उनसे विजय के लिए आशीर्वाद प्राप्त किया।

वहाँ पर चार ही ऐसे पुरुष थे जिनसे आशीर्वाद लेना आवश्यक था। वे थे—भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और मामा शल्य। उन चारों ने युधिष्ठिर को आशीर्वाद देकर स्पष्ट कह दिया कि यदि तुम हमारे पास न आते तो हमको बुरा लगता—हम शाप दे देते। युधिष्ठिर की इस सूझ की प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जाता। कहाँ तो मार-काट का मौक़ा और कहाँ यह शिष्टाचार का पालन। अस्तु; इसके बाद युद्ध का आरम्भ हुआ। युद्ध में युधिष्ठिर ने पर्याप्त परिश्रम किया। बहुत से सैनिकों और सेनापतियों का उन्होंने संहार किया। उन्होंने स्वयं भी बहुत सी चोटें झेलीं। कर्ण की मार से बेतरह घायल होकर उन्हें शिविर में लौट जाना पड़ा।

अन्त में जब युधिष्ठिर ने देखा कि भीष्म तो पाण्डव-पक्ष को बिलकुल चौपट किये देते हैं तब उन्होंने पितामह के पास पहुँचकर उनके वध का उपाय पूछा और तदनुसार कार्य करके अपने पक्ष की रक्षा की। इसके बाद उन्हें अभिमन्यु के वध का असह्य क्लेश सहना पड़ा। भीष्म के पश्चात् जब द्रोणाचार्य पाण्डवों की सेना को गाजर-मूली की तरह काटने लगे तब श्रीकृष्ण ने इस सङ्कट से बचने का उपाय सुझाया। भीमसेन ने अवन्तिराज इन्द्रवर्मा के हाथी को मारा और अश्वत्थामा के मारे जाने की ख़बर फैलाकर उछल-कूद मचा दी। इन्द्रवर्मा के हाथी का नाम भी अश्वत्थामा था और द्रोणाचार्यजी के पुत्र का भी यही नाम था। पहले-पहल द्रोणाचार्य ने अपने बेटे के मारे जाने की अफ़वाह पर विश्वास नहीं किया। यह देखकर श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर से कहा कि यदि द्रोणाचार्य क्रुद्ध होकर आधे दिन तक मार-काट करते रहेंगे तो फिर पाण्डव-कुल की समाप्ति ही समझिए। अतएव ऐसा कीजिए जिसमें आचार्य हथियार रख दें। जब तक उनके हाथ में हथियार रहेगा तब तक कोई उनको पराजित नहीं कर सकता। यदि आप उनको अश्वत्थामा के मारे जाने का विश्वास करा दें तो वे हथियार रख देंगे। श्रीकृष्ण का यह प्रस्ताव युधिष्ठिर को पसन्द नहीं था। किन्तु एक तो रक्षा का दूसरा उपाय नहीं था, दूसरे सब ओर से उन पर ऐसा करने के लिए दबाव डाला जा रहा था। इसलिए विवश होकर उन्होंने द्रोणाचार्य के समीप जाकर ज़ोर से कहा "अश्वत्थामा मारा गया" और धीरे से कह दिया "इस नाम का हाथी"। यह बात कहने से पहले तक, सत्य-भाषण करने के प्रभाव से, उनका रथ पृथ्वी से चार अङ्गुल ऊपर रहता था; किन्तु इस अर्ध-सत्य बात के कहते ही उनका रथ पृथ्वी पर चलने लगा—विशेषता जाती रही।

मद्रराज शल्य की मृत्यु युधिष्ठिर के ही हाथ से हुई। दुर्योधन की टाँगें तोड़कर भीमसेन जब उसके सिर को लतियाने लगे तब उन्हें युधिष्ठिर ने ऐसा करने से मना करके दुर्योधन को ढाढ़स बँधाया।

युद्ध में बहुत से भाई-भतीजों और सगे-सम्बन्धियों के मारे जाने से युधिष्ठिर को बड़ा शोक हुआ। यह विजय उनको बहुत महँगी पड़ी। इस कारण उनको बड़ी बेचैनी रहने लगी। उनका चित्त न तो राजकाज में लगता था और न धर्म-कर्म मे। श्रीकृष्ण, भाई-बन्धुओं और ऋषि-मुनियों का समझाना व्यर्थ हो गया। जब यह पता चला कि कर्ण उन्हीं का भाई था तब तो उनको बेहद दुःख हुआ। कुन्ती ने यह बात छिपा रक्खी थी, इससे क्रुद्ध होकर युधिष्ठिर ने समस्त स्त्री-जाति को यह शाप दे दिया कि कोई बात तुम्हारे पेट में न रह सकेगी। युधिष्ठिर को किसी प्रकार शान्ति मिलते न देख श्रीकृष्ण उन्हें शर-शय्या पर पड़े हुए भीष्म के पास ले जाकर बोले कि "जाति

की हत्या करने के पाप से दुखी युधिष्ठिर बहुत ही व्याकुल हो रहे हैं। धर्मार्थ-युक्त उपदेश देकर इनका शोक दूर कर दीजिए। मैं इनको इसी लिए आपके पास ले आया हूँ।" पितामह ने श्रीकृष्ण की बात मान ली। युधिष्ठिर अपने भाई-बन्धुओं सहित पितामह के समीप पहुँच गये और प्रश्न कर-करके राजधर्म, आपद्धर्म तथा मोक्षधर्म का उपदेश प्राप्त करके अभिज्ञ हो गये। महाभारत के शान्तिपर्व और अनुशासनपर्व में ये अमूल्य उपदेश भरे पड़े हैं। इन उपदेशों से युधिष्ठिर का शोक बहुत कुछ घट गया था सही, किन्तु भीष्म का शरीर छूट जाने पर वह फिर उमड़ पड़ा। इस बार उसे दूर करने के लिए व्यासजी ने अश्वमेध यज्ञ करने की सलाह दी। बात यह थी कि यज्ञ के झमेले में फँस जाने पर फिर युधिष्ठिर को पिछली बातों पर विचार करने के लिए फ़ुरसत ही कहाँ मिलती। किन्तु यह यज्ञ करने पर भी युधिष्ठिर को पछतावा बना ही रहा। वे केवल कर्तव्य-बन्धन के कारण ही राजकाज करते थे।

अश्वमेध यज्ञ होने के कुछ समय पश्चात् धृतराष्ट्र, गान्धारी और विदुर आदि वन में रहने को चले गये। एक बार युधिष्ठिर जङ्गल में तपस्या-निरत विदुर को देखने के लिए धृतराष्ट्र के आश्रम में गये। उन्होंने आश्रम से थोड़ी ही दूर पर विदुर को देखा किन्तु क्षण भर में ही वे न जाने कहाँ चले गये। तब युधिष्ठिर उनको ढूँढ़ने के लिए वन में घुसे और उनको देखते ही पीछा करने लगे। तनिक आगे बढ़ने पर उन्होंने देखा कि विदुर एक पेड़ के सहारे खड़े हुए हैं। युधिष्ठिर ने नम्रता-पूर्वक प्रणाम करके उन्हें जब अपना परिचय दिया तब उन्होंने योगबल द्वारा युधिष्ठिर की दृष्टि में दृष्टि, देह में देह, प्राण में प्राण और इन्द्रियों में इन्द्रियों को संयुक्त करके उनकी देह में प्रवेश कर लिया। अब विदुर की देह पेड़ के सहारे ठूँठ की तरह खड़ी रह गई। युधिष्ठिर अपने को पहले की अपेक्षा अधिक बलवान् समझने लगे। उन्होंने विदुर की दाह-क्रिया करने का विचार किया तो यह आकाशवाणी सुन पड़ी कि विदुर तो यति-धर्म को प्राप्त कर चुके हैं। उनकी देह को जलाना ठीक नहीं। यह आकाशवाणी सुनकर युधिष्ठिर धृतराष्ट्र के पास, आश्रम मे, लौट गये। उन्होंने धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती आदि को राजधानी में लौटा ले जाने का बहुत उद्योग किया; किन्तु जब कोई नहीं गया तब युधिष्ठिर भाइयों सहित लौट गये और राजकाज सँभालने लगे। इसके पश्चात् दो वर्ष बीतने पर उन्हें ख़बर मिली कि धृतराष्ट्र प्रभृति वन की दावाग्नि में भस्म हो गये। इससे युधिष्ठिर को बहुत शोक हुआ फिर भी उन्हें राजपाट सँभाले रहना पड़ा।

कुछ समय बाद यादवों का विनाश होने की ख़बर मिलने से युधिष्ठिर को इतना वैराग्य हुआ कि परिक्षित् को राजगद्दी पर बैठाकर और युयुत्सु को राज्य-कार्य की देखभाल करने पर नियुक्त करके वे महाप्रस्थान के लिए उत्तर दिशा की ओर चले गये। साथ में द्रौपदी सहित चारों भाई भी गये। जाते-जाते रास्ते में पहले द्रौपदी गिरीं; इसके पश्चात् क्रम से सहदेव, नकुल, अर्जुन और भीम गिरे। भीमसेन हर एक के गिरने का कारण युधिष्ठिर से पूछते जाते थे। युधिष्ठिर ने बतलाया कि द्रौपदी पाँच पतियों में से अर्जुन को अधिक चाहती थी। इसी पाप से उसकी मृत्यु हुई। सहदेव अपने को बहुत बड़ा समझदार मानते थे, नकुल को अपनी सुन्दरता का गर्व था, अर्जुन अपनी शूरता की ऐंठ में अन्य धनुर्धरों को कुछ समझते ही नहीं थे और भीमसेन

दूसरों को भोजन-सामग्री दिये बिना ख़ुद बहुत अधिक खा जाते तथा अद्वितीय बलवान् होने की डींग हाँकते थे। इन्हीं कारणों से इन लोगों का पतन हुआ। अन्त में, गिरे हुए भाइयों की परवा छोड़कर, युधिष्ठिर चित्त को एकाग्र किये हुए आगे बढ़ते गये।

अब एक कुत्ता ही युधिष्ठिर के साथ रह गया। इस प्रकार उनके अग्रसर हो जाने पर इन्द्र उनको ले जाने के लिए रथ लेकर आ पहुँचे। किन्तु उन्होंने पीछे गिरे हुए अपने भाइयों और द्रौपदी को छोड़कर जाना स्वीकार न किया। इस पर इन्द्र ने बतलाया कि वे सब तो मनुष्य-शरीर छोड़-कर पहले ही वहाँ जा पहुँचे हैं। केवल तुम्हीं को सदेह ले जाने के लिए मैं यह रथ लाया हूँ। तब युधिष्ठिर ने अपने साथ के कुत्ते को भी साथ ले जाना चाहा। इन्द्र ने अनेक युक्तियों से सम-झाया कि कुत्ते को साथ लेकर स्वर्ग में नहीं जा सकते। किन्तु युधिष्ठिर बिना कुत्ते को साथ लिये रथ पर सवार होने को तैयार नहीं हुए। अन्त में कुत्ते का रूप छोड़कर साक्षात् धर्मराज प्रकट हुए और युधिष्ठिर से बोले कि तुम्हारी परीक्षा करने के लिए ही मैं कुत्ता बना हुआ साथ-साथ आ रहा था। मैं एक बार द्वैतवन में भी तुम्हारी परीक्षा कर चुका हूँ। तुम बड़े ही धर्मात्मा, बुद्धिमान् और प्राणिमात्र पर दयालु प्रमाणित हुए हो। मैं बहुत ही सन्तुष्ट हूँ। तुम इस रथ पर सवार होकर स्वर्ग को जाओ।

इसी समय युधिष्ठिर का स्वागत करने को वहाँ पर अश्विनीकुमार, मरुद्गण और अन्यान्य देवता आ गये। देवताओं से घिरे हुए युधिष्ठिर सदेह स्वर्ग में पहुँच गये। वहाँ पर उनकी दृष्टि सबसे पहले देवराज की सभा में बैठे हुए दुर्योधन पर पड़ी। उसे देखते ही पिछले वैर का स्मरण हो जाने से वे क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने देवताओं से पूछा कि इस पापी को किस पुण्य के बदले में स्वर्ग की प्राप्ति हुई है। नारदजी ने बतलाया कि यह पाण्डवों से वैर-विरोध अवश्य रखता था; परन्तु समरभूमि मे वीर की भाँति युद्ध करके इसने शरीर छोड़ा है। उसी पुण्य के प्रभाव से इसे स्वर्ग मिला है। अब युधिष्ठिर ने यह पूछा कि हमारे भाई-बन्धु और अन्यान्य स्वजन कहाँ पर, किस दशा में, हैं। इस पर एक देवदूत युधिष्ठिर को उनके भाई-बन्धुओं के पास ले गया। अपने भाई-बन्धुओं को नरक की यन्त्रणाएँ भोगते देख युधिष्ठिर ने देवताओ के न्याय की निन्दा की। इस पर इन्द्र ने युधिष्ठिर को ढाढ़स बँधाते हुए कहा कि मनुष्यमात्र को अपनी करनी का फल भोगना पड़ता है। तुमने अश्वत्थामा के मरने की झूठी ख़बर उड़ाने में साथ दिया था, इसी से तुम्हें नरक का दृश्य देखना पड़ा। तुम्हारे भाई भी कुछ समय तक नरक में अपने पापों का फल भोग चुकने पर स्वर्ग में आ जायँगे।

इन्द्र के कहने से युधिष्ठिर ने ज्योंही मन्दाकिनी में ग़ोता लगाया त्योंही वे सारे वैर-विरोध और द्वेष आदि की भावनाओं से मुक्त हो गये। अब वे अपने सगे-सम्बन्धियों से हिल-मिलकर स्वर्ग का सुख भोगने लगे।

युधिष्ठिर के चरित में क्षत्रिय की अपेक्षा ब्राह्मण के गुणों की अधिकता है। क्षत्रिय में जैसी कठोरता होनी चाहिए वैसी उनमें न थी। यह बात कर्ण ने उनसे, युद्ध करते समय, कही भी थी। वे उसका सामना करने में असमर्थ हो युद्धभूमि से टल गये थे। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि वे

भीरु थे। उन्होंने अपनी शक्ति भर कर्ण का मुक़ाबला किया था। इस युद्ध में उनकी देह क्षत-विक्षत हो गई थी। छावनी में पहुँचने पर चिकित्सकों ने उनके शरीर में से शल्य निकाले थे। उन्होने युद्ध में शूरता भी दिखाई थी। अपने मामा, कौरवों के सेनापति, महारथी शल्य को इन्होंने मारा था। फिर भी क्षत्रिय-धर्म की अपेक्षा इन्हें ब्राह्मण-धर्म ही प्रिय था। अश्वत्थामा के मारे जाने की अर्ध-सत्य बात कहने के सिवा इन्होंने अपने जीवन मे कभी असत्य भाषण नहीं किया। इनके इस गुण की प्रशंसा शत्रुओं तक ने की है।

कर्ण के बाणों से घायल युधिष्ठिर जब छावनी में लौट गये थे तब उनकी ख़बर लेने को श्रीकृष्ण और अर्जुन गये तो युधिष्ठिर ने समझा कि कर्ण मारा गया। किन्तु उसके जीवित रहने की ख़बर ने उन्हें हक्का-बक्का कर दिया। वे अर्जुन के गाण्डीव धनुष की निन्दा कर बैठे। इससे अर्जुन ने चिढ़कर जब उनका वध करने का विचार किया तब श्रीकृष्ण ने किसी प्रकार समझौता कराके आगे का काम सँभाला। इस प्रसङ्ग के सिवा और कभी युधिष्ठिर ने धैर्य को हाथ से नहीं जाने दिया। सदा फूँक-फूँककर पैर रक्खा। किसी का अनिष्ट चिन्तन तक नहीं किया। उनके इस भोलेपन से ही कौरवों ने लाभ उठाना चाहा था। युधिष्ठिर आशावादी थे। बड़े-बड़े सङ्कट पड़ने पर भी वे उनसे पार पाकर सुखमय जीवन बिताने की आशा रखते थे। द्रौपदी, भीमसेन और अर्जुन आदि के युद्ध के लिए उभाड़ने पर भी वे अवधि बिताकर ही कौरवों से अपना हिस्सा माँगने को तैयार हुए। जहाँ तक बना, युद्ध को टालते रहे। ऐसा क्षमाशील, अहिंसाप्रिय क्षत्रिय कदाचित् ही दूसरा हो। भाइयों पर उनका असीम अनुराग था। माता के वे अनन्यसेवक थे और पुत्रहीन धृतराष्ट्र तथा गान्धारी की तो उन्होंने ऐसी सेवा की जैसी दुर्योधन भी नहीं कर सका था। स्वयं धृतराष्ट्र ने इसे स्वीकार किया है। प्रजा का पालन भी उन्होंने बहुत अच्छी तरह किया। राज्य मिल जाने पर उन्होने ऐसी व्यवस्था कर दी जिसमें सभी भाइयों को महत्त्व के कार्य करने को मिले और किसी को असुविधा न हो।

युधिष्ठिर के जीवन में सबसे बड़ी भूल है उनका जुआ खेलने को तैयार हो जाना और उसमें भी अपने भाइयों तथा द्रौपदी तक को दाँव पर लगा देना। जुआ खेलने को बुलाये जाने पर नाहीं न करने की उनकी प्रतिज्ञा प्रतिज्ञा नहीं कही जा सकती। प्रतिज्ञा अच्छे कामों की होती है, जुआ खेलने और चोरी करने के लिए आहूत होने पर न जाने की प्रतिज्ञा तो प्रतिज्ञा का उपहास है। हारे हुए जुआरी का मनोभाव व्यक्त करने का सबसे बड़ा दृष्टान्त द्रौपदी का दाँव पर बदा जाना है। जुए के समय हारने और जीतनेवाले की मानसिक दशा कितनी अविचार-पूर्ण हो जाती है, इसका दृश्य हमें उस समय देखने को मिल जाता है। उस युग के आचार-विचार ही कुछ और थे। हम इस ज़माने के मनुष्य उनकी ठीक-ठीक कल्पना करने मे असमर्थ होकर कभी किसी पक्ष को दोष देने लग जाते हैं, कभी किसी को।

युधिष्ठिर ने जैसी भूल जुआ खेलते समय की थी वैसी ही भूल वे एक बार और कर बैठे थे। उनकी भूलों का फल और लोगों तक को भोगना पड़ता था। देखिए, निराश होकर दुर्योधन द्वैपायन-ह्रद में जा छिपा है। पता पाकर पाण्डव लोग सरोवर के तट पर पहुँच गये हैं और ऐसी बातें कह

रहे हैं जिनसे तुनुककर वह बाहर निकल पड़े। बातचीत के सिलसिले में दुर्योधन ने कहा कि अब राज्य तुम्हीं लोग ले लो। मुझे न चाहिए। मेरी ओर से लड़नेवाला अब है ही कौन? इस पर युधिष्ठिर ने कह दिया कि "यदि इसी डर से तुम छिपे हुए हो तो एक काम करो। हम पाँचों भाइयों में से जिस एक से युद्ध करना चाहो उसी से भिड़ जाओ; उसी की हार-जीत से हम सब लोग अपनी हार-जीत समझ लेंगे।" भला ऐसी घमासान लड़ाई में विजयी हो चुकने पर कोई ऐसी अर्थहीन बात करेगा? कदाचित् विजयोन्माद के कारण उनके मुँह से यह बात निकल गई हो। उनकी इस बात ने पाण्डवों समेत श्रीकृष्ण के सारे प्रयत्न को संशय में डाल दिया। दुर्योधन यदि नकुल, सहदेव अथवा युधिष्ठिर से ही गदायुद्ध करना चाहता तो इसका क्या परिणाम होता? किन्तु होनहार ने बात सँभाल ली। दुर्योधन सभी ओर से निराश हो बैठा था। शत्रु की विजय से वह सन्तप्त हो रहा था। उसने सोचा कि जब एक से ही भिड़ना है तब उस भीम के ही क्यों न दाँत तोड़ूँ जिसने मेरे भाइयों को साफ़ कर दिया है। यदि उसकी बुद्धि ठिकाने होती, हानि-लाभ का उसने ठीक-ठीक हिसाब लगाया होता और भीमसेन की प्रतिज्ञा का भी उसे स्मरण होता तो कदाचित् वह किसी अन्य पाण्डव को पछाड़कर बाज़ी मार लेता। किन्तु शेखी में आकर वह भीम से गदायुद्ध करने को निकल क्या आया युधिष्ठिर को उपहासास्पद बनने से बचाने में सहायक हो गया।

युयुत्सु

धृतराष्ट्र की एक पत्नी वैश्य वर्ण की थी। उसके गर्भ से उत्पन्न पुत्र का नाम युयुत्सु था। इसे कौरवों का विग्रह पसन्द नहीं था। इसने युद्ध न होने देने के लिए चेष्टा भी की थी किन्तु जहाँ बड़ों-बड़ों की नहीं चली वहाँ इसकी कौन सुनता? अन्त में युद्ध आरम्भ होने से पूर्व जब युधिष्ठिर ने घोषणा की कि यदि कोई हमारी ओर से युद्ध करना चाहे तो हमारे दल में भर्ती हो जाय तब युयुत्सु, कौरवों का साथ छोड़कर, पाण्डवों में जा मिला और पाण्डवों ने भी उसको सहर्ष अपना साथी मान लिया। इस ओर से युयुत्सु ने अपनी सामर्थ्य भर युद्ध किया। धृतराष्ट्र का एक यही पुत्र युद्ध के अन्त में जीवित बच रहा। यदि यह कौरवों की ओर से युद्ध करता तो कौन कह सकता है कि उन लोगों की सी गति इसकी न होती। पाण्डवों के यहाँ इसका ख़ासा आदर था। वे लोग जब परिचित् को राजगद्दी देकर वानप्रस्थ को जाने लगे तब राज्य की निगरानी का भार इसी को सौंप गये थे।

युयुत्सु का पाण्डवों की ओर चला आना कौरवों के साथ विश्वासघात नहीं है; विश्वासघात तो विभीषण ने राम से मिलकर अपने भाई के साथ किया था। यह तो सब के सामने कहकर चचेरे भाइयों से जा मिला था। ऐसा जान पड़ता है कि कौरवों के यहाँ युयुत्सु का सम्मान नहीं था। होता ही कैसे? वहाँ तो एक माँ के सौ-सौ भाई थे। पहले तो उन्हीं की पूछ होती रही होगी। शायद यह बात युयुत्सु को अखरती रही हो। इसके सिवा कौरवों का पाण्डवों के साथ किया गया अनुचित बर्ताव भी इसे पसन्द नहीं था। अतएव इसने सोचा कि जब युद्ध करना ही है तब न्याय्य पक्ष की ओर से ही क्यों न किया जाय? यह कहाँ का दस्तूर है कि मरें भी तो पाप

कमाने के लिए ! भीष्म और द्रोण आदि जानते थे कि वे असत्पक्ष की ओर हैं और इसे वे अच्छा भी नहीं समझते थे; फिर भी लड़े उसी ओर से। किन्तु युयुत्सु ने झिझक छोड़कर उस पक्ष का साथ नहीं दिया। अतएव उसके इस साहस की प्रशंसा करनी पड़ती है।

शकुनि

यह गान्धारराज सुबल का पुत्र और गान्धारी का भाई था। जुआ खेलने में यह बहुत ही कुशल था। यह प्राय: धृतराष्ट्र के दरबार में बना रहता था। दुर्योधन की इससे बहुत पटती थी। युधिष्ठिर के साथ दुर्योधन की ओर से इसी ने जुआ खेला था। यह ऐसा चतुर जुआरी था कि युधिष्ठिर को एक भी दाँव नहीं जीतने देता था। उनका सब कुछ इसने जीत लिया। छलिया भी अव्वल नम्बर का था। ज्यों-ज्यों युधिष्ठिर हारते जाते थे त्यों-त्यों यह उन्हें उकसाता और जो चीज़ें उनके पास रह गई थीं उन्हें दाँव पर लगाने को कहता था।

महाभारत के युद्ध में शकुनि ने युद्ध किया था। उसके पास घोड़ों का रिसाला था। युद्ध में उसके भाई और पुत्र आदि सभी मारे गये। उसको भी सहदेव ने मार गिराया।

गान्धारी जैसी पतिव्रता का भाई शकुनि जैसा हो, इसे एक विचित्र बात ही कहना चाहिए। इसने कभी दुर्योधन को ठीक सलाह नहीं दी। यह ठकुरसुहाती कहना ख़ूब जानता था। इसी से दुर्योधन इसको बहुत मानता था। आज-कल भी कुछ लोग ताश के खेल में उस्ताद पाये जाते हैं। उनके पास कितने ही हलके पत्ते क्यों न हों, लेकिन जीत उन्हीं की होती है। यही हाल शकुनि का था। वह पासों को मानों नचाता था। प्राचीन काल में द्यूत की गिनती कला में होती थी। राजा नल ने अपने भाई से हार जाने और बहुत से कष्ट झेलने के बाद यह कला राजा ऋतुपर्ण से सीखी थी। वनवास के समय इसे युधिष्ठिर ने भी बृहदश्व से सीख लिया था।

शकुनि का सदा हस्तिनापुर में बना रहना बतलाता है कि जिस राजनीतिक उद्देश्य से गान्धारी का विवाह धृतराष्ट्र से किया गया था उसी की सिद्धि के लिए शकुनि को हस्तिनापुर में रक्खा जाता था। जान पड़ता है कि उस समय भी क़न्दहार की ओर घोड़े बढ़िया होते और वहाँ के लोग घुड़सवारी में कुशल होते थे। शकुनि का अपने भानजों की भलाई के लिए प्रयत्न करना अनुचित नहीं कहा जा सकता। अपने रिश्तेदारों को लाभ पहुँचाने की चेष्टा कौन नहीं करता ? पर उस चेष्टा को थोड़ा-बहुत धर्म और न्याय का भी तो आश्रय होना चाहिए। पाण्डवों ने शकुनि का कुछ नहीं बिगाड़ा था, इसलिए उसे कुछ उनका भी लिहाज़ करना चाहिए था। आख़िर वे भी तो उसके भानजे ही होते थे। यदि वह अपने भानजों का सच्चा हितचिन्तक था तो उसे ऐसा रास्ता पकड़ना चाहिए था जिसमें कौरवों का तो भला हो जाता, पर पाण्डवों का सर्वनाश न होता। लेकिन जुआरी यदि ऐसी समझदारी से काम लेने लग जाय तो फिर वह जुआरी ही काहे का ? महाभारत के पात्रों में शकुनि के काम नीचता-पूर्ण ही दीख पड़ते हैं। उसने एक भी अच्छा काम नहीं किया। कौरव-पाण्डवों के गृह-कलह का बहुत कुछ उत्तरदायित्व उसी पर है। यदि वह दुर्योधन की ओर से पासे न फेंकता तो फिर खेल ही ख़तम था। कौरवों में भीष्म पितामह

और द्रोणाचार्य आदि ने इसे महत्त्व नहीं दिया। दुर्योधन को तो इसकी अक्षविद्या का भरोसा आधे युद्ध तक बना रहा। उसने द्रोणाचार्य से युधिष्ठिर को पकड़कर ला देने की प्रार्थना की थी। वह चाहता था कि युधिष्ठिर पकड़ लिये जायँ तो उनको शकुनि मामा फिर जुए में जीतकर वनवास करने को भेज दे और युद्ध समाप्त हो जाय। शायद उसे पता नहीं था कि अब युधिष्ठिर भी बृहदश्व से अक्षविद्या सीखकर कुशल जुआरी हो गये हैं। जहाँ पर साले की अथवा मामा की तूती बोलती है वहाँ बंटाढार हो जाता है। कहा भी है—"श्यालको गृहनाशाय, सर्वनाशाय मातुलः"।

शिशुपाल

यह चेदि देश (= चँदेरी, गवालियर राज्य में) के राजा दमघोष का बेटा था। उत्पन्न होते समय इसके चार हाथ और तीन आँखें थीं। यह अद्भुत आकृति देखकर सभी लोग डर गये। माता को यह हिम्मत न हुई कि अपने लाड़ले को गोद में बिठाकर प्यार तो कर ले। इसी समय आकाशवाणी हुई—किसी भविष्यद्दर्शी महात्मा ने कहा—कि क्यों नासमझी कर रहे हो! बच्चे का पालन-पोषण करो; डरो मत। यह इतना शूर निकलेगा कि बड़े-बड़े वीरों के छक्के छुड़ा देगा। किन्तु इसे मारनेवाला भी संसार में जन्म ले चुका है। यह सुनकर माता सँभली। उसने बच्चे को गोद में बिठा लिया और हाथ जोड़कर कहा कि जिन्होंने कृपा कर मुझे यह सूचना दी है वे यह भी बता दें कि इसे कौन मारेगा। इस पर उत्तर मिला कि जिसकी गोद में जाने पर इसके दो हाथों और एक आँख का अस्तित्व न रहे उसी के द्वारा यह मारा जायगा।

राजा दमघोष ने बहुत दिन बाद बेटे का मुँह देखा था। प्रतिदिन भोज होने लगे; दीन दुखियों की इच्छाएँ पूरी की जाने लगीं। रिश्तेदारों का ताँता लग गया। सब की यथायोग्य अभ्यर्थना की जाती और फिर गोद में बच्चा, शिशुपाल, रख दिया जाता। पर न तो उसके अतिरिक्त दोनों हाथ पृथक् हुए और न एक आँख का गड्ढा सा ही दूर हुआ। एक दिन श्रीकृष्ण-बलराम अपनी बुआ के यहाँ गये। वहाँ इनका ख़ूब आदर-सत्कार किया गया और, नियमानुसार, शिशुपाल इनकी भी गोद में दिया गया। श्रीकृष्ण की गोद में पहुँचते ही बालक के अतिरिक्त दो हाथ गिर पड़े और एक आँख भी ग़ायब हो गई। दोष न रह जाने से शिशु सुन्दर दीख पड़ने लगा। पर इस घटना से उसकी माँ घबरा उठी। उसने श्रीकृष्ण से प्रण करा लिया कि वे बच्चे के साथ कोई बुरा बर्ताव न करेंगे। आगे चलकर यह शिशुपाल बड़ा वीर हुआ। इसकी वीरता से प्रसन्न होकर मगध के परम पराक्रमी राजा जरासन्ध ने इसे अपना सेनापति (ऑनरेरी जनरल) बना लिया।

पाण्डवों ने चारों ओर के राजाओं को अपने अधीन कर राजसूय यज्ञ किया। यज्ञ के अन्त में जब उपस्थित मनीषियों और राजाओं की यथायोग्य पूजा तथा सत्कार करने का समय आया तब युधिष्ठिर ने पितामह से पूछा कि सबसे पहले अर्घ्य देकर किसे सम्मानित किया जाय। इस अग्रपूजा का अधिकारी वही हो सकता था जो उस यज्ञोत्सव में उपस्थित सब लोगों से श्रेष्ठ हो। इस पर भीष्म ने श्रीकृष्ण की प्रशंसा कर सहदेव को आज्ञा दी कि प्रधान अर्घ्य इन्हीं को दिया जाय। उस प्रतिष्ठा-सूचक प्रधान अर्घ्य को सबसे पहले पाकर कृष्णचन्द्र ने, शास्त्रोक्त विधि के अनुसार, ग्रहण किया।

श्रीकृष्ण की इस अग्रपूजा पर सभा में सन्नाटा खिंच गया। कोई चूँ तक न कर सका कि यह क्या किया जा रहा है, यद्यपि ऐसे राजाओं की संख्या कम न थी जो इस सर्वश्रेष्ठ सम्मान का श्रीकृष्ण को दिया जाना अनुचित समझते थे। बात यह है कि उस समय पाण्डवों का दबदबा उस सभा पर ऐसा जमा हुआ था कि किसी को प्रतिवाद करने का साहस ही न हुआ। किन्तु उपस्थित राजाओं का यह अपमान शिशुपाल से सहा नहीं गया। क्रोध के मारे काँपते हुए उसने युधिष्ठिर को यह अविवेक-पूर्ण कार्य करने के लिए फटकारा। भीष्म और श्रीकृष्ण की भी ख़ासी ख़बर ली। उसने कहा कि यह सभा है या लफङ्गों का जमघट! जिसके जी में जो आया, कर बैठा! ये देश-देश के राजा लोग यहाँ न्योता देकर बुलाये गये हैं; बड़े-बड़े विद्वान्, तपस्वी, ऋषि-मुनि और आचार्य बैठे हुए हैं। इनमें ऐसा एक भी न निकला जिसकी सबसे पहले पूजा की जाती! पूजा की गई अहीर के लड़के की। वाह री समझ! जो पहले से मालूम होता कि यहाँ पर यह दशा होगी तो युधिष्ठिर को 'कर' के नाम पर झञ्झी कौड़ी भी न दी जाती। फिर देखते कि ये किस तरह राजसूय किये लेते थे! सब ने तो इन्हें धर्मात्मा समझकर ही कर दिया था। इसका बदला इन्होंने हम सबको इस तरह अपमानित करके दिया।

इस सिलसिले में शिशुपाल ने एक उत्तेजक वक्तृता दी—"हे भीष्म, तुमने कृष्ण का प्रिय करने के लिए जो यह अनुचित काम कराया है इससे सज्जन अवश्य तुम्हें अनादर की दृष्टि से देखेंगे। कृष्ण राजा नहीं हैं; फिर सब राजाओं के बीच इस तरह सबसे पहले वे कैसे पूजा पा सकते हैं? अथवा, यदि तुमने वृद्ध समझकर सबसे पहले कृष्ण को अर्घ्य दिया है तो उनके बूढ़े पिता वसुदेव के आगे उनकी पूजा को तुम कैसे ठीक समझते हो? शुभचिन्तक और अनुगत समझकर तुमने कृष्ण का सम्मान किया है तो राजा द्रुपद के आगे वे कैसे पूजनीय हो सकते हैं? यदि आचार्य मानकर तुमने कृष्ण की पूजा की हो तो द्रोणाचार्य के आगे तथा ऋत्विक् समझकर की हो तो वृद्ध द्वैपायन व्यास के आगे उनकी पूजा कैसे ठीक कही जा सकती है?......।" इसी तरह उसने क्रमशः द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, द्रुम, भीष्मक, रुक्मी, एकलव्य और शल्य आदि राजाओं को अग्रपूजा के योग्य बताकर कहा है कि श्रीकृष्ण का यों सर्वप्रथम सम्मान किया जाना अनुचित है। यही नहीं, श्रीकृष्ण के दोष गिनाते हुए उसने उन्हें, कंस का नौकर, उपद्रवी और स्त्री-घातक तक कह डाला। अब विरुद्ध दल बनाने के लिए वह सभा-स्थल से उठकर बाहर जाने लगा। सभा में कोलाहल मच गया। कोई किसी की सुनता ही न था। श्रीकृष्ण को कोई समीचीन उत्तर न सूझा। युधिष्ठिर घबरा गये। उन्होंने आगे बढ़कर शिशुपाल को मनाने के लिए रोक लिया। वे मीठी-मीठी बातें करके उसे ठण्डा करने लगे। यह देखकर भीष्म ने तमककर युधिष्ठिर को व्यर्थ डरने से रोका और उक्त पूजा के समर्थन में युक्तियाँ दीं। इन सबका शिशुपाल ने खण्डन किया और भीष्म की शान में ऐसी-ऐसी बातें कहीं कि उनकी योग्यता का कोई योद्धा उन बातों को सहन न कर सकता। उसने उन्हें नामर्द तक कह डाला; उनके सभी कामों को निन्दित सिद्ध करते हुए कहा कि जिनका अगुआ भीष्म जैसा नादान हो × × × उन पाण्डवों से इसके सिवा और क्या आशा की जा सकती है? यदि कृष्ण में समझ होती तो वह इस अनुचित पूजा को स्वीकार ही न करता—यह उसका मान नहीं, अपमान है।

इस पर भीष्म ने शिशुपाल की सब बातों का खण्डन करते हुए, सब राजाओं को सुनाकर, कहा—मैं किसी को तिनके बराबर भी नहीं समझता; जिसका जी चाहे, मुझसे निपट ले। सभा में फिर कोलाहल मच गया। अब सहदेव ने भी कुछ कड़ी बातें कह सुनाईं। भीमसेन युद्ध करने के लिए लपके तो भीष्म ने बीच में पड़कर उन्हें रोक लिया। शिशुपाल के बहुत चुनौती देने पर भी उन्होंने भीम को किसी तरह सामना नहीं करने दिया। उन्होंने बार-बार यही कहा कि जिसकी तबा चाहे, श्रीकृष्ण से समझ ले। तारीफ यह थी कि न तो श्रीकृष्ण कुछ बोलते थे और न उनके अनन्य भक्त अर्जुन ही। पता ही नहीं चलता था कि ये दोनों उस सभा मे मौजूद भी हैं। अन्त में भीष्म की युक्ति काम कर गई। श्रीकृष्ण के साथ जुझाने की उनकी चुनौती को स्वीकार करते हुए शिशुपाल ने फिर कड़वी बातें कह सुनाईं।

अब श्रीकृष्ण से नहीं रहा गया। उन्होंने शिशुपाल के दोषों का उल्लेख किया और उसने उनके बहुत से कार्यों की व्यंग्य-पूर्ण आलोचना की। इस वाद-विवाद और कटु वाक्यों की बौछार के अन्त में श्रीकृष्ण ने, छोटी सी वक्तृता देकर, राजाओं के प्रति अपने को निरपराध सिद्ध करने का प्रयत्न किया। इसी बीच, बिना ही युद्ध का उद्योग किये, सुदर्शन चक्र से शिशुपाल का सिर धड़ से अलग कर दिया।

नि:सन्देह शिशुपाल वीर था; किन्तु उसमें बुद्धि की मात्रा कम थी। यदि वह समझदारी से काम लेता और अपने सिवा औरों को भी योद्धा मानता तो, दूसरे के घर जाकर, अपने ही नातेदार श्रीकृष्ण से न उलझ पड़ता। श्रीकृष्ण की अग्रपूजा को वह अपनी ही प्रतिष्ठा समझता तो क्या कहना था। किन्तु आपस में लाग-डाँट रहने से ही उसका इस तरह अन्त हुआ। उसकी शूरता, मृत्यु के समय, उसके किसी काम न आई।

श्रीकृष्ण

अभिमन्यु, अर्जुन, अश्वत्थामा, उत्तरा, कर्ण, कुन्ती, गान्धारी और युधिष्ठिर प्रभृति के चरितों में श्रीकृष्ण के सम्बन्ध मे इतना अधिक लिखा जा चुका है कि उनके सम्बन्ध में पृथक् रूप से कुछ लिखने की विशेष आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। फिर भी यहाँ दो-चार बातें लिखी जाती हैं। उनकी माता देवकी और पिता वसुदेव थे। उनका जन्म कारागार में हुआ था। उनका पालन-पोषण एक प्रकार से संकटों में ही हुआ। परिस्थिति ने उनको बचपन से ही दुष्टों का दमन करने के लिए विवश कर दिया था। इससे उनका साहस बढ़ता गया और उन्होंने ऐसे-ऐसे कार्य किये जिनके कारण न केवल जातिभाई यादवों पर, प्रत्युत अन्य प्रदेशवालों पर भी उनकी शूरता और बुद्धिमत्ता की छाप लग गई। जिस काम को पराक्रम से करना वे ठीक समझते थे उसको पराक्रम से कर डालते थे और जिसमें वे नीति का प्रयोग करना आवश्यक समझते थे उसमें दाँव-पेचों से काम लेते थे। कुन्ती उनकी बुआ थीं। इस नाते से पाण्डव लोग उनके भाई होते थे। इसके अतिरिक्त पाण्डवों को कौरवों ने बुरी तरह सता रक्खा था। इन्हीं कारणों से पाण्डवों के पक्ष में रहकर, बिना ही युद्ध किये, उन्होंने अपना अङ्गीकृत कार्य सम्पन्न कर लिया।

द्रोणाचार्य, भीष्म पितामह, धृतराष्ट्र, गान्धारी और कर्ण तक को यह विश्वास था कि विजयी वही पक्ष होगा जिसके सहायक श्रीकृष्ण होंगे। यह बात उन लोगों ने समय-समय पर साफ़-साफ़ कही भी है। एक तो इस विश्वास के कारण कौरवों की हार हुई, दूसरा कारण यह था कि उनका अधर्म उनको धिक्कार देता रहा होगा। बात यह है कि बाहरवालों को धोखा दिया जा सकता है; किन्तु हृदय को कैसे कोई धोखा देगा। श्रीकृष्ण में अपरिमित शक्ति थी। संसार को जिनसे बुद्धिवृत्ति प्राप्त होती है भला उनकी बुद्धिमत्ता के लिए क्या कहा जाय ? प्रश्न होता है कि जब वे सब कुछ कर सकते थे तब उन्होंने अपने हाथ से दुष्टों का संहार क्यों नहीं कर डाला। इसका उत्तर अनेक प्रकार से दिया गया है। भगवान् को लीला करनी थी। उन्होंने जैसा ठीक समझा, किया। फिर कर्म-विधान की दृष्टि से जिससे जिसको बदला लेना था उसके लिए भी तो कुछ प्रबन्ध होना चाहिए। इसके अतिरिक्त युद्ध का सारा कार्य श्रीकृष्ण के ही तत्त्वावधान में तो हुआ है। छोटी से छोटी घटना में भी उनका हाथ स्पष्ट देख पड़ता है। कहने को वे अर्जुन के सारथि थे, किन्तु वास्तव में सारे कार्य के सूत्र उन्हीं के हाथ में थे। वे जब तक समरभूमि में रहे, किसी पाण्डव पर आँच नहीं आने पाई। संशप्तकों से भिड़ने चले जाने पर, उनकी अनुपस्थिति में, ही अभिमन्यु के प्राण गये। पाण्डवों को लेकर उनके ओघवती नदी के किनारे रात बिताने के लिए चले जाने पर ही अश्वत्थामा पाण्डवों के शिविर का सफ़ाया कर पाया। उनकी उपस्थिति में पहले तो कोई कुछ अनर्थ कर ही नहीं सका और यदि कर बैठा है तो उन्होंने उसे सँभाल लिया है। उनकी जैसी सर्वतोमुखी प्रतिभा, अद्भुत कार्य-कुशलता और समय की सूझ उन्हीं में सम्भव है। पुरुषोत्तम के अतिरिक्त ऐसे कार्य और कौन कर सकता ? नृपवेषधारी असुरों से त्रस्त पृथ्वी का भार हरण करने को वे आये थे। यह कार्य पूर्ण होते ही उन्होंने महर्षि मैत्रेय को धर्म का भार सौंपकर लीला संवरण कर ली। भगवान् का न तो कोई शत्रु होता है और न मित्र। संसार में व्यवहार के लिए इन शब्दों का उपयोग श्रीकृष्ण के साथ कर दिया है। वास्तव में वे तो प्राणिमात्र के हितचिन्तक हैं। उन्होंने जितना उपकार पाण्डवों का किया उससे भी अधिक दुर्योधन आदि कौरवों का किया। भेद-दृष्टि रखने के कारण हम कुछ का कुछ समझ बैठते हैं।

श्रीकृष्ण का बाल्यकाल असुरों से जूझने में बीता, युवावस्था में उन्हें राजनीति में पड़कर अनेक गुत्थियाँ सुलझानी पड़ीं और फिर कुरुक्षेत्र के महासमर में सम्मिलित होकर अपनी योजनाओं को कार्य का रूप देना पड़ा। हम उन्हें पल भर भी आराम से समय बिताते नहीं पाते। कभी उन्हें अपने मामा और उसके सहायकों से भिड़ना पड़ा है, कभी इन्द्र का सामना करके गोपों की रक्षा का प्रबन्ध करना पड़ा है, कभी असुर-भूपालों से त्रस्त प्रजा की संरक्षा के लिए दौड़ना पड़ा है, कभी किसी महिला का उद्धार करने के लिए दाँव-पेंच दिखाने पड़े हैं और कभी समझौता कराने के लिए दूत बनना अथवा मित्र की रक्षा करने को रथ हाँकना पड़ा है। उनके जीवन का एक भी क्षण व्यर्थ नहीं गया।